हिन्दी
प्रथमावृत्ति ५२०० [विजयादशमी १२ अक्टूबर, १९८६]
(पण्डित बाबूभाई मेहता स्मृति सभागृह
के उद्घाटन के अवसर पर)

गुजराती २०००

मूल्य पाँच रुपये

विषय-सूची

मुद्रक
कपूर आर्ट प्रिन्टर्स
मनिहारो का रास्ता,
जयपुर
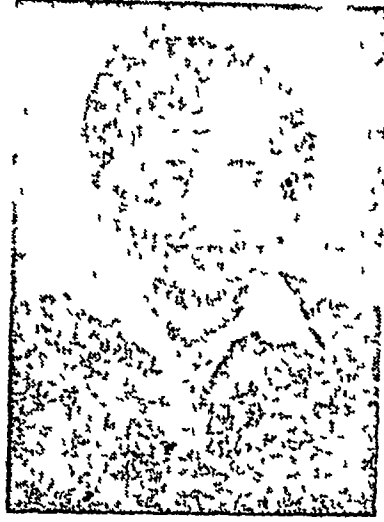
स्व० रवीन्द्र कुमार पाटनी

जन्मदिवस ३-८-१९४७ — निधनदिवस · १४-५-१९६०

जन्मस्थान आगरा — निधनस्थान आगरा

प्रिय पुत्र रवीन्द्र,

तुमने अपनी छोटी-सी बाल्यावस्था मे ही धार्मिक सस्कारो से युक्त अपना जीवन बनाकर, अनेक तीर्थक्षेत्रो की वन्दना करके अपनी तीक्ष्णबुद्धि का परिचय दिया। इसीकारण तुमने शुरू से ही सारे परिवार का अत्यधिक प्रेम व सम्मान प्राप्त किया, लेकिन एकाएक 13 वर्ष की अल्पायु में ही तुम्हारे आकस्मिक निधन ने हम सबके हृदय आन्दोलित कर दिए। अतः तुम्हारी स्मृति मे स्थापित **'रवीन्द्र पाटनी चैरिटेबल ट्रस्ट'** की ओर से प्रस्तुत कृति धर्म-प्रेमी बन्धुओ को सस्नेह भेंटकर हम भावना भाते हैं कि सभी आत्माये आत्मकल्याण के मार्ग पर अग्रसर होवें।

हम हैं तुम्हारे

पिता एव माता

सौभाग्यमल पाटनी एवं सौ० कंचनबाई पाटनी

प्रकाशकीय

वीतरागमार्ग प्रभावक आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य श्री कानजीस्वामी के श्री समयसार गाथा ३२० की जयसेनाचार्य एव अमृतचन्द्राचार्यकृत टीका-पर, प्रवचनसार गाथा ११४ की अमृतचन्द्राचार्यकृत टीकापर एव समयसार कलश २७१ पर पाडे राजमलजी की टीकापर हुए प्रवचनो का हिन्दी अनुवाद "अध्यात्म रत्नत्रय" के रूप मे पाठको के कर-कमलो मे प्रस्तुत करते हुए हमे अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

पूज्य श्री कानजी स्वामी इस युग मे परमपूज्य आचार्य कुन्दकुन्द आदि दिगम्बर सतो एव आत्मज्ञानी विद्वानो द्वारा लिपिबद्ध जिनवाणी के सरलतम व्याख्याकार तथा आत्मानुभवी महापुरुष हो गये हैं। उनके अतर्मुखी पुरुषार्थप्रेरक प्रवचनो ने लाखो लोगो को मुक्तिमार्ग का स्वरूप समझने का जिज्ञासा एव उसपर चलने की प्रेरणा प्रदान की है। उनके द्वारा प्रारंभ आध्यात्मिक क्रान्ति के फलस्वरूप जनसाधारण मे भी जिनागम का अध्ययन करने की रुचि, उसे समझने को क्षमता एव जीवन मे उतारने की प्रेरणा प्रस्फुटित हुई है। पूज्य गुरुदेव श्री ने समयसार एव प्रवचनसार पर अनेक बार प्रवचन किए है। श्री समयसार की ३२०वी गाथा की जयसेनाचार्यकृत टीका मे परमपारिणामिक भाव की महिमा का विशेष वर्णन किया गया है, तथा अमृतचन्द्राचार्य कृत टीका मे चक्षु के उदाहरण से कर्त्ता-कर्म सम्बन्धी अज्ञान को दूर किया गया है। प्रवचनसार की ११४वी गाथा मे दोनो नयो से आत्मा का स्वरूप स्पष्ट किया है। इसीप्रकार समयसार के २७१वें कलश मे ज्ञान-ज्ञेय सम्बन्धी भ्रान्ति को दूर किया गया है। ये सभी विषय आत्महित मे अत्यन्त उपयोगी होने से माननीय प. लालचन्द भाई की भावनानुसार श्री कुन्दकुन्द-कहान परमागम प्रवचन प्रकाशन ट्रस्ट, बम्बई द्वारा दो वर्ष पूर्व गुजराती मे प्रकाशित किये गये थे।

इन प्रवचनो का लाभ हिन्दीभाषी अध्यात्मरसिक पाठक भी लें, इस भावना से श्रीमान् शान्तीभाई जवेरी, बम्बईवालो ने प. राजकुमारजी

शास्त्री, मौ वालो से इनका हिन्दी अनुवाद करने का आग्रह किया, जिसे स्वीकार करके उन्होने अल्प समय मे ही उनका शब्दश. अनुवाद कर दिया ।

विद्वद्वर्य माननीय श्री लालचन्दभाई ने इसके प्रकाशन के सबध में जब मुझसे चर्चा की तो पडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट की ओर से इसके प्रकाशन का निर्णय किया गया तथा पडित अभयकुमारजी शास्त्री से इसका सम्पादन करने का अनुरोध किया, जिसे उन्होने सहर्ष स्वीकार करके हिन्दी भाषा के प्रवाह एव पूज्य गुरुदेवश्री के गम्भीर भावो तथा रसोत्पादक शैली का ध्यान रखते हुए यह कार्य सम्पन्न कर दिया ।

इस सकलन मे दो गाथाये एव एक कलश – इसप्रकार तीन प्रकरणो पर प्रवचन होने से इसका नाम गुजराती मे "अध्यात्म प्रवचन-रत्नत्रय" रखा गया है, तथापि सक्षिप्त नाम उच्चारण मे सरल होने से तथा शीघ्र प्रचलित होने से हिन्दी मे इसका नाम "अध्यात्म रत्नत्रय" रखा गया है ।

हिन्दीभाषी समाज अधिक से अधिक सख्या मे इन प्रवचनो का लाभ ले – इस पवित्र भावना से श्रीमान् शातीभाई जवेरी, बम्बईवालो की ओर से इसका विक्रयमूल्य लागतमूल्य से लगभग आधा कर दिया गया है । एतदर्थ वे हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं ।

तीर्थंकर भगवंतो एव दिगम्बर संतो का जितना उपकार माना जाय, उतना ही कम है । इन प्रवचनो द्वारा जिनवाणी का रहस्य खोलकर पूज्य कानजी स्वामी ने हम सब पर अनन्त उपकार किया है । इन प्रवचनो के गुजराती सकलन मे श्री रमणलाल माणिकलाल शाह, रखियालवालो का भी विशेष योगदान रहा है, एतदर्थ मैं उनका तथा अनुवादक एव सम्पादक महोदय का हार्दिक आभारी हूँ ।

मुद्रण व्यवस्था मे श्री अखिल बंसल ने तथा मुद्रण कार्य मे श्री कपूरचद जन कपूर आर्ट प्रिन्टर्सवालो ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है, अत वे भी धन्यवाद के पात्र हैं ।

इन प्रवचनो का मर्म समझकर सभी जन शुद्धात्मस्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान एव लीनता प्रगट करें – यही मगल भावना है ।

– नेमीचन्द पाटनी
मन्त्री, पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

सम्पादकीय

परमपूज्य तीर्थंकरो एव दिगम्बर सतो द्वारा बताये गये मुक्तिमार्ग की सरल एव सरस व्याख्या करके पूज्य श्री कानजी स्वामी ने हम सब पर अनन्त उपकार किया है। यद्यपि वे आज हमारे बीच नही है, तथापि उनके प्रवचनो की अमूल्य निधि टेपो एव पुस्तकाकार रूप मे हमारे बीच उपलब्ध है। उनके अधिकाश प्रवचन गुजराती भाषा मे हुए हैं, अत हिन्दी भाषा मे उनके अनुवाद एव प्रकाशन अत्यन्त आवश्यक है, ताकि हिन्दी-भाषी धर्मप्रेमी समाज भी उन प्रवचनो के माध्यम से जिनागम का मर्म समझ कर आत्मकल्याण कर सके।

पूज्य गुरुदेवश्री के गुजराती मे हुए प्रवचनो को अनुवादित एव सम्पादित करके हिन्दीभाषी पाठको तक पहुँचाने का काम महान सौभाग्य एव गौरवपूर्ण होते हुए भी अत्यन्त उत्तरदायित्वपूर्ण है, क्योकि किसी एक भाषा का दूसरी भाषा मे अनुवाद करते समय अनेक बातो को ध्यान मे रखना पडता है।

पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनो को टेपो से शीघ्रलिपिक (स्टेनो) द्वारा गुजराती मे लिखा जाता है, तदनन्तर गुजराती भाषा मे ही उन प्रवचनो को व्यवस्थित करके प्रकाशित किया जाता है। गुजराती मे प्रकाशित प्रवचनो के अक्षरश अनुवाद को भी हिन्दीभाषा के प्रवाह की दृष्टि से सम्पादित करना आवश्यक हो जाता है, ताकि पूरी बात स्पष्टरूप से पाठको तक पहुँच सके।

प्रस्तुत कृति मे सकलित प्रवचनो का गुजराती से हिन्दी मे अनुवाद करने का सौभाग्य शास्त्री कक्षा मे मेरे सहपाठी प राजकुमारजी शास्त्री मौ वालो को प्राप्त हुआ है। आदरणीय श्री नेमीचदजी पाटनी ने मुझे इस के सम्पादन का अवसर प्रदान किया, एतदर्थ मैं उनका आभारी हूँ।

सम्पादन के सदर्भ मे विद्वद्वर्य माननीय श्री लालचदभाई से अनेक प्रकार के मार्गदर्शन प्राप्त हुए हैं। उनकी यह विशेष भावना थी कि गुरुदेवश्री के प्रवचनो मे चाहे जितनी भी पुनरावृत्ति हो, परन्तु कोई भी अश हटाया न जाय। मात्र हिन्दीभाषा के प्रवाह एव सम्प्रेषणीयता को ध्यान मे रखते हुए वाक्यो के गठन मे आवश्यक परिवर्तन किए जाएँ, ताकि हिन्दीभाषी लोग सरलतापूर्वक गुरुदेवश्री का अभिप्राय समझ सके।

इस सदर्भ मे प राजकुमार शास्त्री ने भी अपनी भावना व्यक्त करते हुए कहा कि पूज्य गुरुदेवश्री की शैली की टोन कायम रखी जाय तो अच्छा है, ताकि पढते समय पाठको का ऐसा लगे कि हम साक्षात् गुरुदेवश्री का ही प्रवचन सुन रहे हैं।

मैंने उक्त दोनो महानुभावो के अभिप्राय का पूरा-पूरा ध्यान रखते हुए यह कार्य सम्पन्न किया है तथा इस बात का विशेष ध्यान रखा है कि गुरुदेवश्री की शैली की सरलता, सहजता, करुणा एव आल्हाद आदि विशेषताओ को कायम रखते हुए भी भाषा प्रवाहपूर्ण हो, वाक्य सरल एव पूरे हो, तथा कर्ता-कर्म, क्रिया आदि का प्रयोग नियमानुसार हो, ताकि भविष्य मे सैकडो वर्षों तक भी पाठकगण इन प्रवचनो को पढ़कर गुरुदेवश्री के भावो को यथार्थरूप से समझ सके।

अत यह कार्य सम्पन्न करते हुए निम्न तथ्यो पर विशेष ध्यान दिया गया है।

(१) गुरुदेवश्री के प्रवचनो की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि उनमे विषय प्रदिपादन के साथ-साथ अध्यात्मरस से उत्पन्न आल्हाद एव अज्ञान से दु.खी प्राणियो के प्रति करुणा का झरना भी झरता था। उक्त दोनो परस्पर विरुद्ध भावो की अभिव्यक्ति वे प्रायः 'अहाहा··· ··!' शब्द द्वारा किया करते थे, जिसे उनके स्वरो के उतार-चढाव के द्वारा श्रोताजन सरलता से समझ लेते थे। स्वरो के उतार-चढाव को लिपिबद्ध नही किया जा सकता, अतः शुद्धात्मतत्त्व की महिमा जैसे आल्हादोत्पादक स्थलो मे ही 'अहाहा· ·· !' शब्द का प्रयोग किया गया है।

(२) सम्बोधन एव महिमापरक शब्दो का यदि हर वाक्य मे प्रयोग हो तो भाषा के प्रवाह मे व्यवधान उत्पन्न होता है, अतः आवश्यक स्थलो पर ही इसप्रकार के शब्दो का प्रयोग किया गया है।

(३) कही-कही कोई वाक्य तथा उदाहरण अधूरे भी रह गये हैं, जिन्हे सदर्भ के अनुसार पूरा किया गया है।

उदाहरणार्थ – "देखो – एक राजा की रानी झरोखे मे रहती थी, एक बार रानी साहब झरोखे मे से बाहर निकली, तो उनको देखने के लिए लोगो के टोले के टोले उमड पडे, ऐसे यहाँ कहते हैं – यह भगवान आत्मा अनादि काल से राग और पर्यायबुद्धि के ओझल मे पडा है, इसे देखने के लिए एकबार अन्तर्मुख होकर प्रयत्न तो कर।" इस अश को निम्नानुसार व्यवस्थित किया गया है .—

देखो – जैसे राजा की रानी पर्दे मे रहती है और लोग उसे देखने के लिए उत्सुकता से उमड पडते है, वैसे भगवान आत्मा अनादि काल से पर्यायबुद्धि और राग के पर्दे मे ढका है। तू उसे देखने की उत्सुकता से अन्तर्मुख होकर प्रयत्न तो कर।

(४) कही-कही अधूरे वाक्य प्रयोग के कारण अभिप्राय स्पष्ट नही हो पाता, अत उन वाक्यो को पूरा करके अभिप्राय स्पष्ट किया गया है। जैसे – "अहाहा ! क्या ज्ञान का निरावलबी स्वभाव।" इस वाक्य को "अहाहा ! ज्ञान के निरावलबी स्वभाव की महिमा का क्या कहना।" इस-प्रकार व्यवस्थित किया गया है।

(५) कही-कही विशेषणो का विशेष्य के साथ मे प्रयोग न होने से वाक्य अटपटा लगता है, अत विशेषणो को विशेष्य के साथ रखा गया है, जैसे – "जयसेनाचार्य महामुनिराज दिगम्बर सत की यह टीका है" – इस वाक्य को – "महा मुनिराज दिगम्बर सत जयसेनाचार्य की यह टीका है" इस रूप मे प्रस्तुत किया गया है।

(६) इसीप्रकार कर्ता-कर्म के अव्यवस्थित प्रयोग को भी सुधारा गया है, जैसे उदाहरणार्थ – "जिनागम का मर्म खोलकर अहो ! आचार्य देव ने महान उपहार किया है।" इस वाक्य को "अहो ! आचार्यदेव ने जिनागम का मर्म खोलकर महान उपहार किया है।" इस रूप मे प्रस्तुत किया गया है।

(७) "क्या कहा ?" "लो ऐसी बात" जैसे सम्बोधन शब्दो को भी मात्र आवश्यकतानुसार ही रखा गया है।

(८) बार-बार पर्यायवाची शब्दो का प्रयोग भी प्रवाह मे व्यवधान उत्पन्न करता है, अत. ऐसे शब्दो को भी आवश्यकतानुसार ही स्थान दिया गया है ।

इस कार्य मे तत्त्व-प्रचार मे योगदान के साथ-साथ आत्महित का भी विशेष अवसर प्राप्त हुआ जिसे, मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ । ऐसे अवसर बार-बार मिलते रहे यही मेरी भावना है ।

पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी का मर्म युगो-युगो तक भव्य जीव प्राप्त करते रहे – इसी भावना से मैंने यह कार्य किया है । यदि पाठकगण पूज्य गुरुदेवश्री के भावो एव शैली से परिचित हो सके तो मैं अपना श्रम सार्थक समझूँगा ।

– अभयकुमार जैन शास्त्री
एम काम, जैनदर्शनाचार्य

यह राग-आग दहै सदा, तातै समामृत सेइते ।
चिर भजे विषय-कषाय अब तो, त्याग निज-पद बेइये ।।
कहा रच्यौ पर-पद मे न तेरा, पद यहै क्यों दुख सहै ।
अब दोल ! होउ सुखी स्व-पद रचि, दाव मत चूको यहै ।।

– पण्डित दौलतराम · छहढाला, छठवीं ढाल

अध्यात्म रत्नत्रय

समयसार गाथा ३२० . तात्पर्यवृत्ति टीका

मूल गाथा एव संस्कृत छाया

दिट्ठी सयं पि णाणं[1] अकारयं तह अवेदयं चेव ।
जाणदि य बंधमोक्खं कम्मुदयं णिज्जरं चेव ।।

दृष्टि यथैव ज्ञानमकारकं तथाऽवेदकं चैव ।
जानाति च बंधमोक्षं कर्मोदयं निर्जरा चैव ।।३२०।।

जयसेनाचार्य कृत संस्कृत टीका एव उसका हिन्दी अनुवाद

तमेव अकर्तृत्वभोक्तृत्वाभावं विशेषेण समर्थयति;
[दिट्ठी सयं पि णाणं अकारयं तह अवेदय चेव] यथा दृष्टिः

ज्यो नेत्र त्यों ही ज्ञान; नहि कारक नहीं वेदक अहो ।
जाने हि कर्मोदय निरजरा, बन्ध त्यों ही मोक्ष को ।।३२०।।

गाथार्थ : (जह एव दिट्ठी) जैसे नेत्र दृश्य पदार्थ को देखता है लेकिन पदार्थ का कर्त्ता भोक्ता नही है, (तह) उसी प्रकार, (णाणंसयंपि) ज्ञान स्वय भी, (अकारयं) अकारक, (अवेदय च एवं) तथा अवेदक है, (य) और, (बंधमोक्खं) बधमोक्ष, (कम्मुदयं) कर्मोदय, (णिज्जरं च) तथा निर्जरा को, (जाणदि एव) जानता ही है ।

अब इसी कर्तृत्त्व व भोक्तृत्व के अभाव का दृष्टान्त-पूर्वक समर्थन करते है –

टीका – (दिट्ठी सयंपि णाणंय अकार तह अवेदव चैव) जैसे चक्षु अग्निरूप दृश्य को देखता है किन्तु जलाने वाले

---

१. आत्मख्याति टीका मे "दिट्ठी जहेव णाण" पाठ है, तदनुसार सस्कृत छाया व गाथार्थ दिया गया है ।

कर्त्री दृश्यमग्निरूपं वस्तुसंधुक्षणं पुरुषवन्न करोति तथैव च तप्ताय पिंडवदनुभवरूपेण न वेदयति तथा शुद्धज्ञानमप्यभेदेन शुद्धज्ञानपरिणत जीवो वा स्वयं शुद्धोपादानरूपेण न करोति न च वेदयति। अथवा पाठान्तरं [दिट्ठी खयंपि णाणं] तस्य व्याख्यानं – न केवलं दृष्टिः क्षायिकज्ञानमपि निश्चयेन कर्मणामकारकं तथैवावेदकमपि। तथाभूतः सन् किं करोति? [जाणदि य बन्धमोक्खं] जानाति च। कौ? बन्धमोक्षौ न केवल बन्धमोक्षौ [कम्मुदयं णिज्जरंचेव] शुभाशुभरूपं कर्मोदय सविपाकाविपाकरूपेण सकामाकामरूपेण वा द्विधा निर्जरा चैव जानाति इति।

एवं सर्वविशुद्धपारिणामिकपरमभावग्राहकेण शुद्धोपादानभूतेन शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन कर्तृत्व-भोक्तृत्व-बन्ध-मोक्षा-

---

पुरुष के समान वह उसे जलाता नही है, तथा तप्तायमान लौहपिण्ड के समान वह उसे अनुभवरूप से वेदता (भोक्ता) भी नही है, वसे शुद्ध ज्ञान भी अथवा अभेद विवक्षा से शुद्धज्ञान मे परिणत हुआ जीव भी शुद्ध उपादान रूप से, (अन्य द्रव्यो को) न करता ही है और न वेदता ही है, (अनुभवता ही है) अथवा पाठान्तर से, (दिट्ठी खयपि णाणं) केवल दृष्टि ही नही किन्तु क्षायिक ज्ञान भी निश्चय से कर्मो का अकारक है और अभोक्ता है। ऐसा होता हुआ वह क्या करता है? (जाणदि य बध मोक्खं) बध और मोक्ष को जानता है। केवल बध और मोक्ष को ही नही किन्तु (कम्मुदयं णिज्जरं चैव) शुभाशुभ रूप कर्म के उदय को तथा सविपाक, अविपाक रूप अथवा सकाम और अकाम रूप से होने वाली दो प्रकार की निर्जरा को भी जानता है।

इस प्रकार शुद्ध पारिणामिकभाव ग्राहक, शुद्ध उपादानभूत शुद्ध द्रव्यार्थिक-नय के द्वारा यह जीव कर्तापन

दिकारणपरिणामशून्यो जीव इति सूचितं। समुदायपातनिकायां पश्चाद्गाथाचतुष्टयेन जीवस्याकर्तृत्वगुणव्याख्यानमुख्यत्वेन सामान्यविवरणं कृतं। पुनरपि गाथाचतुष्टयेन शुद्धस्यापि यत्प्रकृतिभिर्बन्धो भवति तदज्ञानस्य माहात्म्यमित्यज्ञान-सामर्थ्यकथनरूपेण विशेषनिवरणं कृतं। पुनश्च गाथाचतुष्टयेन जीवस्याभोक्तृत्वगुणव्याख्यानमुख्यत्वेन व्याख्यानं कृतं। तदनन्तरं शुद्धनिश्चयेन तस्यैव कर्तृत्वबन्धमोक्षादिककारणपरिणामवर्जन-रूपस्य द्वादशगाथाव्याख्यानस्योपसंहाररूपेण गाथाद्वयं गतं ॥

इति समयसारव्याख्यायां शुद्धात्मानुभूतिलक्षणायां तात्पर्यवृत्तौ मोक्षाधिकारसम्बन्धिनी चूलिका समाप्ता अथवा द्वितीयव्याख्यानेनात्र मोक्षाधिकार समाप्तः।

भोक्तापन तथा बन्ध, मोक्षादि के कारण और परिणाम से रहित है – ऐसा सूचित किया है।

इस प्रकार समुदाय पातनिका मे पीछे की चार गाथाओ द्वारा जीव के अकर्तापन गुण के व्याख्यान की मुख्यता से सामान्य वर्णन किया है। फिर चार गाथाओ मे यह बताया है कि निश्चय से शुद्ध जीव को भी जो कर्मप्रकृतियो का बन्ध होता है वह अज्ञान का माहात्म्य है – इस प्रकार अज्ञान की सामर्थ्य का विशेष रूप से वर्णन किया है। फिर चार गाथाओ मे जीव के अभोक्तापन के व्याख्यान की मुख्यता से कथन किया है। तत्पश्चात् शुद्धनिश्चय-नय से कर्तापन, बन्ध मोक्षादि का कारण और परिणाम की निषेधरूप बारह गाथाओ का उपसहार दो गाथाओ मे हुआ है।

इस प्रकार श्री जयसेनाचार्य कृत शुद्धात्मानुभूति लक्षणवाली तात्पर्यवृत्ति नाम की श्री समयसारजी की व्याख्या के हिन्दी अनुवाद मे मोक्षाधिकार सम्बन्धी यह चूलिका समाप्त हुई, अथवा द्वितीय व्याख्यान से मोक्ष अधिकार समाप्त हुआ।

किं च विशेष – औपशमिकादिपंचभावानां मध्ये केन भावेन मोक्षो भवतीति विचार्यते। तत्रौपशमिकक्षायोपशमिक-क्षायिकौदयिकभावचतुष्टयं पर्यायरूपं भवति, शुद्धपारिणामिकस्तु द्रव्यरूप इति। तच्च परस्परसापेक्षं द्रव्यपर्यायद्वयमात्मा पदार्थो भण्यते।

तत्र तावज्जीवत्वभव्यत्वाभव्यत्वत्रिविधपरिणामिकभाव-मध्ये शुद्धजीवत्वं शक्तिलक्षणं यत्पारिणामिकत्वं तच्छुद्धद्रव्या-र्थिकनयाश्रितत्वान्निरावरणं शुद्धपारिणामिकभावसंज्ञं ज्ञातव्यं तत्तु बन्धमोक्षपर्यायपरिणतिरहितं। यत्पुनर्दशप्राणरूपं जीवत्वं भव्याभव्यत्वद्वयं तत्पर्यायार्थिकनयाश्रितत्वादशुद्धपारिणामिक-भावसंज्ञमिति।

अब यहाँ पर विचार किया जाता है कि जीव के औपशमिक आदि पाँच भावों में से किस भाव के द्वारा मोक्ष होता है ? सो वहाँ औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक और औदयिक ऐसे चार भाव तो पर्यायरूप हैं और एक शुद्ध पारिणामिक भाव द्रव्यरूप है। वह परस्पर सापेक्ष द्रव्य-पर्याय द्वयरूप आत्मा पदार्थ है।

वहाँ जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व तीन प्रकार का पारिणामिक भाव है। उसमे भी शक्ति लक्षण शुद्ध जीवत्व पारिणामिक भाव है, वही शुद्ध द्रव्यार्थिक नय के आश्रित होने से निरावरण शुद्ध पारिणमिक भाव है नाम जिसका 'ऐसा जानना चाहिए जो कि बन्ध और मोक्षरूप पर्याय की परिणति से रहित है और दश प्राण रूप जीवत्व और भव्यत्व अभव्यत्वद्वय ये सब पर्यायार्थिक नय के आश्रित होने से अशुद्ध पारिणामिक नामवाले है।'

यहाँ प्रश्न होता है कि ये तीनो अशुद्ध पारिणामिक क्यो है ? इसका उत्तर यह है कि दश प्राणरूप जीवत्व,भव्यत्व

कथमशुद्धमिति चेत्, संसारिणां शुद्धनयेन सिद्धानां तु सर्वथैव दशप्राणरूप जीवत्वभव्याभव्यत्व द्वयाभावादिति[1]।

तत्र त्रयस्य मध्ये भव्यत्वलक्षण पारिणामिकस्तु यथा-संभवं सम्यक्त्वादिजीवगुणघातकं देशघातिसर्वघातिसंज्ञं मोहादिकर्मसामान्यं पर्यायार्थिकनयेन प्रच्छादकं भवति इति विज्ञेयं। तत्र च यदा कालादिलब्धिवशेन भव्यत्वशक्तिर्व्यक्तिभवति तदायं जीवः सहजशुद्धपारिणामिकभावलक्षणनिजपरमात्मद्रव्य-सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणपर्यायरूपेण परिणमति। तच्च परिणमनमागमभाषयौपशमिकक्षायोपशमिकक्षायिकं भावत्रयं भण्यते। अध्यात्मभाषया पुनः शुद्धात्माभिमुखपरिणाम शुद्धोपयोग इत्यादि पर्यायसंज्ञां लभते।

और अभव्यत्व इन तीनो का सिद्धो मे तो सर्वथा अभाव है, किन्तु ससारी जीवो मे भी शुद्ध निश्चयनय से इनका अभाव होने से ये अशुद्ध है।

वहाँ इन तीनो मे से भव्यत्व लक्षण वाले पारिणामिक भाव का तो पर्यायार्थिक नय से यथा-सम्भव सम्यक्त्वादि जीव गुणो का घातक, देशघाती और सर्वघाती सज्ञावाला मोहादि कर्म-सामान्य प्रच्छादक है – ऐसा समझना चाहिए। वहाँ जब काल आदि लब्धियो के वश से भव्यत्व शक्ति की अभि-व्यक्ति होती है तब यह जीव सहज शुद्ध पारिणामिक भाव लक्षण निज परमात्म-द्रव्य के सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान और आचरण पर्याय रूप मे परिणमन करता है, उसी परिणमन को आगम भाषा मे औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक भाव इन तीनो नामो से कहा जाता है तथा उसे अध्यात्म भाषा मे शुद्ध आत्माभिमुख परिणाम, शुद्धोपयोग इत्यादि पर्यायरूप सज्ञा दी जाती है।

---

१ "द्वयाभावादिति" के स्थान पर "त्रयाभावादिति" होना चाहिए।

स च पर्यायः शुद्धपारिणामिकभावलक्षणशुद्धात्मद्रव्यात्कथंचिद्भिन्न । कस्मात् ? भावनारूपत्वात् । शुद्धपारिणामिकस्तु भावनारूपो न भवति । यद्येकान्तेन शुद्धपारिणामिकादभिन्नो भवति तदास्य भावनारूपस्य मोक्षकारणभूतस्य मोक्षप्रस्तावे विनाशे जाते सति शुद्धपारिणामिकभावस्यापि विनाशः प्राप्नोप्ति; न च तथा । ततःस्थितं – शुद्धपारिणामिकभावविषये या भावना तद्रूपं यदौपशमिकादिभावत्रयं तत्समस्तरागादिरहितत्वेन शुद्धोपादानकारणत्वात् मोक्षकारणं भवति, न च शुद्धपारिणामिकः । यस्तु शक्तिरूपो मोक्षः स शुद्धपारिणामिकपूर्वमेव तिष्ठति । अयं तु व्यक्तिरूपमोक्षविचारो वर्तते ।

वह शुद्धोपयोगरूप पर्याय शुद्ध पारिणामिक भाव लक्षण शुद्धात्म द्रव्य से कथचित् भिन्न है, क्योंकि वह भावनारूप है, किन्तु शुद्ध पारिणामिकभाव भावनारूप नही है । यदि इस भावनारूप पारिणाम को एकान्तरूप से शुद्ध पारिणामिकभाव से अभिन्न ही मान लिया जाए तो मोक्ष की कारणभूत भावना रूप परिणाम का तो मोक्ष हो जाने पर नाश हो जाता है, तब उसके नाश हो जाने पर शुद्ध पारिणामिकभाव का भी नाश हो जाना चाहिए, सो ऐसा है नही, इसलिये यह निश्चित है कि शुद्ध पारिणामिक भाव के विषय में भावनारूप जो औपशमादिक तीन भाव है वे समस्त रागादिक विकारभावों से रहित होने से शुद्ध उपादान कारणरूप है इसलिये मोक्ष के कारण होते है, किन्तु शुद्ध पारिणामिकभाव मोक्ष का कारण नही है । हाँ, जो शक्तिरूप मोक्ष है वह तो शुद्ध पारिणामिकरूप पहले से ही प्रवर्तमान है किन्तु यहाँ पर तो व्यक्तिरूप मोक्ष का विचार चल रहा है । ऐसा ही सिद्धान्त मे लिखा है कि 'निष्क्रिय शुद्ध पारिणामिक' अर्थात् शुद्ध पारिणामिक भाव तो निष्क्रिय होता है ।

तथा चोक्तं सिद्धान्ते – 'निष्क्रियः शुद्धपारिणामिकः' निष्क्रिय इति कोऽर्थः ? बन्धकारणभूता या क्रिया रागादिपरिणतिः तद्रूपो न भवति, मोक्षकारणभूता च क्रिया शुद्धभावनापरिणतिस्तद्रूपश्च न भवति। ततो ज्ञायते शुद्धपारिणामिकभावो ध्येयरूपो भवति ध्यानरूपो न भवति। कस्मात् ? ध्यानस्य विनश्वरत्वात् तथा योगीन्द्रदेवैरप्युक्तं –

णवि उपज्जइ णवि मरइ बंध ण मोक्खु करेइ।
जिउ परमत्थे जोइया जिणवर एउ भणेइ॥

किंच विवक्षितैकदेशशुद्धनयाश्रितेयं भावना निर्विकारस्वसंवेदनलक्षणक्षायोपशमिकज्ञानत्वेन यद्यप्येकदेशव्यक्तिरूपा भवति तथापि ध्यातापुरुषः यदेव सकलनिरावरणमखंडैक-

---

प्रश्न – निष्क्रिय का क्या अर्थ है ?

उत्तर – रागादिमय परिणतिवाली बन्ध की कारणभूत क्रिया रूप नही होना तथा मोक्ष की कारणभूत शुद्ध भावनारूप परिणति रूप भी नही होना। इससे यह जाना जाता है कि शुद्ध पारिणामिक भाव ध्येयरूप है परन्तु ध्यानरूप नही है क्योकि ध्यान विनाशशील है। जैसा कि योगीन्द्रदेव ने भी अपने परमात्मप्रकाश मे लिखा है –

हे योगी ! परमार्थ से, जन्मे मरे न जीव।
बन्ध-मोक्ष करता नहीं, जिनवर कहें सदीव॥

अर्थात्–हे योगी ! सुन, परमार्थ दृष्टि से देखने पर यह जीव न तो उपजता है, न मरता है, न बन्ध ही करता है, न मोक्ष ही प्राप्त करता है – ऐसा श्री जिनेन्द्र भगवान कहते है।

और विशेष कहते हैं कि विवक्षित एक देश शुद्धनय के आश्रित होने वाली यह भावना निर्विकार स्वसवेदन लक्षण क्षायोपशमिक ज्ञानरूप होने के कारण यद्यपि एक देश व्यक्ति

प्रत्यक्षप्रतिभासमयमविनश्वरं शुद्धपारिणामिकपरमभावलक्षणं निजपरमात्मद्रव्यं तदेवाहमिति भावयति, न च खंडज्ञानरूप-मिति भावार्थः।

इदं तु व्याख्यानं परस्परसापेक्षागमाध्यात्मनयद्वया-भिप्रायस्याविरोधेनैव कथितं सिद्ध्यतीति ज्ञातव्यं विवेकिभिः ॥३२०॥

रूप है, फिर भी ध्यान करने वाला पुरुष यही भावना करता है कि जो सकलनिरावरण अखण्ड, एक, प्रत्यक्ष प्रतिभासमय अविनश्वर और शुद्ध पारिणामिक लक्षण वाला निज परमात्म द्रव्य है, वही मैं हूँ अपितु खण्ड ज्ञानरूप मै नही हूँ।

विवेकी जनो को ऐसा जानना चाहिए कि यह व्याख्यान परस्पर सापेक्ष आगम और अध्यात्म दोनों नयों के अभिप्राय के अविरोध से कहा गया सिद्ध होता है।

आद्यन्तमुक्तमनघं परमात्मतत्त्वं,
निर्द्वन्द्वमक्षय विशालवर प्रबोधम्।
तद् भावनापरिणतो भुवि भव्यलोकः,
सिद्धि प्रयाति भवसम्भव दुःखदूराम् ॥

परमात्मतत्त्व आदि अन्त रहित है, दोष रहित है, निर्द्वन्द्व है और अक्षय विशाल उत्तम ज्ञान स्वरूप है। जगत में जो भव्य जन उसकी भावनारूप परिणत होते है, वे भवजनित दुःखजनित दु खो से दूर ऐसी सिद्धि को प्राप्त करते है।

नियमसार, शुद्धभाव अधिकार कलश-६८

पूज्य कानजी स्वामी के प्रवचन

भगवान आत्मा तो ज्ञानस्वभावी है। राग को करना या राग को भोगना आत्मा का स्वभाव नही है। आत्मा इन शरीरादि पर पदार्थों का तो करता है ही नही, पर रागादि का करना और रागादि का वेदना भी आत्मा के ज्ञानस्वभाव मे नही है। इस गाथा मे यह बात दृष्टान्त से समझाते हैं।

जिस प्रकार आँख दृश्यमान अग्निरूप वस्तु को देखती है, परन्तु संधुक्षण करने वाले (अग्नि को जलाने वाले) पुरुष के समान अग्नि को करती नही है। पुरुष अग्नि आदि दृश्यमान पदार्थों को करता है, परन्तु आँख दृश्यमान पदार्थों को मात्र देखती है, करती नही है। तथा तपे हुए लोहे के गर्म गोले की तरह आँख अग्नि को अनुभवरूप से नही वेदती। लोहे का गर्म गोला अग्नि को ऊष्णता को वेदता है परन्तु आँख ऊष्णता का वेदन नही करती। उसीप्रकार ज्ञायक स्वभावी आत्मा पुण्य-पापरूप भावो को करता और वेदता नही है। लोग दया पालते हैं, व्रतादि करते है, दान करते है, परन्तु भाई ! यह सब तो राग है। इस राग का करना और वेदना आत्मा के ज्ञानस्वभाव मे नही है। अपना ऐसा स्वभाव जब तक दृष्टि मे नही आता, तब तक यह जीव अज्ञानी रहता है।

आँख की तरह शुद्ध ज्ञान (अभेदनय से शुद्धज्ञानपरिणत जीव) भी स्वय शुद्ध-उपादानरूप से राग को करता नही और वेदता भी नही। देखो, यहाँ शुद्ध ज्ञानरूप परिणमित जीव की बात है। शुद्धज्ञान अर्थात् गुण और शुद्धज्ञान परिणत जीव अर्थात् द्रव्य। मै एक शुद्ध ज्ञानस्वभावी आत्मा हूँ — ऐसा जिसे अन्तर मे शुद्धज्ञानमय परिणमन हुआ, वह जीव शुद्ध-उपादान रूप से दया, दान, व्रत आदि रागभाव को करता नही और

वेदता नही, क्योकि आत्मा का शुद्ध-उपादान तो एक शुद्ध चैतन्यमय है।

यहाँ त्रिकाली ज्ञानगुण तथा शुद्ध ज्ञानरूप परिणमित जीव, इन दोनो को राग का अकर्त्ता और अवेदक कहा है।

बापू ! यह बाहर के सब काम मै व्यवस्थित कर सकता हूँ – ऐसा मानने वाला जीव मिथ्यादृष्टि है। यहाँ कहते है कि स्वभावसन्मुख दृष्टि द्वारा शुद्धज्ञानरूप से परिणमित हुआ जीव, बाहर के काम करना तो दूर रहो, पुण्य और पापरूप भावो का भी कर्त्ता और भोक्ता नही हैं। अहाहा ! ज्ञान गुण भी ऐसा नही और शुद्ध ज्ञान परिणत जीव भी ऐसा नही है। यहाँ शुद्धज्ञान परिणत जीव द्रव्य क्यो कहा ? क्योकि त्रिकाली शुद्धद्रव्य तो राग को करता भी नही और वेदता भी नही, ऐसा ही उसका स्वभाव है, परन्तु परिणमन शुद्ध हुए बिना राग का अकर्त्तापना और अवेदकपन सिद्ध कैसे होगा ? द्रव्य शुद्धज्ञानरूप से परिणमे तब वह राग को करता नही और वेदता नही – ऐसा सिद्ध होता है। यह तो सर्वज्ञ के घर की, अन्तर की बात है। ज्ञान-स्वभावी आत्मा मात्र ज्ञानरूप से ही परिणमित होता है ! राग को करना और वेदना ज्ञानस्वभाव मे है ही नही, परन्तु जब ज्ञान का अनुभव हो तभी वह समझ मे आवे न ? शुद्धज्ञान परिणत जीव को ही ऐसा निर्णय होता है कि जीव राग का कर्त्ता और भोक्ता नही है।

भगवान आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप प्रभु त्रिकाल शुद्ध और पवित्र है। उसे ध्येय बनाकर उसके लक्ष्य से जब पर्याय में शुद्ध परिणमन होता है, तब वह जीव राग का कर्त्ता और हर्ष-शोक का भोक्ता नही होता। शुद्धरूप से परिणमन हुए बिना द्रव्यस्वभाव राग का कर्त्ता-भोक्ता नही है – ऐसा निर्णय किस प्रकार हो ? गुण और गुणी दोनो का शुद्ध ज्ञानमय परिणमन

हो तभी वह जीव व्यवहार के विकल्परूप शुभभावो का कर्त्ता और भोक्ता नही है – ऐसा यथार्थ निर्णय होता है। ज्ञानी को अशुभ राग भी आता है, पर वह उसका कर्त्ता-भोक्ता नही है।

धर्मी अर्थात् भगवान आत्मा का धर्म ज्ञान और आनन्द है। जिसकी पर्याय मे ज्ञान और आनन्दरूप परिणमन हुआ वह जीव या उस जीव का ज्ञान दया, दान, व्रत, तप आदि के विकल्प का कर्त्ता और भोक्ता कभी नही होता। ऐसी सूक्ष्म बात है।

पाठान्तर – 'दिट्ठी खयं पि णाण' मात्र दृष्टि ही नही परन्तु क्षायिक ज्ञान भी निश्चय से कर्मो का अकारक और अवेदक है। जैसे नेत्र पर का कर्त्ता या भोक्ता नही है वैसे ही क्षायिक ज्ञान या ज्ञानपरिणत जीव भी दया, दान आदि विकल्पो का कर्त्ता भोक्ता नही है।

देखो, पहले दो बोलो मे दृष्टि का (द्रव्यदृष्टि का) जोर दिया है। अब यहाँ क्षायिक ज्ञान की बात करते है। जैसा शक्तिरूप से सर्वज्ञपना है, वैसा पर्याय मे प्रगट होने वाले सर्वज्ञपने को क्षायिकज्ञान कहते है। वह क्षायिकज्ञान भी निश्चय से राग का अकारक तथा अवेदक है। अहा! सर्वज्ञ भगवान को योग का कम्पन है, परन्तु वे उसके भी अकारक और अवेदक है। 'क्षायिकज्ञान भी' – यहाँ 'भी' शब्द क्यो लिया? क्योकि प्रथम दो बोलो मे कहे गए शुद्धज्ञान और शुद्ध ज्ञान रूप परिणमित जीव के समान क्षायिकज्ञान भी निश्चय से कर्मों का अकारक तथा अवेदक है – ऐसा कहना है। यहाँ कर्म शब्द से राग-द्वेष आदि भाव-कर्म समझना चाहिए।

बहुत वर्ष पहले एक भाई ने प्रश्न किया था कि महाराज! सिद्धभगवान क्या करते है? इतने बडे भगवान है तो वे जगत का कुछ न करे?

तब हमने उनसे कहा था कि भाई! सिद्ध भगवान जगत का कुछ नही करते, वे तो अपने अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द को वेदते है। वे जगत के पदार्थों के अकर्त्ता और अभोक्ता है। अज्ञानी मानता है कि हम ससार मे पाँच-पच्चीस लोगो का निर्वाह करते हैं, पर भाई ये तेरी मिथ्या मान्यता है, वस्तुस्थिति ऐसी नही है। तुझे बाह्य स्थूल दृष्टि मे ऐसा लगता है कि हम पर का काम करते है, पर वास्तव मे पर का कार्य कोई (आत्मा) कर सकता ही नही। आत्मा पर को छूता भी नही है, वह पर का क्या कर सकता है? क्षायिकज्ञान पर का कुछ करे – ऐसा तो नही है, पर वह रागादि भाव-कर्मो का भी अकारक और अवेदक है।

इस प्रकार क्षायिकज्ञान की बात करके, अब फिर से शुद्धज्ञानपरिणत साधक जीव की बात करते है। जो अभी स्वयं सिद्ध नही हुआ, अभी जिसे केवलज्ञान नही हुआ – ऐसा शुद्धज्ञानपरिणत साधक जीव अवस्था मे (पर्याय मे) होने वाले राग-द्वेष को करता नही, मात्र जानता है।

सुबह के प्रवचन मे आया था कि राग और पर से भिन्न त्रिलोकीनाथ भगवान हमने तुझे बताया तो तीन लोक मे ऐसा कौन सा जीव होगा जिसे ज्ञान का परिणमन न हो? समयसार गाथा ३१, ३२, ३३ मे विकल्प से भिन्न चैतन्यघन प्रभु आत्मा बताया है। अहा! उसे जानकर ऐसा कौन पुरुष है जिसे भेदज्ञान न हो? (अर्थात् भेदज्ञान अवश्य होगा)

इस शास्त्र की पाँचवी गाथा मे भी आचार्यदेव ने कहा है कि – 'जदि दाएज्ज पमाण' जो मैं शुद्धज्ञानघन एकत्व-विभक्त आत्मा को दिखाऊँ तो हे शिष्य! तू प्रमाण करना। प्रमाण करना अर्थात् स्वाभिमुख होकर स्वानुभव करके प्रमाण करना "मै तुझे दिखाऊँ तो" – आचार्यदेव के इस कथन से

सिद्ध होता है कि वहाँ शुद्धात्मा को देखने वाला, स्वानुभव से प्रमाण करने वाला पात्र शिष्य भी है। अहो ! ऐसी अद्‌भुत अलौकिक बात करके आचार्यदेव ने जगत को निहाल कर दिया है। अहा ! अन्तर मे जहाँ खबर पडी कि मै स्वय महाप्रभु-चैतन्यमहाप्रभु आत्मा हूँ तो उसकी सभाल करके उसका अनुभव क्यो न करे ? अवश्य ही करे।

देखो, यहाँ भी स्वानुभवमण्डित शुद्धज्ञानपरिणत जीव की बात की है, अकेला सुनने वाला जीव नही लिया। यह शुद्धज्ञानपरिणत जीव क्या करता है ? जानता है। किसे ? बन्ध और मोक्ष को।

अहाहा ! अन्दर मे चैतन्यमहाप्रभु शुद्धज्ञानप्रकाश का पुञ्ज आत्मा विद्यमान है। ऐसा आत्मा ज्ञानरूप से प्रकाशे कि राग मे अटक कर राग को करे और राग को वेदे ? जो राग है, वह भावबन्ध है और जड कर्म-बन्ध का निमित्त है। यहाँ कहते है कि – ज्ञानपरिणत जीव राग और जड कर्म-बन्ध से दूर रहकर उन्हे पृथक्‌रूप से जानता है।

अभी ऐसी बात कहाँ है ? अरे ! लोगो ने तो अत्यन्त स्थूल मान लिया है कि वस्त्र सहित हो वह श्वेताम्बर और वस्त्ररहित हो वह दिगम्बर। परन्तु बापू ! दिगम्बर धर्म तो वस्तु का स्वरूप है। अन्दर मे राग से नग्न – शून्य बिनमूरत चिनमूरत प्रभु आत्मा विराज रहा है, वह यथार्थ दिगम्बर स्वरूप है। जिसे ऐसे निज स्वरूप का भान हुआ है – ऐसा शुद्धज्ञान-परिणत धर्मी पुरुष पर्याय मे होने वाले बन्ध को मात्र जानता ही है अर्थात् करता नही है।

जिस प्रकार ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा मात्र ज्ञान-प्रकाश का पुंज त्रिकाल अस्तिरूप है, उसी प्रकार रागादि बन्ध भी वर्तमान अस्तिरूप है। अवस्था मे बन्ध है ही नही – ऐसा

नही है, परन्तु सम्यग्दृष्टि धर्मी जीव उस रागादि बन्ध भाव को दूर रहकर जानता है, वह उसे करे या उसे वेदे – ऐसा नही है।

राग मे तन्मय होकर राग को करने और वेदनेवाला जीव मिथ्यादृष्टि है। क्या कहा? इन दया, दान, व्रत, तप आदि के शुभ विकल्पो को जीव करता है और वेदता है – ऐसा जिसने माना है उसकी तो दृष्टि ही मिथ्या है, क्योकि उसे राग से अधिक (भिन्न) ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा का भान नही हुआ। वह तो राग मे ही एकत्व करता है और राग मे ही एकत्व करके उसे वेदता है – ऐसे जीव की यहाँ बात नही है। यहाँ तो जिसके ज्ञान और प्रतीति में आया कि मैं राग से भिन्न पूर्णज्ञानघनस्वरूप भगवान आत्मा हूँ – ऐसे शुद्धज्ञानपरिणत जीव की बात है। अहाहा! उसने ज्ञान के व्यक्त अश मे ऐसा जाना कि यह व्यक्तरूप ज्ञान तो अश है, पर मेरी वस्तु तो अदर ध्रुव परिपूर्ण है। ध्रुव मे ध्रुव नही जाना जाता, पर ध्रुव के लक्ष्य से जो परिणमन हुआ उसमे ध्रुव जाना जाता है। अहा! वह ज्ञान का अंश अवस्था मे होने वाले राग और बंध को भी जानता है। ज्ञान जैसे स्व को जानता है, वैसे ही राग को भी जानता है।

भाई! यह बात कठिन लगे पर सत्य बात तो यही है। आजकल तो यह बात सुनने को मिलना भी दुर्लभ है।

अहाहा! भगवान आत्मा सदा ज्ञानस्वरुपी प्रज्ञाब्रह्म-स्वरूप है। जिसने उसका पूर्ण आश्रय किया उन सर्वज्ञ पर-मात्मा को एकसमय मे तीन लोक और तीन काल का ज्ञान होता है। उनका शरीर नग्न होता है और उन्हे आहार-पानी नही होता। वे तो अतीन्द्रिय आनन्द के कर्त्ता-भोक्ता है। जिसे क्षायिकज्ञान प्रगट होता है, उसे परमात्मा कहते है। वे

सर्वज्ञ परमात्मा पूर्ण आनन्दमयी दशा के वेदन मे रहते है। वे किसी का कुछ करें या किसी को कुछ दे – यह बात ही कहाँ रहती है ?

शंका परन्तु भगवान करुणा करते है या नही ? भगवान करुणा-सागर तो कहलाते है ?

समाधान – नही, भगवान किसी की करुणा नही करते। भाई ! करुणा का भाव तो विकल्प (राग) है, और भगवान को करुणा का विकल्प नही होना।

भगवान की ओम् ध्वनि सुनकर अथवा भगवान के वीतरागस्वरूप को जानकर कोई भव्य जीव स्वय अपनी करुणा-दया करे और अपने हितरूप प्रवर्ते तो वह भगवान की करुणा-दया है – ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। भगवान करुणासागर है – यह कथन व्यवहार का ही समझना चाहिए। भगवान तो क्या, निश्चय से कोई जीव किसी अन्य जीव की दया कर सके – ऐसी वस्तुस्थिति ही नही है। इसलिए तो प्रव नसार शास्त्र की गाथा ८५ मे कहा है कि –

अयथार्थ ग्रहण पदार्थ का, करूणा मनुज तिर्यञ्च मे।
अरु संग विषयो का कहा, ये चिन्ह जानो मोह के॥

पदार्थों का अयथार्थग्रहण (अर्थात् पदार्थो का जैसा है वैसा सत्यस्वरूप न मानना, उसके विषय मे अन्यथा समझना और तिर्यञ्च-मनुष्यो के प्रति करुणाभाव, तथा विषयो का सग (अर्थात् इष्ट विषयो के प्रति प्रीति और अनिष्ट विषयो के प्रति अप्रीति) ये मोह के लिंग - चिन्ह है। बापू ! यह तो मार्ग ही जुदा है। नाथ ! अपने को राग का कर्त्ता माननेवाला तो मिथ्यादृष्टि है ही, परन्तु जो भगवान को पर का और राग का करनेवाला और भोगनेवाला माने – वह भी मिथ्यादृष्टि है।

यहाँ तो कहते हैं कि जिसकी अवस्था मे किञ्चित् राग विद्यमान है ऐसा शुद्धज्ञान परिणत धर्मी जीव भी राग का अकर्ता तथा अवेदक है। सूक्ष्म बात है प्रभु ! शक्तिरूप मे तो आत्मा त्रिकाल ज्ञानानन्दस्वरूप है – ऐसे आत्मा का आश्रय होने पर जिसे ज्ञान और आनन्द की रचना करने वाला वीर्य पर्याय मे जागा और अतीन्द्रिय ज्ञान-आनन्द रस का स्वाद आया – ऐसा धर्मी साधक जीव बन्ध और मोक्ष को जानता है।

केवली भगवान पूर्ण वीतराग है, इसीलिए उन्हे तो राग भी नही है और बन्ध भी नही है, पर यहाँ ऐसा कहते है कि जिसे सच्चिदानन्दस्वरूप पूर्णानन्दप्रभु आत्मा का अन्तर में भान हुआ है – ऐसा आंशिक शुद्धतारूप परिणमित धर्मी जीव भी राग का अकारक और अवेदक है। अहा ! वह राग को और बन्ध को जानता है, करता नही। धर्मी पुरुष राग को ज्ञान की दशा मे जानता है कि यह राग है, (दूसरी वस्तु है) यह मेरा है और इसका वेदन मुझे है – ऐसा नही मानता।

अहो ! धर्म का स्वरूप अलौकिक है। भाई ! धर्मी जीव बन्ध को भी जानता है और मोक्ष को भी जानता है। वह राग को तथा राग के अभाव को भी मात्र जानता है, उसे करता नही है। समझ मे आया···? जिसे चिच्चमत्कार प्रभु भगवान आत्मा का भान हुआ उस धर्मी पुरुष की अन्तरदशा कोई अद्भुत अलौकिक होती है।

कलकत्ता के एक समाचारपत्र में आया है कि – कानजी स्वामी तो सबको 'भगवान आत्मा' कहकर सम्बोधन करते है। भाई हम तो सबको भगवान आत्मारूप में देखते है भगवान ! हम तो तुझे बालक, जवान या वृद्धरूप देखते ही नही। अहाहा ! अन्दर मे तू पूर्ण ज्ञानानन्दरूप है न प्रभु ! तू 'भय'

अर्थात् ज्ञानानन्दरूप लक्ष्मी का ध्रुव भण्डार है न नाथ ! ऐसे निजस्वरूप का अनुभव करने वाले की अन्तरदशा अलौकिक होती है।

देखो, वीतराग सर्वज्ञदेव की इच्छा बिना ही ओम् ध्वनि निकलती है। अहाहा ! ओम्-ओम्-ओम्--ऐसी दिव्यध्वनि छूटती है। कहा है कि –

"मुख ओंकार धुनि सुनि, अर्थ गणधर विचारै।
रचि आगम उपदेश, भविक जीव संशय निवारै॥"

अहाहा ! भगवान की वाणी छद्मस्थ जैसी क्रमवाली नही होती, वह सर्वांग से स्फुरती हुई निरक्षरी होती है। सर्वज्ञपरमात्मा श्री सीमधरनाथ की ऐसी अमृत वाणी विदेह मे से यहाँ भरतक्षेत्र मे आई है। अहा ! उस वाणी मे ऐसा आया कि शुद्धज्ञान परिणत जीव बन्ध और मोक्ष को जानता है। बस ! जिसे अन्तर मे स्वरूप के अवलम्बन से धर्म प्रगट हुआ है – ऐसा धर्म परिणत जीव,जो राग आता है उसे भी जानता है और जो राग टलता है उसे भी जानता है, पर राग को करता भी नही और राग को टालता भी नही। अहा ! जिसे अन्दर ज्ञानचक्षु प्रगट हुआ है वह समकिती धर्मी पुरुष ऐसा होता है।

अब कहते है – 'मात्र बन्ध-मोक्ष को नही, '**कम्मुदयं णिज्जरं चेव**' शुभ-अशुभरूप कर्मोदय को तथा सविपाक-अविपाकरूप और सकाम-अकामरूप दो प्रकार की निर्जरा को भी जानता है।"

जहाँ तक पूर्ण वीतराग सर्वज्ञ नही हुआ वहाँ तक साधक जीव को आंशिक बाधकपना भी है। कर्म के उदय के निमित्त से उसे शुभ और अशुभ भाव होता है, पर इन दोनो को साधक धर्मी जीव मात्र जानता है, करता नही। किसी को

लगे कि यह तो नया मार्ग निकाला है, पर अरे भाई ! यह तो अनादि की परम्परा मे चला आया अनत तीर्थङ्कर भगवन्तो के द्वारा प्ररूपित सनातन मार्ग है। एकबार धीरज और शान्ति से सुन तो सही प्रभु ! अनादि का जो सत्य मार्ग है वही यह है। भगवान आत्मा स्वय सहज ही ज्ञानस्वरूप है, वह क्या करे ? बस जाने। अरे ! अनन्तकाल मे धर्म क्या चीज है ? उसे समझने की कभी दरकार नही की। कदाचित् सुनने गया तो सुनाने वाले भी दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के शुभभाव से धर्म होता है – ऐसा मानने वाले और कहने वाले मिले। वहाँ यह नया क्या करे ? अरे ! ऐसे ही बेचारा स्वरूप को भूलकर चार गतियो मे रखड़कर मरण कर रहा है।

देखो न ! कोई पाँच-पच्चीस लाख का दान दे तो लोग उसे धर्म-धुरन्धर की उपाधि दे देते है। क्या कहे ? ऐसे जीवो को धर्म क्या चीज है ? इसकी खबर ही नही है। एक करोडपति ने एकबार पचास हजार का दान दिया तो उसे श्रावक शिरोमणि की उपाधि दे दी। अरे भाई ! श्रावक शिरोमणि किसे कहते है इसकी खबर ही नही। श्रावक की व्याख्या तो ऐसी है कि – 'श्र' अर्थात् वास्तविक तत्वस्वरुप जैसा है, वैसा श्रवण करके उसकी श्रद्धा की हो, 'व' अर्थात् राग से आत्मा भिन्न है – ऐसा विवेक किया हो और 'क' अर्थात् स्वानुभव की क्रिया का करने वाला हो – इसका नाम श्रावक है। भाई ! यह तो वस्तु स्थिति है।

यह सुनकर उस करोड़पति सेठ ने यहाँ कहा महाराज ! मुझे तो एक भी व्रत या प्रतिमा नही, आत्मा का भान भी नही, लोगो ने समझे बिना ही मुझे 'श्रावकशिरोमणि' की उपाधि दे दी है। तब हमने कहा कि भाई ! लोग तो पैसा खर्च करने वाले को धर्म-धुरधर नाम दे देते है, पर बापू ! धर्म

का स्वरूप इससे जुदा है। धर्म तो अन्तर के आश्रय से प्राप्त होता है, पैसे से नही।

प्रभावना के लिए लाखो रुपये दान मे देने का, बडा मन्दिर बनाने का, जिनप्रतिमा पधराने का, इत्यादि भाव गृहस्थ को अवश्य आते है और आना ही चाहिये, पर वहाँ राग की मन्दता की हो तो शुभ राग के कारण पुण्यबन्ध होता है, पर धर्म नही। धर्मी जीव तो पुण्यबन्ध का अकारक और अवेदक है।

भगवान आत्मा ज्ञानमूर्ति प्रभु चैतन्यचक्षु है। जैसे आँख दृश्यमान पदार्थ को देखती है, परन्तु दृश्य मे नही जाती, वैसे ही चैतन्यचक्षु प्रभु आत्मा पर को जानता है, परन्तु पर मे नही जाता, पर से भिन्न रहकर पर को जानता है – यह सर्व तत्वज्ञान का निचोड है। अज्ञानी इसे नही जानता, समकिती ही उसे यथार्थ जानता है।

समकिती जीव अकेला बन्ध और मोक्ष को जानता है – ऐसा नही है, वह कर्म के उदय मे जो शुभाशुभ भाव होते है, उन्हे भी जानता है। धर्मी को शुभभाव होता है और अशुभभाव भी होता है। चारित्रमोह के उदय मे उसे आर्त-ध्यान और रौद्रध्यान के परिणाम भी अपनी कमजोरी के कारण हो जाते है। स्त्री सम्बन्धी विषय का राग भी आता है, परन्तु ज्ञानी उन शुभाशुभ कर्मोदय से भिन्न रहकर उन्हे जानता है। अहाहा! ज्ञान क्या करे? बस जाने। आँख है, वह अन्य चीज का क्या करे? बस देखे, पर आँख अन्य चीज को रचे या तोडे – यह आँख का कार्य नही। उसी प्रकार शुभाशुभ भाव को करे या छोडे – यह ज्ञान का कार्य नही। धर्मी जीव कर्म के उदय मे जो शुभभाव होते है उन्हे भी जाने और देह की जो क्रिया होती है उसे भी जानता है, क्योकि ज्ञानी अपनी

भूमिका मे रहता है पर वह राग की भूमिका में प्रवेश नही करता।

हमारी छोटी उम्र के समय मूलजी नाम का एक ब्राह्मण हमारे पडोस मे रहता था। हमारी माँ भूँभली की थी, वह भी भूँभली का रहनेवाला था। हम उसको मूलजी मामा कह कर बुलाते थे। वह सबेरे उठ कर नहाने के बाद बोलता था कि –

"अनुभवी को इतना कि आनन्द में रहना रे,
भजना परिब्रह्म को, अन्य कुछ न कहना रे।।"

यह बात ७७ वर्ष पहले की है, उस समय हम तो छोटे बालक थे, पर हमको लगा कि मामा जो बोलता है वह कुछ जानने जैसा है। मामा को तो कहाँ खबर थी कि इसमे क्या भाव है ? पर हमे ख्याल रह गया कि मामा जो बोलता है उसमे कुछ रहस्य भरा है। वह रहस्य यह है कि – अनुभवी को अर्थात् सम्यग्दृष्टि-धर्मी ज्ञानी को बस आनन्द मे सदा रहना। भले शरीर हो, सगा हो, परिवार हो – ये सब रहा अपने घर, अनुभवी को तो बस इतना कि सदा अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभव मे मस्त रहना। भगवान आत्मा परिब्रह्म नाम समस्त प्रकार आनन्द का नाथ है। अहाहा ! ऐसा जो अपना आत्मा है, उसको भजना-अनुभवना, बस ये ही धर्मी का कार्य है।

यहाँ भी ऐसा कहते है कि चौथे गुणस्थान मे समकिती धर्मात्मा को कर्म के उदय के निमित्त से जो जो शुभ-अशुभ भाव आते है उनका वह अकारक और अवेदक है, वह उनसे भिन्न रहकर उन्हे जानता मात्र है। अहाहा ! मिथ्यादृष्टि कर्मोदय में और शुभाशुभ भाव में एकरूप-तद्रूप रहकर उसका कर्त्ता और भोक्ता होता है, जब कि सम्यग्ज्ञानी धर्मी पुरुष उन्हे दूर से मात्र जानता है, उनमे एकरूप नही होता।

ज्ञानी जैसे कर्मोदय को जानता है वैसे सविपाक-अविपाक निर्जरा को भी जानता है, करता नही है । आत्मा अकेला ज्ञान और आनन्दस्वरुप है । अहाहा ! ऐसा जिसे अन्तर मे भान हुआ वह ज्ञाता-दृष्टा हुआ, जानने वाला, देखने वाला हुआ । वस्तु सहज ज्ञाता-दृष्टा स्वभावी है । उसका भान होने पर वर्तमान दशा मे ज्ञाता-दृष्टापना प्रगटा । अहाहा ! ऐसा ज्ञानी सविपाक-अविपाकरुप और सकाम-अकामरुप – ऐसी दो प्रकार की निर्जरा को बस जानता है ।

देखो, वर्तमान मे यह मनुष्यगति है तो भी अन्दर नरकगति, देवगति आदि चार गति उदय होता है । पूर्व का बाँधा हुआ कर्म पडा है इसलिए देवगति का उदय तो आता है पर वह खिर जाता है, उसे सविपाक निर्जरा कहते है । इस-प्रकार पाक आकर कर्म खिर गया, उसे ज्ञानी जानता है । जिसे आत्मा का भान होने पर शान्ति और आनन्द का परिणमन हुआ है, उस जीव को पूर्व मे बाँधे हुए गति आदि कर्म उदय मे आकर खिर जाते है, उसे सविपाक निर्जरा कहते हैं और ज्ञानी उसे जानता है । विपाक अर्थात् कर्म का फल देकर खिर जाना । स्थिति पूरी होने पर उदय मे आकर कर्म का खिर जाना, उसका नाम सविपाक निर्जरा है । विपाक अर्थात् विशेष पाक, सत्ता मे पडे हुए कर्म पक कर खिर जाते है । ऐसी सविपाक निर्जरा को ज्ञानी जानता है ।

अब अविपाक निर्जरा की बात करते है । ज्ञानानन्द स्वभावी भगवान आत्मा के अनुभवरुप उग्र पुरुषार्थ होने पर, कर्म का उदय मे आए बिना खिर जाना अविपाक निर्जरा है । कर्म की उदय मे आने की योग्यता है, परन्तु तत्काल उदय मे नही आया और खिर गया – यह अविपाक निर्जरा है ।

वर्तमान मे यहाँ मनुष्यगति का उदय है। वर्तमान एक गति विपाकरूप है, दूसरी-तीसरी गति विपाकरूप नही है, पर अन्दर उदय मे आए विना उसका खिर जाना अविपाक निर्जरा है। ज्ञानी उसे जानता है। आनन्द का नाथ प्रभु त्रिकाली आत्मा है, उसमे अन्त-पुरुषार्थ करने पर आने वाला कर्म पुरुषार्थ से खिर जाता है उसे अविपाक निर्जरा कहते हैं, उसे भी ज्ञानी पुरुष बस जानता है, करता नहीं।

ज्ञानी सकाम-अकामरूप दो प्रकार की निर्जरा को भी जानता है। अहो! धर्मी जोव ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव से परिणमता है। किसी दिन दस वजे भोजन करने का टाइम हो पर प्रसङ्गवश किसी समय विघ्न आ जाए और दोपहर दो-तीन वजे भोजन लेना पडे तो वहाँ वह आकुल-व्याकुल नही होता, पर सम-भाव से सहन करता है। तव जो निर्जरा होती है, वह अकाम निर्जरा कहलाती है। अज्ञानी को भी अकाम निर्जरा होती है, पर वह सम-भावपूर्वक नही होती। यहाँ कहते हैं – ज्ञानी को जो अकाम निर्जरा होती है उसे वह जानता है – करता नही है।

समकिती को पुरुषार्थपूर्वक तप वगैरह के द्वारा जो निर्जरा होती है वह सकाम निर्जरा है। ज्ञानी उसका भी ज्ञाता है, कर्त्ता नही। राग होता है, उसे भी ज्ञानी जानता है, करता नही, और राग टलता है उसको भी ज्ञानी जानता है पर करता नही। अहा! ज्ञातास्वभावरूप परिणमित ज्ञानी जीव की अन्तरदशा अद्भुत अलौकिक होती है।

लोग तो वाहर दानादि मे पैसा खर्च करके और राग की मन्दतारूप परिणाम से धर्म होना मानते है, परन्तु भाई! धर्म का ऐसा स्वरूप नही। धर्म तो अन्तर की चीज है और वह शुद्ध ज्ञातादृष्टा स्वभाव के अवलम्बन से प्रगट होता है। अब यह वात कठिन भले पड़े, तो भी बापू! सत्य तो यही है।

जैसे, भगवान केवली का आत्मा एक ज्ञानमात्र भाव मे तन्मय है, वैसे धर्मी-समकिती भी एक ज्ञानमात्र भाव मे तन्मय वर्तता है। अहाहा! देखो तो सही! भगवान का ये समवशरण, ये बारहसभा, ये दिव्यध्वनि! अकेला पुण्य का ढेर! पर बापू! भगवान इसके कर्त्ता नही है। भगवान ने इसमे कही प्रवेश नही किया, स्पर्श नही किया। 'भगवान की वाणी' – ऐसा उपचार से कहा जाता है, वाणी के काल मे भगवान केवली का ज्ञान निमित्त है बस इतना ज्ञान कराने के लिए उपचार से "भगवान की वाणी" – ऐसा कहा जाता है। अहा! ऐसे ज्ञान-स्वरूप भगवान को जो यथार्थ देखे, वही भगवान को यथार्थ देखता है।

तीर्थङ्करो को वाणी का अद्भुत दिव्य योग होता है – यह सत्य है, दूसरो की वैसी वाणी नही होती, तो भी वह वाणी जड वर्गणाओ का परिणमन है, वह भगवान का कार्य नही है। वाणी कार्य और क्षायिकज्ञान उसका कर्त्ता, ऐसा नही है। तथा गणधर देव को, उस वाणी के काल मे जो बारह अङ्गरूप भाव-श्रुतज्ञान खिला, वहाँ वाणी कर्त्ता और गणधरदेव का ज्ञान उसका कार्य – ऐसा भी नही है। अहाहा! ज्ञान के निरालम्बी स्वभाव की महिमा का क्या कहना? ज्ञान वाणी को उपजाता नही। भले दिव्यध्वनि होने मे भगवान केवली का केवलज्ञान ही निमित्तरूप हो, अज्ञानी का ज्ञान निमित्त न हो, तो भी ज्ञान का और वाणी का कर्त्ता-कर्मपना नही है। दोनो ही तत्त्व जुदे-जुदे है।

प्रश्न – आत्मा यदि नही बोलता तो अब हम नही बोलते, मौन ही रहेगे?

उत्तर – अरे भाई! पहले भी तू कहाँ बोलता था, जो अब नही बोलने का अभिमान करता है? मै वाणी न बोलूँ

अर्थात् भाषा को नही परिणमाऊँ – ऐसा माने, उसे भी जड की कर्त्ता-बुद्धि खडी ही है । बापू ! जैसे भाषा बोलना जड की क्रिया है वैसे ही भाषा नही बोलना भी जड की ही क्रिया है। ज्ञानी तो दोनो मे से एक का भी कर्त्ता नही हैं। समझ मे आया ?अहाहा ! ज्ञानी कहते है कि हम वाणी में या विकल्प मे नही रहते,हम तो हमारे ज्ञानमात्र भाव मे ही रहते है। वाणी के या विकल्प के कर्त्तारूप हम को न देखना, देखोगे तो तुम्हारा ज्ञान मिथ्या होगा। अहो ! भगवान केवली की तरह शुद्धज्ञान परिणत धर्मी पुरुष, शरीर को, मन को, वचन को, कर्म के बन्ध-मोक्ष को, कर्मोदय को और निर्जरा को भी नही करता, तो क्या करता है ? मात्र जानता ही है अर्थात् शुद्धज्ञानपने ही रहता है। यह "जानता ही है" – ऐसा जो भाव है, वह मोक्ष-मार्ग है। अहा ! वस्तु स्थिति जैसी है वैसी जाननेरूप रहनेवाला मै तो एक ज्ञायकभाव मात्र आत्मा हूँ – ऐसा अपने को जानना-अनुभवना वह मोक्षमार्ग है –

वीतराग का मार्ग यह कहते श्री भगवान ।
समवशरण के मध्य में सीमन्धर भगवान ।।

देखो, यहाँ पहले पैराग्राफ मे तीन बाते आईं –

१ शुद्ध ज्ञानस्वरूप आत्मा का शुद्धज्ञान,पुण्य-पाप आदि भावो को करता नही और वेदता नही।

२ इसमे शुद्ध ज्ञानपरिणत जीवद्रव्य लिया है। जिसे पर से और राग से भिन्न शुद्ध ज्ञानघन प्रभु आत्मा का निर्मल श्रद्धान हुआ है, वह शुद्ध ज्ञानपरिणत जीव है और वह राग का कर्त्ता या भोक्ता नही है। वह छद्मस्थ है, इसलिए उसे राग आता है पर उसका भी वह अकारक और अवेदक ही है।

३. क्षायिकज्ञान - केवलज्ञान जिसे प्रगट हुआ है, ऐसे केवली परमात्मा रागरहित पूर्ण वीतराग है, इसलिए वे भी कर्मों

के अकारक तथा अवेदक है, उनके शरीर की दशा नग्न होती है और उन्हे आहार-पानी भी नही होता। ऐसे केवली भगवान राग को करते नही तथा वेदते भी नही।

इस प्रकार तीन बाते करके फिर साधक जीव की बात करते हैं कि शुद्धज्ञान परिणत जीव क्या करता है ? कि जानता है। किसे ? बन्ध और मोक्ष को, मात्र बन्ध-मोक्ष को नही, शुभ-अशुभ कर्मोदय को तथा सविपाक-अविपाक रूप और सकाम-अकाम रूप दो प्रकार की निर्जरा को भी जानता है। अहाहा! चौथे, पाँचवे और छठवे गुणस्थानवाला जीव रागरूपी भाव-बन्ध को जानता है और राग का अभाव हो, मोक्ष हो – उसे भी जानता है। वह शुभाशुभ कर्मोदय को और प्रतिसमय होने वाली सविपाक-अविपाकरूप और सकाम-अकामरूप निर्जरा को भी जानता है। वह उनका करने वाला या वेदने वाला नही रहता, मात्र जानने वाला ही रहता है। ये सब अलौकिक बाते है।

जैसे आँख पदार्थो को मात्र देखती है, उसे अपने मे ग्रहण नही करती वैसे आत्मा की आँख अर्थात् शुद्ध ज्ञानपरिणति भी राग-द्वेष को, पुण्य–पाप को करती–भोगती नही, उन्हे ग्रहण नही करती, उनसे जुदी ही वर्तती है। जिस प्रकार यदि आँख अग्नि को करने और भोगने जाए तो आँख अग्निरूप हो जाए अर्थात् जल जाए, उसी प्रकार यदि ज्ञानचक्षु रागादि को करने-भोगने जाए तो वह रागदिरूप हो जाए अर्थात् उसकी शान्ति जल जाए, पर निर्मल ज्ञानपरिणति रागादि भावो को स्पर्शती ही नही, उसे करती या वेदती भी नही। ज्ञानपरिणति का ऐसा सहज स्वभाव ही है। शुद्धज्ञान परिणत आत्मा शुद्ध उपादानरूप से ज्ञान को करता है, पर रागादि को या कर्म को नही करता, नही भोगता, उसे मात्र जानता ही है।

भाई ! केवली को तो राग होता ही नही, इसलिए वह उसे न करे, पर साधक को तो राग होता है, इसलिए वह उसका कर्त्ता होता होगा ? ऐसी शका न करना। साधक का ज्ञान - भावश्रुतज्ञान भी केवलज्ञान की तरह ही पर से – राग से जुदा वर्तता है, उसके लिए राग पर ज्ञेय रूप ही है, ज्ञान उसमे तन्मय नही होता। अहा ! केवली का ज्ञान (केवलज्ञान) हो या साधक का ज्ञान (भाव-श्रुतज्ञान) हो, ज्ञान का स्वभाव ही ऐसा है कि उसमें राग नही समाता, वह तो राग से भिन्न सदा ज्ञायक ही है।

अब भगवान आत्मा कैसा है, उसका त्रिकाली स्वरूप कैसा है ? वह बताते है। अहाहा ! सम्यग्दर्शन का विषय (लक्ष्य) सम्यग्दर्शन का ध्येय, परमात्मस्वरूप ऐसा त्रिकाल आत्मा कैसा है ? वह अब कहते हैं।

"सर्वविशुद्ध-पारिणामिक-परमभावग्राहक शुद्ध उपादानभूत शुद्ध-द्रव्यार्थिकनय से जीव कर्तृत्व-भोक्तृत्व से तथा बन्ध-मोक्ष के कारण और परिणाम से शून्य है – ऐसा समुदाय पातनिका में कहा गया था।"

आचार्य श्री जयसेन स्वामी ने ३०८ से ३२० तक की गाथाओ को मोक्ष-अधिकार की चूलिका के रूप मे वर्णन किया है। उसके उपोद्घात मे – समुदाय पातनिका मे कहा था कि "सर्वविशुद्ध-पारिणामिक-परमभावग्राहक शुद्ध उपादानभूतशुद्ध-द्रव्यार्थिकनय से जीव कर्तृत्व-भोक्तृत्व से तथा वन्ध-मोक्ष के कारण और परिणाम से शून्य है।"

अहाहा ! यह इस आत्मा के सहज एक शुद्ध स्वभाव की बात है। "सर्वविशुद्ध - पारिणामिक" – अर्थात् आत्मा का सहज अकृत्रिम एक शुद्ध स्वभाव जो सम्यग्दर्शन का विषय है। "परमभावग्राहक" अर्थात् त्रिकाली एक ज्ञायक स्वभाव को

ग्रहण करने वाले अर्थात् जानने वाले शुद्ध-द्रव्यार्थिकनय से जीव कर्म के कर्तृत्व-भोक्तृत्व से और बन्ध-मोक्ष के कारण और परिणाम से रहित है। परमात्मप्रकाश मे (दोहा १९१ की टीका मे) परमानन्द स्तोत्र का श्लोक आता है कि–

आनन्द ब्रह्मणो रूपम् निजदेहे व्यवस्थितम्।
ध्यानहीना न पश्यन्ति जात्यंधा इव भास्करम्॥

अहाहा! देह मे, शरीर मे, भिन्नपने विराजमान ब्रह्म नाम परम स्वभाववान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। परन्तु जिस प्रकार जन्मान्ध पुरुष सूर्य को नही देख सकता उसी प्रकार अन्तरदृष्टिपूर्वक ध्यान से रहित प्राणी आनन्दकन्द प्रभु आत्मा को नही देख सकता। आत्मा अन्दर मे अतीन्द्रिय आनन्दरूप परम स्वभाव, भावरूप है, उसे मिथ्यादृष्टि नही देख सकते।

यहाँ भी कहते है कि– परमभावग्राहक शुद्ध उपादानभूत शुद्ध-द्रव्यार्थिकनय से, जीव कर्तृत्व-भोक्तृत्व से और बन्ध-मोक्ष के कारण और परिणाम से शून्य है। यह एक, आनन्द-रूप, ज्ञायकरूप, ध्रुवस्वभावभावरूप, शुद्ध उपादानभूत त्रिकाली परम स्वभावभाव की बात है। पर्याय मे जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप वीतरागी दशा प्रगट होती है, उसे भी (क्षणिक) शुद्ध उपादान कहते है, पर यहाँ त्रिकाली द्रव्य को शुद्ध-उपादानरूप से ग्रहण करना है।

अहाहा! महामुनिवर दिगम्बर सन्त जयसेनाचार्य की यह टीका है। वे वनवासी मुनि थे, मुख्यपने निजानन्दरस मे लीन रहते थे। वे इस टीका मे कहते है कि परमपारिणामिक परमभावरूप ऐसा जो शुद्ध-द्रव्यस्वभाव है उसे ग्रहण करने वाले अर्थात् जानने वाले शुद्ध उपादानभूत शुद्ध-द्रव्यार्थिकनय से जीव कर्तृत्व-भोक्तृत्व से शून्य है। यहाँ शुद्ध-द्रव्यार्थिकनय से कहा

न ? अर्थात् शुद्ध उपादान तो कर्त्ता-भोक्तापने से त्रिकाल शून्य है, पर उसके लक्ष्य से जो वर्तमान दशा प्रगट होती है, वह भी कर्त्ता-भोक्तापने से शून्य है। अहाहा ! त्रिकाली वस्तु को पकडने वाली आनन्द की दशारूप परिणमित जीव भी शुभाशुभ राग के और पर पदार्थ के कर्त्ता-भोक्तापने से शून्य है। अभी लोगो को यह बात सुनने को नही मिलती इसलिए कठिन लगती है, परन्तु भाई ! यह बात परम सत्य है।

दया, दान, पूजा, व्रत, भक्ति इत्यादि करते-करते निश्चय सम्यक्त्व और निश्चय चारित्र प्रगट हो जाएगा – ऐसा मानने वाले को शुद्ध अन्त.तत्व की खबर नही है। कितने ही लोग तो इस शुद्ध अन्त तत्व की बात को एकान्त मानकर उडा देते हैं। पर अरे प्रभु ! ऐसे भाव से तुझे ससार का परिभ्रमण होगा। भाई ! यह तो तेरे हित को बात है, इसकी उपेक्षा करने से तुझे बहुत नुकशान होगा। अरे ! सर्वज्ञ परमेश्वर भगवान केवली यहाँ रहे नही, तीन ज्ञान और चार ज्ञान की दशा वाले मुनिराज भी रहे नही। इस सत्य का हकार किसके पास कराना ? तूं माने, न माने, पर मार्ग तो यही है, भाई !

शुद्ध चैतन्यमूर्ति भगवान सच्चिदानन्द प्रभु परमभाव - स्वरूप है। वह वर्तमान निर्मल निर्विकार वीतरागी ज्ञान पर्याय से जानने योग्य है। ऐसा आत्मा जिसे दृष्टि मे आया, अनुभव मे आया, वह व्यवहार का, राग का कर्त्ता नही, भोक्ता भी नही, ऐसा वस्तु का स्वरूप है। राग की वृत्ति उठे, उसका कर्त्ता-भोक्ता तो नही पर बन्ध-मोक्ष के कारण और परिणाम से भी आत्मा शून्य है।

अहाहा ! भगवान ! तू कौन है ? कि पूर्णानन्द का नाथ सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा है। त्रिकाली चैतन्य का दल है न प्रभु तू ! तुझे जानने वाले शुद्ध-द्रव्यार्थिकनय से

देखने पर कहते कि तू बन्ध और बन्ध के कारण से तथा मोक्ष और मोक्ष के कारण से रहित है। अहाहा! सम्यग्दर्शन का ध्येयरूप त्रिकाली शुद्ध आत्मा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम से रहित है। यह बात सूक्ष्म है। प्रभु! तू बन्ध के कारण से रहित है पर मोक्ष के कारण से भी रहित है।

भाई! यह तो मूल मुद्दा की रकम की बात है। त्रिकाली ध्येयस्वरूप पूर्ण शुद्ध चिन्मात्र वस्तु भगवान आत्मा बन्धरूप परिणामो का और बन्ध के कारण जो मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग का करता नही है। तथा वह केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य आदि मोक्षरूप परिणामो को नही करता, और मोक्ष के कारण जो निर्मल रत्नत्रय, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप परिणामो को भी नही करता। क्यो? क्योकि भगवान आत्मा त्रिकाली एकरूप ध्रुव वस्तु है और बन्ध-मोक्ष आदि एक समय की पर्याय है। भाई! यह मार्ग सर्वज्ञ से सिद्ध है। शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से आत्मा बन्ध-मोक्ष के कारण और बन्ध-मोक्ष के परिणाम से शून्य है। मोक्ष है, वह परिणाम है – पर्याय है, उसे एकरूप ध्रुवद्रव्य कुछ करता नही।

भाई! जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ तीर्थङ्कर परमात्मा को सर्वज्ञदशा प्रगट होती है, उसमे भगवान को तीनकाल-तीन लोक ज्ञान होता है। भगवान को उन्हे जानने की इच्छा नही होती। उनको बारहवे गुणस्थान मे पूर्ण वीतरागता प्रगट होती है और उसके बाद तेरहवे गुणस्थान मे केवलज्ञान प्रगट होता है। केवलज्ञान की पर्याय ध्रुवद्रव्य नही करता है। सम्यग्दर्शन का विषय जो ध्रुव त्रिकाली चैतन्यद्रव्य है, वह बन्ध-मोक्ष के कारणो का करता नही है।

अहो ! ऐसी बात अन्यत्र कहाँ है ? एक दिगम्बर धर्म में ही है। पर उसमे भी (दिगम्बर सम्प्रदाय मे भी) अब यह बात इस प्रकार नही चलती, आजकल बहुत फेरफार हो गया है। सम्यग्दर्शन के विषयभूत ध्रुव दशावान पदार्थ मे पलटती हुई, बन्ध-मोक्ष की दशाओ का अभाव है। बन्ध-मोक्ष का परिणाम तो उत्पाद-व्ययरूप पलटता हुआ परिणाम है, उसका ध्रुव में अभाव है। तत्वार्थसूत्र में "उत्पाद्व्ययध्रुवयुक्त सत्"– ऐसा आता है न ? उसमे ध्रुव जो त्रिकाली सत् है, उसमे उत्पाद-व्यय का अभाव है अर्थात् ध्रुव उत्पाद-व्यय को (पलटती पर्याय को) नही करता – ऐसा कहते है। बापू ! भगवान का मार्ग ही जुदा है भाई !

मोक्ष महल की परथम सीढी – अहाहा ! ऐसा सम्यग्दर्शन कोई अलौकिक चीज है, तो मुनिदशा की तो बात ही क्या ? जिसे तीन कषाय के अभाव सहित अन्तर मे प्रचुर आनन्द का स्वाद - अनुभव है और बाहर मे वस्त्र का एक धागा भी नही है, जङ्गल मे जिसका वास होता है – ऐसे दिगम्बर सन्तो की क्या बात करना ? छट्ठे-सातवे गुणस्थान मे झूलते इन मोक्षमार्गी मुनिवरो की दशा महा अलौकिक होती है। बापू ! मुनि तो साक्षात् धर्मस्वरूप है – ऐसी मोक्षमार्ग की दशा को त्रिकाली ध्रुवद्रव्य नही करता। अहो ! किसी भाग्यशाली को रुचे – यह ऐसी बात है। (कहने का आशय यह है तू इस बात की रुचि कर)

शुद्ध-द्रव्यार्थिकनय से आत्मा ज्ञायकभावरूप शुद्ध पारिणामिक परम स्वभावभावरूप है। ऐसे परमस्वभावभाव की भावना से मोक्षमार्ग प्रगट होता है। यह भावनारूप मोक्षमार्ग पर्याय है। बन्ध-मोक्ष की पलटना तो पर्याय मे ही होती है द्रव्य मे नही। ध्रुव द्रव्य बन्ध-मोक्ष की पर्यायरूप नही होता। पर्याय

का कर्ता पर्याय धर्म है। पर्याय है अवश्य, पर वह त्रिकाली ध्रुव द्रव्यरूप नही है। द्रव्यदृष्टि का विषय भी वह नही है, अर्थात् द्रव्य को देखने वाली दृष्टि में पर्याय गौण है। इस प्रकार द्रव्यार्थिकनय से जीवद्रव्य बन्ध-मोक्ष के कारण और परिणाम से रहित है।

बन्ध और मोक्ष के कारण, ये दोनो पर्यायरूप हैं। जीव का अशुद्ध परिणाम बन्ध का कारण है और शुद्ध परिणाम मोक्ष का कारण है – ये दोनो प्रकार के परिणाम, पर्यायरूप है। वहाँ परद्रव्य तो बन्ध-मोक्ष का कारण नही, शुद्ध-द्रव्यरूप पारिणामिक परमभाव भी बन्ध-मोक्ष का कारण नही है, यदि शुद्ध द्रव्य बन्ध का कारण हो तो त्रिकाल बन्ध ही हुआ करे तथा यदि वह मोक्ष का कारण हो तो त्रिकाल मोक्ष हो अथवा पारिणामिकभाव स्वय सर्वथा पर्यायरूप हो जाए तो पर्याय के साथ उसका भी नाश हो जाए। इस प्रकार इस न्याय से सिद्ध हुआ कि बन्ध-मोक्ष के परिणाम और उसका कारण पर्याय मे है, पर त्रिकाली ध्रुवद्रव्य शुद्ध एक परमभावस्वरूप वस्तु इनसे शून्य है। त्रिकाली ध्रुव मे बन्ध-मोक्ष नही है। अहो ! यह तो चमत्कारी गाथा और चमत्कारी टीका है।

एक भाई कहते थे कि "तुम जो अरिहत का और सिद्ध का ध्यान करते हो, वह झूँठा है, क्योकि अरिहत और सिद्ध यहाँ हैं नही ?"

अरे भाई ! तू सुन तो सही जरा प्रभु ! जो अर्हन्तदशा और सिद्धदशा अन्दर मे शक्तिरूप से पडी है, उसका जो ध्यान करता है, वह अर्हन्त का और सिद्ध का ध्यान करता है। क्या कहा ? केवली को जो केवलज्ञान आदि अनन्त चतुष्टय प्रगट हुआ है, वह अन्दर मे शक्ति मे है, इसीलिए तो कहा कि – "सिद्ध समान सदा पद मेरो"। भगवान आत्मा वीतरागी दशा प्रगट

होने योग्य पूर्ण निर्मल वीतरागी अनन्त शक्तियो का पिण्ड है। भाई ! यह परम सत्य की प्रसिद्धि है। अहा ! त्रिकाली शुद्ध द्रव्यस्वभाव के आश्रय से निर्मल वीतरागी परिणति प्रगट होती है, इस अपेक्षा से (आश्रय अपेक्षा से) उसे मोक्ष और मोक्षमार्ग का कारण भले कहो, पर शुद्ध-द्रव्यार्थिकनय से उसमे बन्ध-मोक्ष नही है अर्थात् शुद्ध त्रिकाली द्रव्य बन्ध-मोक्ष का कर्त्ता नही है।

कुछ लोग कहते है कि – परिणाम अशुद्ध है इसलिए द्रव्य भी अशुद्ध हो गया।

अरे प्रभु ! यह तू क्या कहता है ? इस काल के साधारण बुद्धि वाले जीवो को कुछ खबर नही पडती इसलिए 'हाँ जी हाँ, कहते है। परन्तु बापू ! आत्मा की एक समय की पर्याय मे बन्ध का अशुद्ध भाव है, इसलिए द्रव्य अशुद्ध हो गया – ऐसा नही है।

पर्याय की अशुद्धता के काल मे भी अन्दर त्रिकाली द्रव्य तो ऐसा का ऐसा शुद्ध चैतन्य का दल है। उसमे अशुद्धता अर्थात् बन्ध की पर्याय का तो प्रवेश नही, पर उसमे शुद्धतारूप मोक्ष की पर्याय का भी प्रवेश नही है। अहाहा ! त्रिकाली शुद्ध चैतन्यद्रव्य तो बन्ध-मोक्ष के कारण और परिणाम से रहित है। किसी को यह बात एकान्त लगे, पर भाई ! यह सम्यक् एकान्त है। यह तो महामुनिवर दिगम्बर सन्त श्री जयसेनाचार्य देव का कथन है। अहाहा ! अन्तर मे जिन्हे रागरहित वीतराग दशा थी, और बाहर मे जिन्हे वस्त्ररहित नग्नदशा थी, जिन्हे अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर सवेदन था, वे मुनिराज कहते है कि हमारी यह जो मुनिपने की – मोक्ष मार्ग की दशा है, उसे ध्रुवद्रव्य नही करता है, वह दशा ध्रुव मे नही है।

अहा ! भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु पूर्ण एक शुद्ध ज्ञानस्वरूप है। वह अनन्त शक्तियों का पिण्ड है। उसकी एक-एक शक्ति पूर्ण शुद्ध है। जो शक्ति शुद्ध है, वह

अशुद्धता को कैसे करे ? न करे। अशुद्धता को तो न करे, शुद्धता के उत्पाद को भी वह नही करती – ऐसा कहते है, क्योकि द्रव्य उत्पादरूप पर्याय को स्पर्श भी नही करता।

देखो, समयसार की ४९वी गाथा की टीका मे अव्यक्त के छह बोल है,उसके पाँचवे बोल मे आता है कि – 'व्यक्तता तथा अव्यक्तता एकमेक मिश्रितरूप से प्रतिभासित होने पर भी वह केवल व्यक्तपने को ही स्पर्श नही करता, इसलिए अव्यक्त है।" व्यक्त पर्याय अव्यक्त द्रव्य को स्पर्शती नही और अव्यक्त द्रव्य व्यक्त पर्याय को स्पर्शता नही। व्यक्त अर्थात् प्रगट पर्याय और अव्यक्त अर्थात् ध्रुवद्रव्य - दोनो को एक साथ जानने पर भी वह व्यक्त को स्पर्श नही करता। द्रव्य ध्रुव है, वह मोक्ष-मार्ग की पर्याय को स्पर्श नही करता।

प्रवचनसार की १७२वी गाथा मे अलिङ्गग्रहण के बीस बोल है, उसमे अन्तिम बोल मे कहा है कि – "लिङ्ग अर्थात् प्रत्यभिज्ञान का कारण ऐसा जो ग्रहण अर्थात् अर्थावबोधसामान्य जिसके नही हैं, वह अलिङ्गग्रहण है, इस प्रकार आत्मा द्रव्य से नही आलिङ्गित ऐसी शुद्ध पर्याय है, ऐसे अर्थ की प्राप्ति होती है।" अहाहा! आत्मा शुद्ध पर्याय है, वह ध्रुव को स्पर्शती नही। पर्याय और द्रव्य दो चीज हैं, वे दोनो अस्तिरूप है। दो वाचक के वाच्य भी दो हैं। वे दो रूप ही रहना चाहिए, वहाँ वह (ध्रुव) इस (पर्याय) को कैसे करे ? दोनो अपने-अपने मे सत् हैं न प्रभु! भाई! यह समझकर अन्दर मे (शुद्ध अन्त तत्त्व मे) रुचि करना चाहिए। अन्दर की रुचि (सम्यग्दर्शन) बिना व्रत, तप आदि बाहर के आचरण करे, पर ये तो सब बिना एक की बिन्दी जैसे है। समझ मे आया ?

अहा! जो ध्रुव है, वह तो सदा एकरूप सदृश है और पर्याय (उत्पाद-व्यय) विसदृश है। क्या कहा ? ध्रुव एक

परमभाव – ज्ञायकभाव त्रिकाली एकरूप सदृश चीज है, उत्पाद-व्यय तो भाव-अभावरूप विसदृश है। अब जो सदृश है, वह विसदृश को कैसे करे ? विदृसश को स्पर्श नही करने वाला सदृश त्रिकाली ध्रुव,विसदृश पर्याय को किस प्रकार करे ? "परिणाम परिणाम में रह गया, मैं तो भिन्न वस्तु हूँ"– ऐसा सोगानीजी ने द्रव्यदृष्टि प्रकाश मे कहा है न ? यह वही बात है। तेरा मार्ग जुदा है प्रभु ! तुझे धर्म करना है न ? तो कहते है–धर्म की पर्याय को परद्रव्य तो नही करे, पर तेरा त्रिकाली ध्रुव द्रव्य भी नही करता। अहाहा ! राग तो धर्म पर्याय को न करे, शुभराग कर्त्ता और धर्म की पर्याय उसका कर्म, ऐसा तो नही है, पर ध्रुवद्रव्य कर्त्ता और पर्याय इसका कार्य – ऐसा भी नही है। अहो ! पर्याय-पर्याय स्वतन्त्र सत् है। इसमे तो गजब की बात है भाई !

ये सब पैसे वाले धूल मे (पैसे मे) फँस गए है, उन्हे अब ये सब बाते किस दिन सुनने को मिले ? बेचारो को फुरसत मिले तब न ? यहाँ कहते है – सुन तो प्रभु ! ये तेरा चैतन्यदल है, इसमे अनन्त शक्तियाँ है। ऐसी अनन्त शक्तियो का एकरूप पिण्ड वह द्रव्य है। उसे जानने वाला शुद्ध-द्रव्यार्थिकनय है। शुद्ध-द्रव्यार्थिकनय से ध्रुव द्रव्य मोक्ष-मार्ग और मोक्ष की पर्याय को नही करता। गजब की बात की है, सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार की समुदायपातनिका मे यह बात पहले कही गई है।

अब कहते है – "पहले चार गाथाओ द्वारा जीव के व्याख्यान की मुख्यता से सामान्य वर्णन किया गया। उसके बाद चार गाथाओ द्वारा "**शुद्ध को भी जो प्रकृति के साथ बन्ध होता है, वह अज्ञान का माहात्म्य है" इस प्रकार अज्ञान का सामर्थ्य कहनेरूप विशेष वर्णन किया गया है।**

भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु है, उसे राग का बन्ध होता है, यह अज्ञान का माहात्म्य है। क्या कहा ? अपने

स्वरूप का भान नही, ऐसा जो अज्ञान है, वह बन्ध का कारण है। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन प्रभु सदा अबन्ध-स्वरूप है, वह राग को नही स्पर्शता, तथापि प्रकृति के साथ उसका जो बन्ध होता है, वह अज्ञान का माहात्म्य है।

भाई! तेरी पर्याय मे तेरी भूल से तुझे बन्ध है। भूल क्या है? कि स्वय ने स्वय को नही जाना, अपने स्वरूप को नही जाना, यही भूल है और इसी से बन्धन है, इसीलिए तो उससे छूटनेरूप मोक्षमार्ग का उपदेश दिया जाता है। यदि बन्धन हो ही नही तो "मोक्ष के लिए शुद्धात्मा को ध्याओ" ऐसा उपदेश क्यो देते? पर्याय मे बन्धन है और उससे छूटने का उपाय भी है। पर उतना ही सम्पूर्ण आत्मा नही। उन पर्यायो के समय ही सम्पूर्ण परमभावस्वरूप परम पवित्रता का पिण्ड प्रभु आत्मा अनन्त शक्तियो से परिपूर्ण अन्दर विराज रहा है, जिसका लक्ष्य करने से बन्धन टलता है और मोक्ष प्रगट होता है। ऐसे पवित्रस्वरूप प्रभु आत्मा का ज्ञान नही – ऐसे अज्ञान की यह महिमा है कि इसे पर्याय मे बन्ध है।

अरे! लोग तो बाह्य क्रिया मे धर्म मानते है। दया पालना, सामायिक करना, उपवास करना, चौविहार करना, कन्दमूल न खाना इत्यादि मन्दराग की क्रिया मे धर्म मानते है, पर भाई! इसमें धूल बराबर भी धर्म नही है। क्रिया का राग तो क्लेश है, दु ख है और उसे धर्म मानना यह स्व-स्वरूप का अज्ञान है। अहा! शुद्ध द्रव्य को जडकर्म की प्रकृति के साथ जो बन्ध है, वह इस अज्ञान का माहात्म्य है। अहा! मारग तो एक वीतराग स्वरूप है और दुनिया कही और (रागमय) मान बैठी है – ये अज्ञान का माहात्म्य है। इस प्रकार (चार गाथाओं मे) अज्ञान का सामर्थ्य कहनेरूप से विशेष वर्णन किया है।

अब कहते है – **"उसके बाद चार गाथाओ द्वारा जीव के अभोक्तृत्व-गुण के व्याख्यान की मुख्यता से व्याख्यान किया है ."**

पहले अकर्तृत्वगुण कहा, फिर अभोक्तृत्व के व्याख्यान की मुख्यता से व्याख्यान किया है ।

उसके बाद दो गाथाएँ कही जिनके द्वारा, पूर्व मे बारह गाथाओ मे शुद्ध निश्चय से कर्तृत्व-भोक्तृत्व के अभावरूप तथा बन्ध-मोक्ष के कारण और परिणाम के अभावरूप जो व्याख्यान किया था, उसका ही उपसहार किया गया है ।

इसप्रकार समयसार की शुद्धात्मानुभूति लक्षण 'तात्पर्यवृत्ति' नाम की टीका मे मोक्षाधिकार सम्बन्धी चूलिका समाप्त हुई । अथवा दूसरी रीति से व्याख्यान करने पर यहाँ मोक्षाधिकार समाप्त हुआ ।

देखो, इस टीका का नाम शुद्धात्मानुभूति लक्षण 'तात्पर्यवृत्ति' है । श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव की टीका का नाम "आत्मख्याति" है । श्री जयसेनाचार्यदेव की अपेक्षा से मोक्षाधिकार सम्बन्धी चूलिका समाप्त हुई अथवा अन्य प्रकार व्याख्यान करने पर मोक्षाधिकार यहाँ समाप्त हुआ ।

अब विशेष कहा जाता है –

औपशमिकादि पाँच भावों में किस भाव से मोक्ष होता है – यह विचार किया जाता है ।

वहाँ औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक और औदयिक ये चार भाव पर्यायरूप हैं तथा शुद्ध पारिणामिक (भाव) द्रव्यरूप है । ये परस्पर सापेक्ष ऐसा द्रव्य-पर्यायद्वय (द्रव्य और पर्याय का जोड़ा) वह आत्मा-पदार्थ है ।

देखो, पाँच भावो में उपशमादि चार भाव पर्यायरूप है । उनमे प्रथम तीन भाव निर्मल पर्यायरूप है, औदयिकभाव

मलिन विकाररूप है और पारिणामिक भाव ध्रुव द्रव्यस्वरूप है। वह आत्मा का अहेतुक अकृत्रिम सहज स्वभाव है।

१ **औपशमिकभाव** – पाँच भावो मे एक औपशमिक-भाव है, वह निर्मल है। जैसे पानी मे मैल नीचे बैठ जाए और ऊपर पानी निर्मल हो जाए, वैसे कर्म का उदय रुके और अन्दर पर्याय मे निर्मलभाव प्रगट हो, उसे औपशमिकभाव कहते है। अनादिकाल का अज्ञानी जीव जब सर्वप्रथम अपने शुद्ध स्वभाव का भान करता है, तब चौथे गुणस्थान मे औपशमिक सम्यग्दर्शन होता है। इस औपशमिकभाव से धर्म की शुरूआत होती है, पश्चात् चारित्र मे उपशमभाव मुनि की श्रेणी के समय होता है। यह उपशमभाव निर्मलभाव है। उसमे मोह का वर्तमान उदय नही है, तथा उसका सर्वथा क्षय भी नही हुआ। जैसे नितरे हुए स्वच्छ पानी के नीचे मैल बैठ गया हो, वैसे जीव की स्वच्छ निर्मल पर्याय मे भी सत्ता मे मोहकर्म पडा है – इस अवस्था को औपशमिकभाव कहते है।

२. **क्षायोपशमिकभाव** – इस भाव मे कुछ विकास और कुछ आवरण है, ज्ञानादिका सामान्य क्षयोपशमभाव तो सभी छद्मस्थ जीवो को अनादि से होता है, पर यहाँ मोक्ष के कारण-रूप क्षयोपशमभाव बताना है – अर्थात् यहाँ सम्यग्दर्शन पूर्वक क्षयोपशमभाव की बात है।

कर्म के उदय का उदयाभावी क्षय और अनुदय उपशम-रूप से अन्दर सत्ता मे रहे, उसके निमित्त से जीव का जो भाव हो, उसे क्षयोपशमभाव कहते है।

३. **क्षायिकभाव** – आत्मा के गुण की सम्पूर्ण शुद्ध दशा प्रगटे और कर्मों का सर्वथा क्षय हो जाय – ऐसी दशा वह क्षायिकभाव है। दर्शनमोहनीय का क्षय हाने पर क्षायिक सम्यग्दर्शन, ज्ञानावरणी का क्षय होने पर क्षायिकज्ञान, दर्शना-

वरणी का क्षय होने पर क्षायिक दर्शन – ऐसे जो भाव प्रगट होते हैं, वे क्षायिक भाव कहलाते है ।

ये तीनो भाव निर्मल पर्यायरूप है, ये अनादि के नही होते, पर आत्मा के आश्रयपूर्वक नये प्रगट होते है, सादि हैं । ये भाव मोक्ष का कारण होते हैं – ऐसा आगे कहेगे ।

४. **औदयिकभाव** – जिसमें कर्म का उदय निमित्त होता हैं, जीव के ऐसे रागादि विकारी भाव औदयिक भाव हैं । दया, दान, व्रत, भक्ति आदि तथा हिंसा, झूँठ, चोरी, कुशील आदि रूप भाव औदयिकभाव है ।

एक अपेक्षा से इसे पारिणामिक भाव भी कहा है । जीव स्वयं भाव करता है, इस अपेक्षा से उसे पारिणामिकभाव कहा है । अब ऐसी बात ओघें-ओघें (विपरीत अभिप्राय से) जो सुने उसे क्या समझ मे आये ? भाई ! दया पालो, दान करो, व्रत पालो – ऐसी प्ररूपणा करे,पर बापू ! ये सब भाव औदयिक-भाव हैं, बन्ध के कारणरूप हैं, ये भाव मोक्ष के कारण नही होते ।

अनादि से सब संसारी जीवो को औदयिकभाव होता है और मोक्षदशा होने पर उसका सर्वथा अभाव होता है ।

५. **पारिणामिकभाव** – आत्मा का त्रिकाली सहज एकरूप शाश्वत् स्वभाव वह पारिणामिकभाव है, वह ध्रुव द्रव्य-रूप है । उसे "परमभाव" कहा है । अन्य चार भाव क्षणिक है, इसलिए उन्हे "परमभाव" नही कहा । पारिणामिकरूप परम-स्वभाव प्रत्येक जीव को सदा विद्यमान है ।

इन पाँच भावो मे सर्वविशुद्ध परम पारिणामिकभाव जो शाश्वत् ध्रुव – अचल है, वह द्रव्यरूप–वस्तुरूप है,और अन्य चार भाव प्रगट पर्यायरूप है । उनमें तीन भाव निर्मलरूप है और औदयिकभाव मलिनरूप है । परस्पर सापेक्ष ऐसा द्रव्य-

पर्यायद्वयरूप आत्मा है, अर्थात् द्रव्य-पर्याय दोनो एक होकर सम्पूर्ण आत्मा-पदार्थ है। द्रव्य वह निश्चय, पर्याय वह व्यवहार तथा दोनो मिलकर प्रमाणरूप सत् वस्तु है।

द्रव्य-पर्यायरूप सम्पूर्ण पदार्थ प्रमाण का विषय है। उसमे परम पारिणामिक-स्वभावरूप त्रिकाली ध्रुवद्रव्य निश्चयनय का विषय है, और वर्तमान वर्तती पर्याय व्यवहारनय का विषय है। निश्चयनय त्रिकाली द्रव्य को स्वीकार करता है और व्यवहारनय वर्तमान वर्तती पर्याय को स्वीकार करता है। निश्चय का जो ज्ञान किया, उसके साथ पर्याय का ज्ञान मिलावे तो वह प्रमाणज्ञान है, पर निश्चय को उडाकर व्यवहार को मिलाये तो प्रमाणज्ञान नही रहता।

भाई! तेरी वस्तु को (आत्मा को) देखने के तीन प्रकार है –

१. त्रिकाली ध्रुव द्रव्यरूप परमभाव को देखने वाली दृष्टि वह द्रव्यार्थिकनय है।
२ वस्तु को पर्यायरूप मे देखने वाली दृष्टि वह पर्यार्थिक-नय है।
३ द्रव्य-पर्यायरूप वस्तु को समग्रपने देखने वाली दृष्टि वह प्रमाणज्ञान है।

अध्यात्मदृष्टि मे शुद्ध द्रव्य, वह निश्चय है और उसको शुद्ध पर्याय द्वारा मोक्षमार्ग को साधना, वह व्यवहार है। रागादिक तो परमार्थ से अनात्मा है,क्योकि वे शुद्ध आत्मा नही, अशुद्धभाव है, इसलिए शुद्ध दृष्टि मे वे अनात्मा है। अभेद आत्मा की अनुभूति मे उनका अभाव है अर्थात् शुद्धात्मानुभूति से वे (रागादि) बाह्य है।

देखो, शुद्ध जीव अन्त तत्त्व है और रागादि बाह्यतत्त्व है। अभेद तत्त्व की अनुभूति मे निर्मलपर्याय का भेद भी नही,

इस अपेक्षा से उसे भी बाह्यतत्त्व कहा है। नियमसार गाथा ३८ मे एक शुद्ध आत्मा को ही अन्तःतत्त्व कहा है और जीवादि तत्त्वों को वाह्यतत्त्व कहा है। इसका मतलब यह कि जीवादि तत्त्वो सम्बन्धी भेदविकल्प के द्वारा शुद्ध आत्मा अनुभव मे नही आता, इसलिए वह वाह्यतत्त्व हैं, हेय हैं। भाई ! पर्याय के भेद आदरणीय नही हैं, आश्रय करने योग्य नही हैं। एकमात्र शुद्ध त्रिकाली एक ज्ञायकतत्त्व मे अभेद होकर अनुभव करना योग्य है। तथा जो अनुभव है, वह स्वय पर्याय है,पर वह द्रव्यस्वभाव के सन्मुख होकर उसका आश्रय करती है। इस प्रकार शाश्वत शुद्ध ज्ञायक वस्तु और उसकी वर्तमान अवस्था, दोनों परस्पर सापेक्षपने सम्पूर्ण आत्मा है।

भाई ! तुझे दु ख मिटाकर सुखी होना है न ? तो दु ख किस भाव से है और सुख किस भाव से होता है – उसे तू जान। सुख-दु ख तेरे स्वयं के भाव से ही है, अन्य के कारण नही। वापू ! वस्तु के स्वरूप को जाने विना अनन्त काल से तू चौरासी लाख योनियो मे जन्म ले-लेकर भटक रहा है। वहाँ तू अकेला तेरे भाव से दु खी है, कोई अन्य से नही। पाप के उदय मे एकेन्द्रियादि मे जाता है; वहाँ अकेला दुःखी है, और पुण्योदय से स्वर्गादि मे जाता है तो वहाँ तू अकेला कल्पना से (वास्तविक नही) सुखी है, इसमे किसी को सहायता – अपेक्षा नही है। तथा शुद्ध अन्त.तत्त्व के आश्रय से ज्ञान-दर्शन-चारित्र-रूप परिणत होने पर मोक्षमार्ग मे भी तू अकेला ही सुखी है या होगा, उसमे भी किसी पर द्रव्य का साथ या अपेक्षा नही है।

पर्यायरूप चार भावों में औपशमिकादि तीन भाव निर्मल है, मोक्ष के कारण है और औदयिकभाव मलिन है, बन्ध का कारण है। तथा जिसके आश्रय से निर्मलभाव प्रगट

होता है वह शुद्ध पारिणामिकभाव त्रिकाल द्रव्यरूप है। ऐसा परस्पर सापेक्ष द्रव्य-पर्याय के एकत्व रूप वह सम्पूर्ण आत्मा-पदार्थ है। अहो ! यहाँ तो अमृत परोसा है। कहा भी है "अमृत वरस्या रे प्रभु ! पचम काल मे।"

"वहाँ, प्रथम तो जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व ऐसे तीन प्रकार के पारिणामिक भावो में, शुद्ध जीवत्व ऐसा जो शक्ति लक्षण पारिणामिकपना वह शुद्ध-द्रव्यार्थिक नयाश्रित होने से निरावरण और 'शुद्ध पारिणामिकभाव' संज्ञावाला जानना। वह तो बन्ध-मोक्ष पर्याय रहित है।'

देखो, यहाँ जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व – ऐसा तीन प्रकार का पारिणामिकभाव कहा, वहाँ "शुद्ध" शब्द का प्रयोग नही किया, अर्थात् ये तीन भेद करना अशुद्ध पारिणामिक है और वह व्यवहारनय का विषय है; परन्तु वहाँ इन तीन प्रकार के भावों मे शुद्ध जीवत्व ऐसा जो शक्ति लक्षण पारिणामिकपना है, वह ध्रुव त्रिकाली है और शुद्ध-द्रव्यार्थिकनयाश्रित होने से निरावरण और शुद्ध-पारिणामिकभाव सज्ञावाला जानना। अहाहा ! कितना स्पष्ट किया है ?

सम्यग्दर्शन का विषयभूत त्रिकाली ध्रुवद्रव्य, चार भावो से रहित तथा शक्ति लक्षण शुद्ध-पारिणामिकभाव है। वह शुद्ध द्रव्यार्थिकनय का विषय है और वह निरावरण है। अहाहा ! भव्य हो या अभव्य, उसमे शक्तिरूप त्रिकाल शुद्ध जीवत्व शुद्ध पारिणामिकभाव है और वह शुद्ध-द्रव्यार्थिकनय का विषय होने से निरावरण है। अहा ! जिसमे चार पर्याये नहीं उसमे आवरण कैसे ? (आवरण तो पर्याय मे होता है) ऐसा जो शुद्ध चैतन्य के प्रवाहरूप चैतन्य-चैतन्य-चैतन्य, शुद्ध चैतन्य के ध्रुव प्रवाहरूप शुद्ध जीवत्व है, वह निरावरण शुद्ध पारिणामिकभाव है और

वह बन्ध-मोक्ष के परिणाम से रहित है, अर्थात् वह बन्ध-मोक्ष के परिणाम का कारण नही है।

कुछ लोग कहते है कि पर्याय मे अशुद्धता हो ता द्रव्य अशुद्ध हो जाता है। उनकी इस मान्यता का इसमे निषेध हो गया। भाई! द्रव्य तो त्रिकाल शुद्ध निरावरण ही है। आवरण है तो पर्याय मे है। पहले ऐसी बात चलती नही थी और बाहर आई तो कितनो मे खलबलाहट हो गई कि अरे! हमारा यह सब क्रियाकाण्ड उड जाएगा। पर बापू! ये तेरे हित की बात है। भाई! चौरासी के अवतार का अन्त करके जन्म-मरण रहित होने की यह बात है।

शुद्ध जीवत्वरूप त्रिकाली शक्ति लक्षण पारिणामिकभाव की दृष्टि करने से सम्यदर्शन प्रगट होता है, यह बाद मे कहेगे। यहाँ कहते है – वस्तु का स्वरूप जो त्रिकाली शक्तिरूप सत् है, सत् का जो सत्व है – वह त्रिकाल निरावरण है। त्रिकाली ध्रुव शुद्ध द्रव्य मे जैसे उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक, ये पर्यायिरूप भाव नही हैं, वैसे ही उसमे आवरण भी नही है। एकबार सुन तो सही नाथ! अन्दर मे भगवान आत्मा 'आनन्द-ब्रह्मणोरूप' अर्थात् ज्ञानानन्द स्वरूप की लक्ष्मी से महा प्रतापवत त्रिकाल विराज रहा है। उसकी दृष्टि करना सम्यदर्शन है, जो धर्म की पहली सीढी है।

अज्ञानी मानता है कि कषाय की मन्दता, व्रत, नियम आदि क्रियारूप साधन से साध्य सिद्ध होगा, परन्तु ऐसा नही है। कषाय तीव्र हो या मन्द, वह औदयिकभाव है और वह मलिन–विकारी परिणाम ससार का–बन्ध का कारण है, मोक्ष का नही। मोक्ष का कारणरूप तो औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक – ऐसे निर्मल पर्यायरूप तीन भाव है, और जो चारो ही भावो से रहित त्रिकाल शुद्ध पारिणामिक भाव है, वह

अक्रिय है। उसमे क्रिया नही है, उत्पाद-व्यय नही है। इसमे कुछ करना नही और छोडना नही है। मोक्ष करना इसमे नही है, राग करना इसमे नही, तथा राग छोडना भी इसमे नही है। अहा! ऐसा शुद्ध पारिणामिकभाव निरावरण है। उसका आश्रय लेने पर सम्यग्दर्शन आदि धर्म प्रगट होता है।

अरेरे! ऐसी बात जिसके कान मे भी न पड़े वह बेचारा क्या करे? मैं कौन हूँ? मेरा क्या स्वरूप है? यह पाँच भाव किस प्रकार है? किस भाव से बन्धन है और किस भाव से मोक्ष का उपाय तथा मोक्ष होता है? कौन भाव शुद्ध है और कौन भाव अशुद्ध है? कौन-सा भाव आश्रय करने योग्य उपादेय है और कौन हेय है? इन्हे समझने की फुरसत न मिले वह बेचारा क्या करे? अरेरे! वह चौरासी के अवतार मे कही डूब मरेगा। क्या करे? भाई! तुझे यह समझने का अवसर है। इसमे तू खाने-कमाने के पीछे, कुटुम्ब-परिवार को प्रसन्न रखने के पीछे और इन्द्रियो के विषय-भोगो के पीछे ही रुक जायेगा तो अवसर हाथ से चला जायेगा और तू ससार मे ही परिभ्रमण करेगा।

देखो, शुद्ध पारिणामिकभाव जो त्रिकाल है, उसे भी भाव कहते है। पर्याय को भी भाव कहते है। राग भी भाव कहलाता है और द्रव्य (वस्तु) को भी भाव कहते है। यहाँ द्रव्य को शुद्ध पारिणामिकभाव सज्ञा दी है। उसे बन्ध-मोक्ष परिणति से रहित कहा है।

अहाहा! भगवान आत्मा त्रिकाल ध्रुव अस्तिरूप है। है, है और है। आत्मा ध्रुव ध्रुव ध्रुव ऐसा अनादि अनन्त शुद्ध चैतन्य के प्रवाहरूप है। वह बन्ध-मोक्ष की परिणति से रहित है, रागादि भाव से रहित और मोक्षमार्ग तथा मोक्ष की पर्याय से भी रहित है। अहाहा! त्रिकाल स्वभाव मे पर वस्तु नही,

राग नही, मलिन पर्याय नही, और अपूर्ण या पूर्ण निर्मल पर्याय भी नही। ऐसी अपनी चीज का जिसे अन्दर दृष्टि मे स्वीकार हुआ है, उसे ही शुद्ध आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है। बाकी तो सब थोथा (व्यर्थ) है।

भाई! जन्म-मरण के अन्त का उपाय यह एक ही है। दुनिया माने या न माने, दुनिया को जो रुचे वह कहे, पर सत्य तो यही है। आत्मा शुद्ध चैतन्य-महाप्रभु बन्ध-मोक्ष की पर्याय से रहित वस्तु है। उस एक के आश्रय से धर्मरूप निर्मल परिणति प्रगट होती है।

अब विशेष कहते हैं – **"परन्तु जो दशप्राणरूप जीवत्व और भव्यत्व-अभव्यत्वद्वय वह पर्यायार्थिकनयाश्रित होने से "अशुद्ध पारिणामिकभाव" संज्ञावाला है।"**

लोगो को यह समझना कठिन पडता है। अभी तो मैं शरीर से रहित हूँ – यह स्वीकार करना कठिन पडता है। पर भाई! ये शरीर आदि की क्रिया तो इसके काल मे जो होना हो वह होती है, उसमे तुम्हारा अधिकार ही नही है। मैं ध्यान रखूँ तो शरीर व्यवस्थित रहे, नही तो विगड जाए – ऐसा तू मानता है, पर ऐसा कोई अधिकार तेरा शरीर पर नही है, क्योंकि शरीर पर वस्तु है। अहाहा! शरीर से जुदा, राग से जुदा और एकसमय की पर्याय से भी जुदा, अन्दर में ऐसा जो त्रिकाली ध्रुवद्रव्य है, इसे ध्येय बनाना है – ऐसा यह मार्ग है। भाई! यह अपूर्व बात है। अनन्तकाल मे इसने अन्तर्दृष्टि – द्रव्यदृष्टि की ही नही, पर इसके बिना मात्र बाहर की क्रिया से धर्म नही होता।

अरे भाई! तुझे तेरे कायमी – त्रिकाल जीवन की खबर नही है तो तू सच्चा जीवन किस प्रकार जियेगा? आहार-पानी या शरीरादि जड पदार्थों से तू जीवन माने, पर ये कुछ सच्चा

जीवन नही है। अहा ! शरीर स्वय ही जड मृतक-कलेवर है तो उसके द्वारा तू कैसे जियेगा ? भाई ! अपने शुद्ध चैतन्यप्राण से त्रिकाल जिये, और शुद्ध चैतन्यस्वभाव के आश्रय से मोक्ष – स्वरूप सिद्धपद को साधकर सादि अनन्त पूर्ण आनन्दमय जीवन जिये वही जीव का सच्चा जीवन है। स्तुति मे आता है कि–

तारूं जीवन खरूं जीवन, जीवी जाण्युं नेमनाथे जीवन

अहाहा ! भगवान केवली, जैसा पूर्ण वीतराग-विज्ञानमय जीवन जीते है, वह यथार्थ जीवन है – सच्चा जीवन है। बाकी अज्ञानपूर्वक रागादिमय जीवन जिये, उसे जीव का जीवन कौन कहे ? ये तो भयङ्कर भावमरण है। आता है न कि –

"तू क्यों भयंकर भावमरण प्रवाह मे चकचूर है"

बापू ! राग से धर्म माने अर्थात् राग को जीवन माने उसे तो सच्चा जीवन जीना भी नही आता, उसे तो निरन्तर भावमरण ही होता रहता है। समझ मे आया ?

दशप्राणरूप जीवत्व और भव्य-अभव्यत्वद्वय पर्यायार्थिकनय के आश्रित हैं और इसलिए "अशुद्ध पारिणामिकभाव" सज्ञावाले है। अहो ! यह तो अकेला मक्खन[1] दिया है। दशप्राणरूप जीवत्व और भव्यत्व-अभव्यत्वद्वय – ये तीनो अवस्थादृष्टि से – पर्यायदृष्टि से – व्यवहार से कहे जाते है।

दशप्राणरूप जीवत्व अशुद्धप्राण है। जीव जडप्राणो से जीता है – यह बात तो नही, परन्तु पाँच इन्द्रियाँ (भावेन्द्रियाँ) मन, वचन, काय, आयु और श्वास (अन्दर जीव की योग्यतारूप) – ऐसे दशप्राणरूप अशुद्ध जीवत्व से जीव जीता है – यह भी व्यवहार से कहा है और वह "अशुद्ध पारिणामिकभाव" है। तथा भव्यत्व और अभव्यत्व भी पर्यायार्थिकनयाश्रित होने

---

१ सारभूत तत्व

से "अशुद्ध-पारिणामिकभाव" है। त्रिकाली ध्रुव एक चैतन्य-स्वभाव से भरी हुई, शुद्ध-परमपारिणामिकभाव स्वरूप वस्तु मे यह "अशुद्ध-पारिणामिकभाव" नही है – ऐसा मानने मे एकान्त व्यवहार के पक्षवालो को बाधा होती है। परन्तु वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है, उसमे कोई क्या कर सकता है ? यहाँ तो स्पष्ट लिखा है कि दशप्राणरूप जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व, ये तीनो पर्यायार्थिकनयाश्रित होने से अशुद्ध पारिणामिकभाव सज्ञावाले है।

प्रश्न – ये भाव 'अशुद्ध' कैसे है ?

उत्तर – संसारियों को शुद्धनय से और सिद्धों को तो सर्वथा ही दशप्राणरूप जीवत्व तथा भव्यत्वं-अभव्यत्वद्वय का अभाव होने से ये अशुद्ध है।

यद्यपि पर्यायार्थिकनय से अशुद्धरूप दश भावप्राण, भव्यत्व-अभव्यत्वद्वय – ये तीनो जीव के कहे जाते है तथापि "सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया" – इस वचन से शुद्धनय से ससारी-जोव को ये तीनो भाव नही है। अहाहा वस्तु जो त्रिकाल शुद्ध एकरूप है, उस वस्तु मे इनका अभाव है, और सिद्धो को दश-अशुद्ध भावप्राण सर्वथा नही है, अर्थात् पर्याय मे भी नही है। ससारी को ये तीनो पर्याये है, परन्तु वस्तु मे नही, जबकि सिद्धो मे इन तीनो का सर्वथा अभाव है। अहाहा ! सिद्ध भगवान भव्य भी नही है, और अभव्य भी नही है, यह पर्याय की बात है। भव्यत्व अर्थात् मोक्ष होने लायक, मोक्ष तो हो गया इसलिए भव्यत्व का सिद्धों मे अभाव है, और अभव्यो को तो मोक्ष है ही नहीं।

ससारी प्राणी को शुद्धनय से देखे तो उसमे दशभाव-प्राण नही है। पाँच भावेन्द्रियाँ, मन, वचन, कायके निमित्त से

कम्पनदशा, शरीर मे रहने की योग्यतारूप आयु और श्वासोच्छ्वास होने की पर्याय की योग्यता – ये दश-अशुद्ध भावप्राण शुद्धनय से सभी ससारी जीवो के नही है। और सिद्धो को तो दशप्राणरूप जीवत्व सर्वथा नही है। उसी प्रकार भव्यत्व-अभव्यत्व का भी सिद्ध भगवान के अभाव है, क्योकि उन्हे साक्षात् मोक्षदशा है, अत वहाँ मोक्ष होने की योग्यतारूप भव्यत्व कहाँ रहा ? और अभव्य को तो मोक्ष है ही कहाँ ? इसप्रकार भव्यत्व-अभव्यत्व को भी भेदरूप व्यवहार जानकर अशुद्ध-पारिणामिकभाव कहा है।

आत्मा का सच्चा प्राण और उसका सच्चा जीवन तो शुद्ध-चेतना है, इसके दशप्राण कहना तो व्यवहार से है। इनसे कुछ आत्मा का परमार्थ जीवन नही है। इनके बिना भी आत्मा जी सकता है। देखो, सिद्धो को पहले (ससारदशा मे) दशप्राण थे, पर अभी तो वह सर्वथा ही नही है, द्रव्य गुण मे तो पहले से ही नही थे, अब पर्याय मे भी उनका अभाव हो गया है। अहो! भगवान सर्वज्ञदेव का कहा हुआ तत्व परम अलौकिक है। भाई! द्रव्य-पर्याय का तथा पाँच भावो का स्वरूप समझाकर आचार्यदेव ने मोक्ष का उपाय बताया है। वीतरागी सन्तो ने महान्-महान् उपकार किया है।

अब कहते है – '**उन तीनों में, भव्यत्वलक्षण पारिणामिक को तो यथासम्भव सम्यक्त्वादि जीव गुणो का घातक "देशघाती और सर्वघाती" नामवाला मोहादि कर्मसामान्य पर्यायार्थिकनय से ढाकता है – ऐसा जानना।**'

देखो, दशभावप्राणरूप अशुद्ध जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व, इन तीन मे, मोक्ष होने की योग्यतारूप भव्यत्वलक्षण पारिणामिकभावहै। उसे सम्यक्त्वादि गुणो का घातक 'देशघाती' और 'सर्वघाती' नामवाला मोहादिकर्मसामान्य पर्यायार्थिकनय

से ढांकता है। यहाँ द्रव्यघातीकर्म न लेकर भावघातीकर्म ढाकता है, ऐसा समझना। द्रव्यघाती कर्म जड़ है, वाह्य निमित्त है। सम्यक्त्वादि जीवगुणो का घातक तो अन्दर में मोहादि भाव-घातीकर्म है और वह भव्यत्वलक्षण पारिणामिक भाव को ढांकता है – ऐसा पर्यायार्थिकनय से जानना।

अहा ! यह तो सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर की वाणी मे से सार-सार मक्खन निकालकर आचार्यदेव ने जगत को जैन-दर्शन का रहस्य दिया है। भव्यत्वलक्षण पारिणामिकभाव को पर्यायार्थिकनय से सम्यक्त्वादि गुणों का घातक 'देशघाती-सर्व-घाती' नामवाला मोहादिकर्मसामान्य पर्यायार्थिनय से ढांकता है। अर्थात् आच्छादन पर्याय मे है, शुद्ध वस्तु मे नही। वस्तु शुद्ध पारिणामिकभावरूप सदा निरावरण एकरूप है। शुद्ध-द्रव्यार्थिकनय से इसमे ढांकना या उघाड़ना ऐसा कुछ है ही नही। अहाहा ! आत्मा आनन्दकन्द प्रभु त्रिकाल निरावरण है। उसमें ढांकना या उघड़ना कहाँ है ? है ही नही।

परमात्मप्रकाश में कहा है कि –

आनन्दं ब्रह्मणो रूपं निजदेहे व्यवस्थितम्।
ध्यान हीना न पश्यन्ति जात्यन्धा इव भास्करम्॥

अहाहा ! निज देह मे भगवान सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा (भिन्न) विराजता है। उसे ध्यान रहित पुरुष नही देख सकता। जैसे सूर्य सदा विद्यमान है, उसे जात्यन्ध पुरुष (जन्म से अन्धा) नही देख सकता, वैसे जिसको आत्मा का लक्ष्य नही है, वह आत्मा को नही देख सकता।

अन्धे से किसी ने पूँछा – "भैया ! सूर्य है कि नही ?" तब वह बोला – "जिसे कभी नजर से देखा नही, वह है – ऐसा कैसे कहूँ ?" महा प्रतापवन्त उज्ज्वल प्रकाश का गोला सूर्य अन्धे को नही दिखता। जात्यन्ध है न ! वैसे आत्मा चैतन्यसूर्य

प्रभु सदा अन्दर विराजता है, परन्तु इसकी दृष्टि (सम्यग्दर्शन) बिना, इसके ध्यान बिना वह नही दिखता। जैसे जात्यन्ध को सूर्य नही दिखता, वैसे राग और पर्याय की रुचिवाले जन्मान्ध को चैतन्यचमत्कार प्रभु आत्मा नही दिखता अर्थात् उसका आत्मा पर्यायार्थिकनय से भावघाती आवरण द्वारा ढक गया है।

"वहाँ, जब कालादिलब्धि के वश भव्यत्वशक्ति की व्यक्ति होती है, तब यह जीव सहज शुद्ध पारिणामिकभाव लक्षण परमात्मद्रव्य के सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप पर्यायों में परिणमित होता है। वह परिणमन आगम भाषा से "औपशमिक", "क्षायोपशमिक" तथा "क्षायिक" ऐसा भावत्रय कहलाता है, और अध्यात्मभाषा से "शुद्धात्माभिमुख परिणाम", "शुद्धोपयोग" इत्यादि पर्यायसंज्ञा पाता है।

देखो, यहाँ कालादि पाँच लब्धियो की बात की है, अकेली काल की बात नही की, काललब्धि, पुरुषार्थ, स्वभाव भवितव्यता और उसी समय निमित्त (कर्म के उपशमादि) इस-प्रकार पाँचो समवाय एक साथ ही होते है।

प्रश्न – कलश टीका मे (कलश चार मे) कहा है कि सम्यक्त्व वस्तु यत्नसाध्य नही, सहजसाध्य है। इसका क्या आशय है ?

समाधान – वहाँ काललब्धि की मुख्यता से बात की है। सम्यग्दर्शन-पर्याय भी स्वय सहज ही है – ऐसा वहाँ कहना है, परन्तु पाँचों समवाय वहाँ उसी काल मे एक साथ ही होते है। अनेक स्थान पर पुरुषार्थ की मुख्यता से बात करते हैं। वहाँ सम्यक्त्व प्रयत्न से (पुरुषार्थ से) सिद्ध होता है – ऐसा कहना है। यह तो विवक्षाभेद है, परन्तु कार्यकाल मे पाँचो समवाय एक साथ होते है।

चैतन्यमूर्ति प्रभु आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द का रसकन्द है। अहाहा ! आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का दरिया है। इसके सिवा तीनकाल-तीनलोक में आनन्दरूप वस्तु अन्य कोई नही है। पर अज्ञानी जीव अपने आनन्द स्वभाव को भूलकर बाहर मे अन्यत्र आनन्द मानता है। कोई मेरा बखान करे तो अच्छा लगे, मुझे कोई बडा कहे तो अच्छा लगे, कोई मुझे ज्ञानी-पण्डित कहे तो अच्छा लगे – इसप्रकार वह अनेक तरह की मिथ्या कल्पना करता है। परन्तु भाई ! तेरा आनन्द बाहर मे कही नही है, तू स्वय ही तेरे आनन्द की ध्रुव खान है। अहा ! अपनी ऐसी चीज को पाने के लिए जब यह जीव काललब्धि के वश (काललब्धि आने पर) स्वभाव की रुचि करता है तब अन्त पुरुषार्थ जगता है, काललब्धि पकती है, भवितव्य – जो प्रगट होने योग्य है (सम्यक्त्व) वह होता है, और तब कर्म के उपशमादि भी होते हैं। इसप्रकार पाँचों समवाय एक ही साथ होते है।

पहले अनादि से मोहकर्म के वश होकर परिणमित होने वाले जीव के अपने सम्यक्त्वादि गुणो का घात होता था अर्थात् मोक्ष के कारणरूप तीन भाव उसे नही थे। अज्ञानदशा मे मिथ्यात्वादि सर्वघाती और देशघाती-कर्म उसके सम्यक्त्वादि गुणो के घातने में – ढाँकने मे निमित्त होते थे। पर अब सद्-गुरु के उपदेश का निमित्त पाकर जब शुद्ध पारिणामिक परम स्वभावभाव के सन्मुख होकर उसकी भावना रूप परिणमित हुआ, तब मोक्ष के कारणरूप औपशमिकादि भाव प्रगट होते है, उसे पुरुषार्थ, स्वकाल, कर्म के उपशम आदि पाँचो लब्धियाँ प्रगट हो जाती है और यही भव्यत्वशक्ति की व्यक्ति है। भव्यत्व उस जीव में पहले से ही था, पर जब निजस्वभाव का भान हुआ, तब वह पाक रूप होकर परिणमा, मोक्ष की जो

योग्यता थी, वह तब कार्य मे व्यक्त हुई, और अब अल्पकाल मे मोक्षदशा प्रगट हो जाएगी।

अहो ! ये तो कोई अद्भुत अलौकिक बाते हैं। आचार्यदेव कहते है – जब कालादि लब्धियो के वश से भव्यत्व शक्ति की व्यक्ति होती है, तब जीव सहज-शुद्ध पारिणामिक लक्षण निज परमात्मद्रव्य के सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-अनुचरणरूप पर्याय मे परिणमित होता है।

नियमसार मे (गाथा १५७ मे) आता है कि –

निधि पा मनुज तत्फल वतन मे गुप्त रह ज्यो भोगता।
त्यो छोड परजन-संग ज्ञानी, ज्ञान निधि को भोगता ॥

जैसे कोई दरिद्र मनुष्य निधि को पाकर अपने वतन मे गुप्तरूप से रहकर उसका फल भोगता है, वैसे ज्ञानी पर-जनो के सग को छोडकर स्वरूप मे गुप्त रहकर ज्ञान-निधि को भोगता है। इसकी टीका मे कहा है –

"सहज परम तत्वज्ञानी जीव क्वचित् आसन्नभव्य के (आसन्नभव्यतारूप) गुणो का उदय होने से सहज वैराग्य सम्पत्ति होने पर, परमगुरु के चरणकमलयुगल की निरतिशय (उत्तम) भक्ति द्वारा मुक्ति सुन्दरी के मुख के मकरन्द समान सहज ज्ञान-निधि को पाकर स्वरूपविकल[1] ऐसे पर-जनो के समूह को ध्यान मे विघ्न का कारण समझकर छोडता है।"

जैसे किसी दरिद्री को भाग्यवश करोडो की निधि मिल जाय तो वह अपने वतन मे जाकर उसे गुप्त रूप से अकेला भोगता है। हे भाई ! तुझे जो परम अद्भुत ज्ञान-निधि प्राप्त हुई है, तो उसे अकेले (स्वरूपगुप्त) रहकर भोगना। अर्थात्

---

१ स्वरूपविकल्प=स्वरूप प्राप्ति रहित, अज्ञानी।

किसी के साथ वाद-विवाद न करना। जगत मे स्वसमय और परसमय ऐसे अनेक प्रकार के जीव हैं। उनके साथ वाद-विवाद मे नही पड़ना, क्योकि वाद-विवाद से स्वरूप की ऐसी बात समझ मे नही आती। नियमसार गाथा १५६ मे यही कहा है कि –

णाणा जीवा णाणा कम्मं णाणाविहं हवे लद्धी।
तम्हा वयणविवादं सगपरसमएहिं वज्जिज्जो॥

नानाप्रकार के जीव है, नानाप्रकार के कर्म है, नाना-प्रकार की लब्धियाँ है, इसलिए स्वसमय और परसमय के साथ (स्वधर्मियो और परधर्मियों के साथ) वचन-विवाद छोड़ने योग्य है।

लोग कहते है कि समाज मे विघटन हो गया है, हम उसका संगठन करना चाहते हैं। परन्तु भाई! भगवान जिनेश्वर का यह मार्ग ऐसे (वाद-विवाद करने से) समझ मे नही आता। वाद-विवाद मे तुझे एक को सच्चा और एक को झूँठा करना है, परन्तु वहाँ तू एकबात करने जाएगा, तो वह दूसरी बात करेगा कि "व्यवहार को शास्त्र मे साधन कहा है, तो तुम क्यो नही कहते हो? तुम एकान्त हठ करते हो।" बापू! ऐसे इस बात का अन्त नही आएगा। वीतरागभाव से धैर्य से स्वय समझना चाहे, तो पार पावे, परन्तु तुम खोटे और हम सच्चे है – ऐसा सिद्ध करने के लिए बातचीत करने से विवाद होता है, और विवाद से पार पड़े (समझ मे आवे) ऐसी यह चीज नही है। अरे! अन्दर तेरा सत् ऐसा है कि इसका काल पका हो और पुरुषार्थ करके तू स्वभाव का भान करे तो सहज ही यह समझ मे आए – ऐसी चीज है। वाद-विवाद से कोई समझ सके – ऐसी यह बात नही है।

समाधिशतक मे आता है – अरे ! मै किसे समझाऊँ ? मै जिसे समझाना चाहता हूँ, वह समझने वाला आत्मा, तो आँख से मुझे दिखता नही, और यह जो दिखता है, वह तो जड (शरीर) है, उसे मै क्या समझाऊँ ? इसलिए मेरा समझाने का विकल्प तो पागलपन है, चारित्रदोष है। अहाहा ! बापू ! यह तो दिगम्बर सन्तो की वाणी है। उसमे कहते है कि वाणी से तुझे ज्ञान हो – ऐसा तू नही है। अहो ! सन्तो की यह अलौकिक चमत्कारिक बात है।

यहाँ कहते है – जब कालादिलब्धि के वश से भव्यत्व शक्ति की व्यक्ति होती है, तब यह जीव सहज शुद्ध पारिणामिक भाव लक्षण निज परमात्मद्रव्य के सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-अनुचरण पर्यायरूप परिणमित होता है। यहाँ 'कालादिलब्धि के वश से' कहा है, परन्तु स्वभाव के वश से, पुरुषार्थ के वश से –ऐसे सभी समवाय साथ मे लेना। अकेले काल की यह बात नही है, पर इसमे पाँचो समवाय की बात है। अहा ! जब मोक्षमार्ग की प्राप्ति का काल आता है, तब इसकी दृष्टि सहज शुद्ध ज्ञानानन्दस्वभाव पर जाती है और तभी उसे अन्दर मे सम्यग्दर्शन प्रगट होता है।

अहाहा ! आत्मद्रव्य एक सहज शुद्ध परम पारिणामिकभाव लक्षण सदा परमात्मस्वरूप चिन्मात्र वस्तु है। ऐसे निज परमात्मद्रव्य के सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-अनुचरणरूप पर्याय मे जीव परिणमे, इसका नाम धर्म है और इसी का नाम मोक्ष का मार्ग है। देखो ! देव-शास्त्र-गुरु का भेदरूप श्रद्धान, ये कुछ वास्तविक श्रद्धान नही है, और शास्त्र का ज्ञान वह कोई वास्तविक सम्यग्ज्ञान नही है, पर अपने अन्दर शुद्ध चैतन्यमूर्ति प्रभु कारण परमात्मा सदा विराज रहा है, उसके सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-अनु-

चरण पर्यायरूप परिणमना, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है और वही सत्यार्थ मोक्षमार्ग है ।

प्रश्न – आप कारणपरमात्मा-कारणपरमात्मा कहते हैं, यदि कारण हो तो कार्य होना चाहिए न ?

उत्तर – भाई ! कारणपरमात्मा तो अन्दर त्रिकाल एक ज्ञायकस्वभावपने विराज रहा है, पर इसे अन्तरमुखपने प्रतीति मे आवे, तब 'मै कारणपरमात्मा हूँ' – ऐसा भान हो । प्रतीति में आए बिना इसे कारणपरमात्मा कहाँ है ? जिसे भगवान पूर्णानन्दस्वरूप निज परमात्मद्रव्य का सम्यक्श्रद्धान हो उसे "मै कारणपरमात्मा हूँ" – ऐसा भासित होता है और उसे कार्य (कार्यपरमात्मा) प्रगट होता है । जो एक समय की पर्याय और राग की श्रद्धा मे अटका है, उसे कारणपरमात्मा कैसे भासे ? उसे कार्य कहाँ से प्रगट हो ?

समयसार की १७-१८ गाथा की टीका मे आया है कि आबालगोपाल सब आत्माओ को वतमान ज्ञानपर्याय मे निज परमात्मद्रव्य ही भासता है, पर अज्ञानियो की दृष्टि वहाँ नही है । अहा ! सम्पूर्णद्रव्य अपने ज्ञान मे जानने मे आए, ऐसी अपनी चीज है, क्योंकि ज्ञान की पर्याय का स्व-पर प्रकाशक स्वभाव है । परन्तु इसकी (अज्ञानी जीव की) दृष्टि स्व के ऊपर नही, पर के ऊपर है, पर्याय और राग पर है । इसलिए जो निज परमात्मद्रव्य जानने में आता है, उसका वह अनादर करता है और राग तथा अशमात्र में हूँ – ऐसा मानता है, अतः उसे कार्य कैसे प्रगटे ?

समयसार कलश टीका मे आता है – जैसे ढकी हुई निधि प्रगट की जाती हैं, वैसे कर्म संयोग से ढका हुआ और भावमरण को प्राप्त जीवद्रव्य, परमगुरु तीर्थङ्कर परमात्मा के उपदेश द्वारा भ्रान्ति मिटने से प्रगट किया जाता है । स्वभाव से तो जीव-

द्रव्य प्रगट ही है। कर्मसयोग से भिन्न शुद्ध जीवस्वरूप का अनुभव करना सम्यक्त्व है। जो आत्मा को एक समय की पर्याय और राग जितना मानता है, उसका आत्मा मरण को (भावमरण को) प्राप्त हो रहा है, क्योकि उसने जीवन्त ज्योति निज परमात्मद्रव्य के सम्मुख होकर उसका स्वीकार नही किया। मात्र राग और वर्तमान पर्याय को स्वीकार करने वाला जीव मरण को प्राप्त हो रहा है। ग्यारह अग और नवपूर्व का उघाड (क्षयोपशम) भले हो, परन्तु जो उस विकास मे सन्तुष्ट होकर रुक गया है, वह जीव स्वभाव को भूलकर मरण को प्राप्त हो रहा है। अरे ! अनन्तकाल मे इस जीव ने स्वभाव की दृष्टि की ही नही।

त्रिकाल आनन्दस्वरूप परमात्माद्रव्य के श्रद्धान-ज्ञान-अनुचरणरूप पर्याय मे परिणमन भव्यत्व शक्ति की अर्थात् मोक्ष-मार्ग की योग्यतारूप शक्ति की व्यक्ति है, और वह धर्म है। अरे ! अन्दर मे यह स्वय भगवान स्वरूप है, परन्तु इसने इसके गीत भी कभी सुने नही। पर भाई ! यदि अन्दर शक्ति से भगवानस्वरूप न हो तो पर्याय मे आएगा कहाँ से ? बाहर में तो कुछ है नही ? बाहर मे तो तू भगवान की भक्ति करे, पूजा करे या सम्मेद शिखर की यात्रा करे, पर इससे धर्म हो – ऐसा धर्म का स्वरूप नही, क्योकि ये तो मात्र शुभराग है। यहाँ शुभ छोडकर अशुभ करना – यह बात नही है। धर्मी को विशेष शुभभाव आता है, वह धर्म या धर्म का कारण नही है। धर्म का कारण तो स्वद्रव्य के आश्रय से परिणमना है। अरे भाई ! तू एकबार उसे देखने की भावना तो कर।

देखो ! जैसे राजा की रानी परदे मे ढकी रहती है और लोग उसे देखने के लिए उत्सुकता से उमड पडते है, वैसे भगवान

आत्मा अनादिकाल से पर्यायबुद्धि और राग के परदे मे ढका है। उसे देखने की उत्सुकता से अन्तरमुख होकर प्रयत्न तो कर। भाई ! तेरे दु ख का नाश करने का एकमात्र यही उपाय है।

ओहो ! आत्मा पूर्णानन्द का नाथ प्रभु सदा परमात्मस्वरूप मे अन्दर प्रगट मौजूद है। अरे ! तू उसे भूलकर बाहर से सुख प्राप्त करने के लिए झपट्टे मारता है। यहाँ से सुख लूँ, कि वहाँ से सुख लूँ, राजपद मे से सुख लूँ कि देवपद में से सुख लूँ – ऐसे तू झपट्टे मारता है। पर सुख निधान तो तू स्वय ही है न प्रभु। इसलिए ऐसा भिखारीपना – रकपना छोड दे, और अन्दर मे अपने परमात्मद्रव्य को देख, जिससे सहज शुद्ध चिदानन्दमय परमात्मद्रव्य की प्रतीति होकर निराकुल सुख की प्राप्ति होगी।

यहाँ, कालादि लब्धि के वश से भव्यत्वशक्ति की व्यक्ति होती है – ऐसा कहा है, इसमे अकेला काल वा अन्यरूप काल न लेना, पर पाँचो समवाय एकसाथ ही है – ऐसा यथार्थ समझना। मोक्षमार्ग की प्राप्ति का काल हो, तब –

१ चिदानन्दघनस्वभाव ऊपर दृष्टि जाती है – यह स्वभाव समवाय हुआ।

२. चिदानन्दघनस्वभाव की दृष्टि स्वभावसन्मुखता का पुरुषार्थ है। इसमे पुरुषार्थ नाम का समवाय आया।

३. उसी समय निर्मल पर्याय होने का ज्ञान हुआ – यह काललब्धि नाम का समवाय हुआ।

४. उस काल मे जो निर्मल पर्याय होने वाली थी, वही हुई – इसमे भवितव्य नाम का समवाय हुआ।

५. तब प्रतिकूल निमित्त का अभाव हुआ – इसमे निमित्त नाम का समवाय आया।

इसप्रकार पाँचों समवाय एक साथ ही होते हैं – ऐसा जानना।

वस्तुत जिसे जिस काल मे जो पर्याय होना हो, उसे उस काल मे वही पर्याय होती है। सम्यग्दर्शन पर्याय भी अपने जन्मक्षण मे उत्पन्न होती है। उस पर्याय-की उत्पत्ति का वह नियत काल है। प्रवचनसार गाथा १०२ मे पर्याय के उत्पन्न होने के जन्मक्षण की बात आती है। यह बहुत सूक्ष्म बात है भाई! यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर के घर की बात है बापू! अरे! लोगो को यह बात सुनने को भी नही मिलती और ऐसे ही नपुन्सक की तरह जिन्दगी चली जाती है, क्या करे?

ये करोडपति और अरवपति सब बड़े नपुन्सक है। क्या कहा? हम यह करते है, हम वह करते हैं – इसप्रकार राग और पुण्य-पाप के विकार को रचने मे जिसने वीर्य को रोका है, परमात्मा उन्हे महा नपुन्सक कहते है। देखो, परपदार्थ की रचना तो कोई कर नही सकता, क्योकि जगत के पदार्थ सब स्वतन्त्र हैं, परन्तु जो वीर्य पुण्य-पाप को रचे, शुभाशुभ राग को रचे वह नपुन्सक वीर्य है। क्यो?, क्योकि उससे धर्म की प्रजा उत्पन्न नही होती। जैसे नपुन्सक के सन्तान नही होती, वैसे जो वीर्य शुभाशुभभाव की रचना की रुचि मे पड़ा है, उससे धर्म की सन्तान उत्पन्न नही होती। अभी तक ऐसी बात दुनिया को सुनने नही मिली। भाई! यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर की कही हुई परम सत्य बात है।

विभाव में से रुकने वाला वीर्य जब स्वभावसन्मुख हुआ, तब उसमें भव्यत्व शक्ति की व्यक्ति होती है। जैसे – लेण्डी-पीपल रङ्ग मे काली और कद मे छोटी होती है, पर उसमें चौसठ पुटी अर्थात् पूर्ण सोलह आने तीखास अन्दर मे शक्तिरूप से भरी है। उसे घोटने से उसमे से चोसठ पुटी तीखास वाहर

प्रगट होती है। भाई ! जो शक्ति है, वह प्रगट होती है, प्राप्त की प्राप्ति है। लकडी या कोयला घोंटने से तीखास प्रगट नही होती, उसमे तीखास है ही नही तो प्रगट कहाँ से होगी ? वैसे ही भगवान आत्मा अन्दर मे चौसठ पुटी अर्थात् सोलह आने पूर्ण ज्ञान और आनन्द के स्वभाव से भरा हुआ सत्व है। उस स्वभाव के सन्मुख होकर परिणमन करने से शक्ति की निर्मल व्यक्ति होती है। अन्दर शक्ति तो विद्यमान है ही, उस शक्ति के सन्मुख होकर, जब उसका स्वीकार, सत्कार और आदर किया तब वह तत्काल पर्याय में व्यक्तरूप से प्रगट होती है। इसका नाम धर्म और मोक्षमार्ग है।

अहाहा ! जब कालादिलब्धि के वश से भव्यत्वशक्ति की व्यक्ति होती है, तब यह जीव शुद्ध पारिणामिकभाव लक्षण निज परमात्मद्रव्य के सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-अनुचरणरूप पर्याय से परिणमित होता है,वह परिणमन आगम भाषा से 'औपशमिक', 'क्षायोपशमिक' तथा 'क्षायिक ऐसा भावत्रय कहलाता है, और अध्यात्म भाषा से 'शुद्धात्माभिमुख परिणाम', 'शुद्धोपयोग' इत्यादि पर्याय सज्ञा पाता है।

देखो, स्वभाववान वस्तु लक्ष्य है और शुद्ध स्वभावभाव लक्षण है। आत्मा एक ज्ञायकभावमात्र वस्तु सहज शुद्ध पारिणामिक भाव लक्षण परमात्मद्रव्य है। वस्तु वहुत सूक्ष्म है, प्रभु ! इसे जाने विना तू अवतार (जन्म-मरण) कर करके अनन्त काल से भटक रहा है। अरे ! अनन्तवार जैन साधुपना धारण किया, महाव्रत पाले, दया पाली, स्त्री-पुत्र, दुकान-धन्धा छोड़ा, पर भ्रांति न छोडी, आत्मज्ञान न किया। मै राग और अल्पज्ञदशा रूप नही हूँ, मै तो पूर्ण वीतराग-सर्वज्ञस्वभावी सहज शुद्ध पारिणामिकभाव लक्षण परमात्मद्रव्य हूँ – ऐसी अन्तरमुख दृष्टि नही की।

अहाहा ! आत्मा सहज शुद्ध पारिणामिकभाव लक्षण परमात्मद्रव्य है। बापू ! यह तो जहर उतारने के मन्त्र है। जैसे सर्प काटे और जहर चढे, तो वह मन्त्र द्वारा उतर जाता है, वैसे यह अनादि से चढे हुए राग मे एकत्वबुद्धि का जहर उतारने का मन्त्र है। यह पुण्यभाव और पुण्य फल मे जो धूल (पैसा आदि) मिलती है, वह मेरी है – ऐसी मान्यता भ्रान्ति है, मिथ्यात्व के जहर ने इसके सहज शुद्ध स्वभाव का घात किया है।

प्रश्न – तो क्या कर्मो ने घात किया है – ऐसा नही है ?

उत्तर – नही, कर्मो ने घात किया ही नही। पूजन मे आता है कि –

कर्म बिचारे कौन, भूल मेरी अधिकाई।
अग्नि सहे घनघात, लौहकी संगति पाई ॥

भाई ! कर्म के रजकण तो जड है, अन्य चीज हैं, वे तो आत्मा को छूते ही नही, फिर उसका घात कैसे कर सकते है ? अपने स्वभाव की विपरीत मान्यता, स्वभाव का घात करने वाली चीज है और उसे मिथ्यात्व कहते है। अब यह जीव ऐसी बात समझने मे तो रुकता नही और कमाने-धमाने मे समय गवा देता है। पर इसमे क्या है ? पुण्योदय हो तो करोडो रुपये कमाये, पर ये तो धूल की (पुण्य की) धूल है। समझ मे आया ?

भाई ! यहाँ तो आचार्यदेव तेरा सत्यार्थ स्वरूप बताते है। जैसे सकरकन्द के ऊपर जो पतली लाल छाल है, उसे नजर मे न लो तो अन्दर अकेली सकर की मिठास का पिण्ड है। सकर की मिठास का पिण्ड है इसलिए तो इसे सकरकन्द कहा जाता है। वैसे भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु के ऊपर, पर्याय मे शुभाशुभभाव रूप लाल छाल को लक्ष्य मे न लो तो आत्मा अकेला ज्ञानानन्दरूप अमृतरस का पिण्ड है। अहाहा ! शुभा-

शुभभाव रूप लाल छाल के पीछे अन्दर अकेला ज्ञानानन्दरस का दरिया भरा है। ऐसा पूर्ण परमात्मस्वरूप इसे कैसे बैठे ? भाई ! जो पर्याय मे परमात्मा हो गये उनकी यह बात नही है, यह तो अन्दर स्वभावरूप निज परमात्मद्रव्य की बात है। तीर्थङ्करादि पर परमात्मा का लक्ष्य करेगा तो तुझे राग ही होगा। 'परदव्वाओ दुग्गइ' – ऐसा शास्त्रवचन है। परद्रव्य के प्रति लक्ष्य जाना दुर्गति है भाई !

कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि, व्यवहार से निश्चय होता है ? परन्तु उनकी मान्यता यथार्थ नही है। दया, दान, व्रत, भक्ति इत्यादि के परिणाम द्वारा पुण्यबन्ध होता है, धर्म नही। शुभराग – मन्दराग का परिणाम धर्म का कारण नहीं है। शुभराग धर्म नही है और धर्म का कारण भी नही है।

प्रश्न – शास्त्र में शुभ राग को मोक्ष का परम्परा कारण कहा है ?

उत्तर – हाँ, कहा है, पर इसका अर्थ क्या है ? जिसे अन्तर मे चिदानन्दघन सहज शुद्ध पारिणामिकभाव लक्षण निज परमात्माद्रव्य का भान वर्त रहा है, ऐसे धर्मी जीव को शुभ के काल मे अशुभ (मिथ्यात्वादि) टल गया है, और क्रम से बढ़ते हुए अन्त.पुरुषार्थ और वीतराग-भाव के कारण वह शुभ को भी टाल देता है, इस अपेक्षा से इसके शुभ राग को मोक्ष का परम्परा कारण कहा है। यहाँ वास्तव में तो क्रम से वढती हुई वीतरागता ही मोक्ष का परम्परा कारण पर उस-उस काल मे अभावरूप होता हुआ शुभराग ऐसा होता है, उसका ज्ञान कराने के लिए उपचार से उसे मोक्ष का परम्परा कारण कहा गया है। वास्तव मे तो वह मोक्ष का कारण या परम्परा कारण नही है, यथार्थ मे तो राग अनर्थ का ही कारण है, वह अर्थ का (हित का) कारण कैसे हो सकता है ?

कभी नही हो सकता। ऐसी बात है भाई ! जगत माने या न माने, सत्य तो यही है।

अरे ! यह जीव अनादि काल से भटक रहा है। अपना सत् कितना महान् और कितनी सामर्थ्य वाला है, इसकी इसे खबर नही। यहाँ कहते है – भगवान ! तुम स्वय सहज शुद्ध पारिणामिकभावलक्षण परमात्मद्रव्य हो। बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा – ये तो पर्याय की बात है, यह बात यहाँ नही हैं। यहाँ तो स्वय शुद्ध-बुद्ध-चैतन्यघन त्रिकाली ध्रुव परमात्म-द्रव्य की बात हैं। अरे ! अनन्तकाल मे इसे आत्मा का प्रमाण अर्थात् माप करना भी नही आया, इसका मापदण्ड ही खोटा है।

एक बार एक छोटे से बालक का पिता ५० हाथ का कपडे का थान घर लाया। बालक को लगा कि मै इसे मापूँ, उसने अपने हाथ से कपडा मापा और पिता से कहा – "बापूजी, यह कपडे का थान तो १०० हाथ का है।" तब उसके पिता ने समझाया कि – बेटा ! यह तेरे छोटे से हाथ का माप हमारे व्यापार के काम में जरा भी नही चलेगा। इसी-प्रकार परम पिता सर्वज्ञ परमेश्वर कहते है – भाई तू अपनी कल्पना से चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा का माप करता है, परन्तु मोक्ष के मार्ग मे तेरा यह माप नही चलेगा। तेरे कुतर्क से भगवान चैतन्यमूर्तिस्वरूप आत्मा का माप नही निकलेगा। अरे ! धर्म के बहाने व्रत, भक्ति, पूजा, दया, दान आदि शुभराग मे रुककर लोग उल्टे रास्ते चले गए है। अशुभभाव से बचने के शुभभाव होता जरूर है, पर वह भाव धर्म या धर्म का कारण नही है।

सहज शुद्ध निजपरमात्मद्रव्य का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। क्या कहा ? देव-शास्त्र-गुरु की भेदरूप श्रद्धा करना सम्यग्दर्शन नही है, क्योकि वह तो राग है। "अप्पा सो

परमप्पा" अर्थात् भगवान आत्मा अन्दर सदा परमात्मस्वरूप मे विराजता है, उसके सन्मुख होकर जैसी और जितनी चीज है, वैसी और उतनी इसकी प्रतीति करना सम्यग्दर्शन है। वर्तमान ज्ञान की पर्याय मे त्रिकाली द्रव्य को ज्ञेय बनाकर मै यह (शुद्ध-बुद्ध-चैतन्यघन परमज्योति सुखधाम) हूँ – ऐसी प्रतीति करना, इसका नाम अन्त श्रद्धान है। इसी को आत्मा का अन्त श्रद्धान कहो, रुचि कहो कि सम्यग्दर्शन कहो – एक ही बात है। समझ में आया ... ?

वर्तमान ज्ञान की पर्याय मे त्रिकाली द्रव्य को ज्ञेय बनाने पर निज परमात्मद्रव्य का जो परिज्ञान हुआ, उसका नाम सम्यग्ज्ञान है। अनेक शास्त्रो का ज्ञान (पढाई) वह सम्यग्ज्ञान नही, क्योकि ये तो परलक्षी ज्ञान है। स्वयं अन्तर मे भगवान आत्मा पूर्ण एक ज्ञानस्वभावी परमात्मद्रव्य है। उसके सन्मुख होने पर "मै यह हूँ" – ऐसा ज्ञान होना सम्यग्ज्ञान है। दशा मे भले राग हो, अल्पज्ञता हो, परन्तु वस्तु स्वय अन्दर पूर्ण परमात्मस्वरूप है। ऐसा अपना परमात्मस्वरूप का ज्ञान होना उसे सम्यग्ज्ञान कहते है। वीतराग का मार्ग लौकिक मार्ग से कही मेल न खाए – ऐसा है।

ओहो ! 'निज परमात्मद्रव्य का सम्यक्श्रद्धान' – ऐसा कहकर एक समय की पर्याय, राग या देव-शास्त्र-गुरु कोई इसके श्रद्धान का विषय ही नही – ऐसा सिद्ध किया है। गजब बात है। भाई ! जैसा अपना त्रिकाली सत् है, वैसा उसका श्रद्धान-ज्ञान होना, उसे यहाँ सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान कहा है।

निजपरमात्मद्रव्य का अनुचरण चारित्र है। महाव्रतादि पालना चारित्र नही, क्योकि यह तो राग है। चिदानन्दघन स्वरूप मे चरना - रमना इसका नाम सम्यक् चारित्र है। ओहो ! अन्दर पूर्ण ज्ञानानन्दस्वरूप आनन्द का नाथ विराजता है, उसे

अनुसरण कर के उसमे चरना, उसमे रमना और उसमे ही ठहरना इसे आत्मचरण अर्थात् सम्यक्चारित्र कहते है।

पहले अनन्तकाल मे कभी जानी नही – ऐसी यह अपूर्व बात है। भाई ! तू एक बार रुचि से सुन। जिसने अन्तर मे आत्मा देखा है, 'मै यह हूँ' – ऐसे प्रतीति मे लिया है, ऐसा समकिती धर्मी पुरुष इसे ही (आत्मद्रव्य को ही) अनुसरण करके इसमे रमे, इसका नाम सम्यक्चारित्र है। जिसने अपने अन्त तत्त्व को जाना नही, श्रद्धा नही की, वह रमे तो रमे किस मे ? वह राग मे और वर्तमान पर्याय मे रमेगा, और यह तो मिथ्यात्वभाव है। कोई महाव्रत का भाव पालकर इसे धर्म माने, पर बापू ! इसमे धर्म मानना मिथ्यात्वभाव है। बहुत कठिन बात है, पर क्या करे ? वस्तुस्वरूप ही ऐसा है।

जैसे, सोना एक वस्तु है, पीलापन, चिकनापन, वजन आदि उसकी शक्तियाँ है, उसमे कुण्डल, कडा, अगूठी वगैरह अवस्था हो, वह पर्याय कहलाती है। वैसे, यह भगवान आत्मा सोने के समान त्रिकाली ध्रुव वस्तु है, परमपारिणामिकभाव शुद्ध ज्ञानानन्दस्वभाव उसका भाव है, उसकी ज्ञान, दर्शन आदि निर्मलदशा प्रगट हो, वह पर्याय है। वस्तु और वस्तु का स्वभाव त्रिकाल ध्रुव है, पर्याय परिणमनशील है।

प्रवचनसार मे (गाथा १६०) आता है कि – बालक, युवान और वृद्ध – ये तो शरीर की अवस्थाये है, उसका मै कर्त्ता नही। इस शरीर की युवान अवस्था हो या वृद्ध, सरोग हो कि निरोग – ऐसी कोई भी अवस्था हो, उसको मैने किया नही, कराया नही, मै उसका अनुमोदक नही, वैसे ही उन-उन अवस्थाओ का मै कारण भी नही। अहा ! मै ऐसा शुद्ध चैतन्य-घन प्रभु परमात्मद्रव्य हूँ। उसका सम्यक्श्रद्धान, सम्यग्ज्ञान और अनुचरण हो, वह पर्याय है। आगम भाषा से कथन करे

तो उसे उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक ऐसे भावत्रयरूप से कहा जाता है ।

जैसे, पानी मे मैल नीचे बैठ जाए अर्थात् पानी नितर कर निर्मल हो गया हो, वैसे जिसमे कषाय दब गई हो (अर्थात् उसका उदय मे अभाव हो) ऐसी निर्मल पर्याय को उपशमभाव कहते हैं । कुछ निर्मलता और कुछ मलिनता का अश अभी विद्यमान है, ऐसी दशा को क्षायिकभाव कहते है तथा राग का जिसमे सर्वथा क्षय हो जाए, उस पर्याय को क्षायिकभाव कहते हैं । इन तीनों को भावत्रय कहा जाता है । ये तीनों भाव मोक्षमार्गरूप हैं, उसमे (मोक्षमार्ग मे) उदयभाव नही समाता। व्यवहार-रत्नत्रय का परिणाम उदयभाव है, वह मोक्षमार्ग मे नही समाता । फिर इससे (व्यवहार से) निश्चय हो, ये बात कहाँ रही ? वास्तव मे निश्च-रत्नत्रय परम निरपेक्ष है, उसमें व्यवहार-रत्नत्रय की कोई अपेक्षा नही । नियमसार की दूसरी गाथा मे यह बात आई है ।

भाई ! यह बात अभी अन्यत्र कही नही चलती इसलिए तुझे कठिन लगती है, पर यह परम सत्य है । दो सौ वर्ष पहले पण्डित दीपचन्दजी अध्यात्म पंचसंग्रह मे लिख गए है कि – बाहर देखता हूँ, तो वीतराग के आगमानुसार किसी की श्रद्धा नही दिखती, वैसे ही आगम के सिद्धान्त के रहस्य को कहने वाला कोई वक्ता भी देखने मे नहीं आता, तथा किसी से मुख से यह बात कहे तो वह मानता नही । इसलिए मैं यह तत्त्व की बात लिख जाता हूँ । आजकल तो इस बात की हाँ पाड़ने वाले रुचि वाले जीव पके हैं, दिगम्बरो मे से तथा श्वेताम्बरों मे से भी हजारों लोग यह बात समझने वाले हुए हैं । मानो इस बात की जागृति का यह काल है ।

भगवान आत्मा त्रिकाली परमस्वभावभावरूप परम-पारिणामिकभाव लक्षण निज परमात्मद्रव्य है, उसके श्रद्धान, ज्ञान और चारित्र की जो निर्मलदशा प्रगट हो, उसे उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक – ऐसे भावत्रय कहते है ।

यह तो पहले कहा जा चुका है कि औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक और औदयिक ये चार भाव पर्यायरूप है, और शुद्ध पारिणामिक भाव द्रव्यरूप है । इन चार पर्यायरूप भावो से मुक्ति होती है अर्थात् तीन भाव मोक्षमार्गरूप है, जब कि चौथा औदयिकभाव मोक्षमार्ग से बाहर है अर्थात् औदयिक-भाव से मुक्ति नही होती । व्यवहार करते-करते मोक्ष हो जाएगा – ऐसा मानने वाले केवल व्यवहार की रुचि वालो को ऐसी बात नही रुचती है । क्या करे ? व्यवहार का जो राग है, वह औदयिकभाव है और औदयिकभाव मुक्ति का – मोक्ष का कारण नही है ।

एक करोडपति मुमुक्षुभाई एक बार ऐसा बोला – "महाराज ! आपकी बात मुझे ऐसे तो ठीक लगती है, पर मुझे यह अनेक भव पीछे समझ मे आएगी ।" अरे भाई ! जिसे यह बात ठीक लगती है, उसके अनेक भव कैसे होगे ? इसलिए तू ऐसा कह कि मुझे यह ठीक नही लगती । बहाने क्यो बनाता है ? क्या करे ? लोगो को ऐसा परम तत्त्व समझना कठिन पडता है, पर बापू ! यह तो देवाधिदेव सर्वज्ञ परमात्मा से आई हुई परम सत्य बात है ।

अहा ! चौरासी के अवतार मे कही एकेन्द्रियादि मे रखडते-रखडते मुश्किल से यह मनुष्यभव मिला है । इसे तू बाहर की मस्ती करने मे, कमाने-वमाने मे बिता दे तो जिन्दगी व्यर्थ चली जाएगी । पुण्योदय हो तो पैसे का ढेर हो जाए, पर इसमे क्या है ? ये तो धूल है बापू ! जिससे जन्म-मरण का

फेरा न मिटें ये चीज क्या काम की ? अहो ! सर्वज्ञ परमेश्वर की ऐसो वाणी भाग्य हो तो सुनने को मिले ।

महाविदेह क्षेत्र मे अभी साक्षात् सर्वज्ञ परमात्मा सीमन्धर विराजते है, पाँच सौ धनुष की देह है, करोड पूर्व की आयु है, त्रिकालज्ञानी है और स्वय तीर्थङ्कर पद मे विराजते हैं। अन्य लाखो केवली भगवान भी वहाँ विराजते है। वहाँ से आई हुई यह वाणी है। उसमे कहते है कि आगमभाषा से जो उपशमादि भावत्रय कहलाते है, वे मोक्ष के कारण है, और उदयभाव मोक्ष का कारण नही है। क्या कहा ? यह दया, व्रत, तप, पूजा, भक्ति इत्यादि जो शुभवृत्ति उठती है, वह राग है, विकार है, और वह मोक्ष का कारण नही है। भावपाहुड की गाथा तेरासी मे कहा है कि व्रत, पूजा, भक्ति आदि का राग वीतरागतामय धर्म नही, ये तो सब राग की क्रियाये है, इनसे पुण्यबन्ध होता है, धर्म नही होता।

वास्तव मे शुद्ध पारिणामिकभाव विषयक जो भावनारूप औपशमिकादिक तीन भाव है, वे रागादि से रहित होने से शुद्ध उपादान कारणभूत होने से मोक्ष के कारण है, चाहे उपशमभाव हो, क्षयोपशमभाव हो, कि क्षायिकभाव हो – ये तीनो भाव रागरूप विकल्प से रहित शुद्ध है और इसीलिए उन्हे मोक्षमार्गरूप भावत्रय कहा जाता है।

इस जीव को अपनी चीज की तो खबर ही नही और उल्टा-उल्टा मानता है कि भगवान की भक्ति करो तो भगवान मोक्ष दे देगे। पर भाई ! जरा विचार तो कर, भगवान तुझे क्या देगे ? तेरी चीज तो तेरे पास पडी है, भगवान तुझे कहाँ से देगे ? तथा भगवान तो पूर्ण वीतरागी है, निजानन्दरस मे लीन होकर परिणमित हो रहे हैं। उनको कुछ देना-लेना तो है नही, तो फिर वे तुझे मोक्ष क्या देगे ?

प्रश्न – भगवान को मोक्षदातार कहा जाता है न ?

उत्तर – हॉ, ऐसा कहने मे आता है। भगवान ने स्वय अपने मे अपने से निजानन्दरस में लीन होकर मोक्षदशा प्रगट की और अपने को ही वह दशा दी इसलिए उनको मोक्षदातार कहते हैं। तथा कोई जीव उन्हे देखकर, उनका उपदेश पाकर स्वय अन्तर्लीन होकर ज्ञान-दर्शन प्रगट करे तो उसमे भगवान निमित्त है। अत निमित्त की मुख्यता से भगवान को मात्र उपचार से मोक्षदातार कहा जाता है।

देखो, जो एक समय मे तीनकाल-तीनलोक को प्रत्यक्ष जानते है, वे सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर है, उनके शरीर की दशा नग्न होती है। उनको 'अरिहत' भगवान कहते हैं। 'अरिहत' अर्थात् क्या ? 'अरि' अर्थात् पुण्य और पाप के विकारी, भाव और उन्हे जिसने हना है वे अरिहत है। जहाँ पुण्य-पाप भाव को भी अरि अर्थात् बैरी कहा है, वहाँ वे भाव धर्म प्रगट होने मे मदद करे, यह कैसे हो सकता है ? भाई हर प्रकार से यह स्पष्ट है कि ये पुण्यभाव औदयिकरूप है और मोक्ष का कारण नही है, मोक्ष के कारणरूप तो उपशमादिभाव कहे जाते है।

यहाँ कहते है – निजपरमात्मद्रव्य के सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप परिणाम, अध्यात्मभाषा से "शुद्धात्माभिमुख-परिणाम", "शुद्धोपयोग" इत्यादि नाम से कहे जाते है। देखो, क्या कहते है ? कि आत्मा का दर्शन, आत्मा का ज्ञान और आत्मा का अनुचरण ये तीनो भाव शुद्धात्मा के सन्मुख परिणाम है। लोगो की बातो मे और यह वीतराग के तत्त्व की बातो मे इतना बडा फेर है। आता है न कि–

आनन्दा कहे परमानन्दा,माणसे माणसे फेर।
एक लाखे तो ना मले, एक तांबियाना तेर॥

अज्ञानी की मानी हुई श्रद्धा मे और भगवान वीतराग द्वारा कहे गये तत्त्व की श्रद्धा मे प्रत्येक बात मे अन्तर है।

सर्वज्ञदेव त्रिलोकीनाथ अरिहंत परमात्मा ऐसा फरमाते है कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम, शुद्धात्माभिमुख, परिणाम है, अर्थात् वे राग से और पर से विमुख तथा स्वभाव की सन्मुखतारूप परिणाम है। अहाहा ! जिसे आगमभाषा से उपशम, क्षयोपशम और क्षायिकभाव कहते हैं, वह शुद्धात्माभिमुख अर्थात् स्वभावसन्मुखतारूप परिणाम है और उसी को मोक्षमार्ग कहा जाता है।

प्रभु तू अनन्तकाल से दु खी होने के रास्ते पर चढ गया है। यहाँ तुझे सुखी होने का पन्थ बताते है। क्या कहते है ? कि पर से विमुख और स्व से सन्मुख ऐसे निज परिणाम का नाम मोक्ष का मार्ग है। साक्षात् सर्वज्ञ परमेश्वर हो तो भी वे तेरे लिए परद्रव्य है। भाई ! उनके प्रति तुझे जो भक्ति होती है, उससे विमुख और इस राग को जानने वाली एक समय की पर्याय से भी विमुख शुद्ध-आत्मद्रव्य की सन्मुखतारूप परिणाम को भगवान मोक्ष का मार्ग कहते हैं। अजानकार लोगों को तो ये बाते पागलो की बाते जैसी लगे, पर क्या करे नाथ ! तुझे तेरी खबर नही है।

शुद्ध-आत्मवस्तु सहजशुद्धपारिणामिकभाव लक्षण निज-परमात्मद्रव्य है। उसकी सन्मुखता के परिणाम को आगम भाषा से उपशमादि भावत्रय कहते है, अध्यात्मभाषा से उसे शुद्धात्माभिमुख कहते है और उसे ही मोक्ष का मार्ग कहते है। भाई ! दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का परिणाम तो औदयिक-भाव है और वह परसन्मुखतारूप भाव है। इसलिए वह धर्म नही, तथा धर्म का कारण नही। स्वाभिमुख स्वदशा ही एक मोक्ष का कारण है। ऐसा सूक्ष्म मार्ग है भाई !

एक पण्डितजी कहते थे कि पर्याय में अशुद्धभाव हो तो सम्पूर्ण द्रव्य अशुद्ध हो जाता है। अरे भाई ! तू यह क्या

कहता है ? शुद्ध-आत्मद्रव्य तो त्रिकाल शुद्ध है। त्रिकाली द्रव्य कभी भी अशुद्ध नही होता। पर्याय मे अशुद्धता होती है। शुभाशुभ के समय द्रव्य की पर्याय उसमे तन्मय है, पर इससे कही त्रिकाली द्रव्य अशुद्ध नही हो जाता। परिणाम भले शुभ हो या अशुभ हो, उस काल मे त्रिकाली ध्रुवद्रव्य तो शुद्ध ही है। अनादि-अनन्त वस्तुतत्त्व तो शुद्ध ही है, और जहाँ जीव शुभाशुभ भाव से हटकर त्रिकाली शुद्ध द्रव्य की दृष्टि करता है, वहाँ तत्काल ही पर्याय भी शुद्ध हो जाती है। समझ मे आया ? "पर से खस, स्व मे बस, टूका ने टच, इतना करो बस", बस इतनी बात है।

इन्दौर के सेठ सर हुकमचन्द यहाँ आये थे, ८३ वर्ष की उम्र मे उनका देह छूट गया था। वे ऐसा कहते थे—"जैसा आप कहते हो वैसा मार्ग तो अन्यत्र कही सुनने को नही मिलता" लोगो को यह बात कठिन मालुम पडती है। कितनो को तो इसमे अपना अपमान जैसा लगता है, पर बापू ! यह तो वास्तविकता है। तेरी अवास्तविक मान्यता टले और सत्यार्थ बात समझे इस हेतु से तेरे हित की बात कहते है। भाई ! किसी के अनादर के लिए यह बात नही है। यह तो स्व-स्वरूप के आदर की बात है।

परम भावस्वरूप त्रिकालो निज-परमात्मद्रव्य के सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप परिणाम को 'शुद्धोपयोग' पर्यायसज्ञा से कहा जाता है, और वह स्वाभिमुख परिणाम है। पुण्य और पाप भाव तो अशुद्धोपयोग है और वह परसन्मुख परिणाम है। आत्मा की सन्मुखतावाले स्वाभिमुख परिणाम को 'शुद्धोपयोग' कहते है और वह शुद्धोपयोग मोक्ष का मार्ग है—ऐसा कहते ही व्यवहाररूप शुभोपयोग मोक्षमार्ग नही है—यह स्पष्ट हो जाता है।

अरे भाई ! तू थोडे दिन शान्त चित्त से धीरज से यह बात सुन। बापू ! यह कोई वाद-विवाद करने का विषय नही है,

ओर हम किसी के वाद-विवाद मे पडते भी नही है। यह तो शुद्ध वीतराग तत्त्व की बात है। वाद-विवाद से अन्तर का तत्त्व प्राप्त हो – ऐसा नही है।

भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ शुद्ध चैतन्यमय अनन्तगुणनिधान प्रभु एक समय मे परिपूर्ण वस्तु है। उसके सन्मुखतारूप परिणाम को यहाँ शुद्धोपयोग कहते है, और उसे ही मोक्षमार्ग कहा है। तथा उसे ही शुद्धात्मभावना,शुद्धरत्नत्रय, वीतरागता, स्वच्छता, पवित्रता, प्रभुता, साम्यभाव इत्यादि कहते है। इसके अतिरिक्त (स्वसन्मुख परिणाम के अतिरिक्त) दया, दान आदि के परिणाम वास्तव मे जैनधर्म नही है। लोग मन्दिर मे और शास्त्र के प्रकाशन मे लाखो रुपयो का दान देते है न ? परन्तु वह परिणाम धर्म नही है। पैसा तो अपने काल मे अपनी क्रियावती शक्ति के कारण से आता है और जाता है। वहाँ पर का स्वामी होकर तू मानता है कि मैने पैसा दान मे दिया, तो यह तेरी भ्रम भरी मूढमति है।

साहू शान्तिप्रसादजी प्रान्तिज मे आए थे, तीन व्याख्यान सुने थे। पिछले वर्ष इस शरीर के ८७ वर्ष पूरे होने पर जन्म-जयन्ती के समय दादर मे उन्होने ८७ हजार रुपये अपनी तरफ से दिए थे। उस समय उनसे हमने कहा – सेठ, दान देने मे राग मन्द हो तो पुण्यबन्ध का कारण हो, पर ये कुछ धर्म का कारण नही है।

भाई! धर्म तो एक शुद्धात्म सन्मुख परिणाम ही है। उसको यहाँ शुद्धोपयोग कहा है। उसे शुद्धोपयोग कहो, वीतराग-विज्ञान कहो, स्वच्छता का परिणाम कहो, अनाकुल आनन्द का परिणाम कहो, शुद्धात्माभिमुख परिणाम कहो या शान्ति का परिणाम कहो – वह ऐसे अनेक नामों से कहा जाता है। अहाहा! भगवान आत्मा पूर्ण शान्ति से भरा हुआ चैतन्यतत्त्व

है। उसकी सन्मुखता का परिणाम भी शान्त-शान्त-शान्त अकषायरूप शान्त, वीतरागी शुद्ध परिणाम है। वस्तु स्वय पूर्ण अकषाय शान्त स्वरूप है, और उसकी प्रतीति, ज्ञान और रमणता भी अकषायरूप शान्त परिणाम है। इसे ही मोक्ष का अर्थात् पूर्ण परमानन्द की प्राप्ति का उपाय कहते है। इसके सिवा दूसरा कोई उपाय है ही नही।

भाई! अनादि-अनन्त सदा एकरूप परम स्वभावभाव-स्वरूप निज-परमात्मद्रव्य ध्रुव त्रिकाल है, और मोक्षमार्ग परम स्वभावभाव के आश्रय से प्रगट हुई वर्तमान पर्याय है। एक त्रिकाली भाव और एक वर्तमान पर्याय भाव, ऐसे द्रव्य-पर्यायरूप दोनो स्वभाव वस्तु मे एक साथ है। वस्तु कभी पर्याय बिना नही होती, उसमे प्रत्येक समय नई-नई पर्याय परिणमित होती रहती है। वह पर्याय यदि अन्तरमुख होकर स्वभाव मे ढली हुई हो तो मोक्ष का कारण है, और बहिर्मुख होकर परभाव मे ढली हुई हो तो बन्ध का कारण है। इस प्रकार बन्ध-मोक्ष का खेल तेरी पर्याय मे ही होता है, अन्य कोई तेरे बन्ध-मोक्ष का कारण नही। अपने परम स्वभाव मे एकाग्र होकर आनन्द को अनुभवने वाली, ध्रुव मे ढली हुई और ध्रुव मे मिली हुई जो दशा होती है, वह मोक्षमार्ग है और वही धर्म है। ध्रुव सामान्य को ध्यान मे लेकर जो दशा प्रगट होती है, वह नवीन है, ध्रुव नया नही प्रगटा, पर निर्मल अवस्था नवीन प्रगटी है और उसी समय मिथ्यात्वादि पुरानी अवस्था का नाश हुआ है। नाश होना और उपजना वह पर्याय धर्म है और टिका रहना वह द्रव्यस्वरूप है। इसप्रकार वस्तु द्रव्य-पर्यायस्वरूप है। अहो! द्रव्य और पर्याय का ऐसा अलौकिक सत्यस्वरूप सर्वज्ञ भगवान ने साक्षात् देखकर उपदेश दिया है। अहा! इसे समझले तो तू निहाल हो जाए और उसके फल मे केवलज्ञान फले — ऐसी यह अलौकिक बात है।

निज-परमात्मद्रव्य के आश्रय से मोक्षमार्ग है, पर के आश्रय से मोक्षमार्ग नही है। क्या कहा? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के परिणाम, ये तीनो स्वाश्रित परिणाम है, उसमे पर का या राग का जरा भी अवलम्बन नही है। वे तीनो ही भाव शुद्धात्माभिमुख है और पर से विमुख है। इसप्रकार मोक्षमार्ग अत्यन्त निरपेक्ष है, परम उदासीन है। जितना परसन्मुखता का पराश्रित रागादि व्यवहार भाव है,वह कोई भी भाव मोक्षमार्ग नही है। स्वाभिमुख स्वाश्रित परिणाम मे व्यवहाररूप राग की उत्पत्ति ही नही होती। इसलिए रागादिभाव मोक्षमार्ग नही, स्वाश्रित निर्मल रत्नत्रयरूप भाव ही मोक्षमार्ग है, और वही धर्म है। उसे ही आगमभाषा से उपशमादि भावत्रय कहा गया है।

इसप्रकार पाँच भावों मे से मोक्ष का कारण कौन है? यह बताया, उसके अनेक नामो की पहचान कराई। अब कहते है –

"वह पर्याय शुद्ध-पारिणामिकभाव लक्षण शुद्धात्मद्रव्य से कथंचित भिन्न है।"

क्या कहा? कि जो शुद्ध-पारिणामिकभावलक्षण त्रिकाली ध्रुव द्रव्य है, उससे वह मोक्षमार्ग की पर्याय कथचित् भिन्न है। जिस परिणाम को आगमभाषा से उपशमादि भावत्रय कहा और अध्यात्म भाषा से जिसे शुद्धात्माभिमुख परिणाम या शुद्धोपयोग कहा, वह परिणाम त्रिकाली परम स्वभाव भावरूप निज-परमात्मद्रव्य से कथचित् भिन्न है। देखो, द्रव्यसग्रह में मोक्षमार्ग के ६५ नाम दिए है। ये सब स्व-स्वभावमय चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मद्रव्य के आश्रय से प्रगटें शुद्धोपयोगरूप परिणाम के नामान्तर है। यहाँ कहते है–वह परिणाम शुद्ध-पारिणामिक-भावलक्षण शुद्ध-आत्मद्रव्य से कथचित भिन्न है, यह बात सूक्ष्म है प्रभु!

रागादि पुण्य-पाप के भाव तो त्रिकाली शुद्ध-आत्मद्रव्य से भिन्न ही हैं, क्योकि रागादि भाव दोष है, उदयभाव है, और बन्ध के कारण है, जबकि भगवान आत्मा सदा निर्दोष, निरपेक्ष और अबन्ध तत्त्व है। भाई ! व्यवहार-रत्नत्रय का भाव – देव-शास्त्र-गुरु की भेदरूप श्रद्धा, शास्त्र का ज्ञान और पच-महाव्रत का परिणाम इत्यादि जो मन्द राग का परिणाम है, वह कर्म के उदय से उत्पन्न हुआ औदयिकभाव है। वह उदयभाव बन्ध का कारण है और इसलिए वह परिणाम शुद्ध-आत्मद्रव्य से भिन्न है, अर्थात् उस परिणाम मे शुद्ध-आत्मद्रव्य नही है।

यहाँ तो विशेष ऐसा कहते है कि पूर्णानन्दमय, परमानन्दमय मोक्ष का उपाय जो शुद्धोपयोगरूप मोक्षमार्ग है, वह भाव एक समय की पर्यायरूप है, और वह भाव शुद्धात्मद्रव्य से कथचित् भिन्न है। सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ये तीनो पर्याय है, शुद्धोपयोग भी पर्याय है। यह पर्याय शुद्ध-पारिणामिकभालक्षण निज-परमात्मद्रव्य से कथचित् भिन्न है। अहा ! जिसमे कुछ पलटना नही, बदलना नही, ऐसी अपनी त्रिकाली ध्रुव चीज शुद्ध-आत्मवस्तु, जिसे यहाँ शुद्ध-पारिणामिकभावलक्षण कहा है, उससे स्वसन्मुख मोक्षमार्ग का परिणाम कथंचित् भिन्न है। अहो ! जैनतत्त्व बहुत सूक्ष्म है भाई !

कर्मोदय के निमित्त से जो भाव होता है, वह विकार है और बन्ध का कारण है। उपशमभाव कर्म के अनुदय के निमित्त से होने वाली दशा है, वह दशा पवित्र है, पर अन्दर अभी कर्म की सत्ता पडी है, अतः उसे उपशमभाव कहते है। जिसमे कुछ निर्मल और कुछ मलिन अश हो – ऐसी मिश्र दशा को क्षयोपशम कहते है। जो दशा कर्म के क्षय के निमित्त से प्रगट हो उसे क्षायिकभाव कहते है। इन भावो मे तो कर्म के उपशम, क्षय आदि की अपेक्षा आती है, जबकि त्रिकाली स्वभाव

मे कोई अपेक्षा लागू नही पडती । ओहो ! त्रिकाली चैतन्यमात्र द्रव्यस्वभाव, चिदानन्द, सहजानन्द, नित्यानन्द प्रभु परम निरपेक्ष तत्त्व है ।

अहा ! यह तो मारग ही अत्यन्त जुदा है प्रभु ! तेरे अन्दर जो त्रिकाली ध्रुव सदा एक रूप पडा है, वह सहजानन्द-मूर्ति प्रभु अकेला ज्ञान और आनन्द का दल है । वह सम्यग्दर्शन का विषय है । प्रवचनसार मे कहा है कि ज्ञेय-तत्व की और ज्ञातृ-तत्व की तथाप्रकार (जैसी है वैसी) प्रतीति जिसका लक्षण है, वह सम्यग्दर्शन पर्याय है । ऐसा सम्यदर्शन जो इसने अनन्त-काल मे प्रगट नही किया और जो मोक्ष की पहली सीढी है, वह त्रिकाली ध्रुव एक ज्ञायक द्रव्य से भिन्न है ।

भगवान ! तेरा आत्मा परमात्मद्रव्य है । प्रत्येक आत्मा स्वरूप से ऐसा है । उसे शरीर की अवस्था से न देखो, उसे राग की अवस्था से न देखो, अरे ! इसमे निर्मल अवस्था है, वह 'मैं' ऐसा भी न देखो । निर्मल अवस्था मे एक त्रिकाली द्रव्य मैं हूँ – ऐसा देखो । त्रिकाली ध्रुव ज्ञायक तत्त्व से वर्तमान निर्मल अवस्था भिन्न है ।

लोगो ने गह मार्ग कभी सुना नही इसलिए नया लगता है । परन्तु भाई ! यह मार्ग नया नही निकाला, यह तो अनन्त जिनेश्वर भगवन्तो के द्वारा आदर किया और कहा हुआ सनातन मार्ग है । इसने पचमहाव्रतादि का पालन अनन्तबार किया, यह अनन्तबार नग्न दिगम्बर साधु हुआ, पर एक समय के पीछे (भिन्नपने) सम्पूर्ण परमात्म-तत्त्व क्या है, इसका ज्ञान कभी प्रगट नही किया । एक समय की पर्याय मे सब रमत रमा, पर अन्दर विराजमान आत्माराम चैतन्यमहाप्रभु मे कभी रमणता नही की । अन्दर का मार्ग अत्यन्त निराला है भाई !

दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा इत्यादि सब शुभराग है, वह विकल्प है और उदयभाव है, बन्ध का कारण है। उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक भावत्रय उदयभाव से रहित है। इन तीनो भावो को यहाँ शुद्धोपयोग कहा है। वह शुद्धोपयोग दशा (जिसमे आनन्द की दशा का वेदन है) त्रिकाली चीज (द्रव्य) से कथचित् भिन्न है। एक समय की पर्याय उत्पाद-व्ययरूप क्षणिक है। इस अपेक्षा से शुद्धोपयोग की दशा त्रिकाली शुद्ध-आत्मद्रव्य से भिन्न है।

समयसार के संवर अधिकार मे आया है कि पुण्य-पाप के भाव और व्यवहार-रत्नत्रय का जितना विकल्प है, वह सब राग त्रिकाली द्रव्य से भिन्न है। अहा! भाव तो भिन्न है, पर राग के प्रदेश भी भिन्न है – ऐसा कहा है। आत्मा अकेला आनन्द का दल है। इसमे से विकार उत्पन्न नही होता। अर्थात् विकार का क्षेत्र त्रिकाली द्रव्य के क्षेत्र से भिन्न है। अनन्त गुणधाम प्रभु आत्मा त्रिकाल शुद्ध असंख्यातप्रदेशी वस्तु है। इसकी पर्याय मे जो दया, दान आदि के विकल्प उठते है, वे त्रिकाल स्वभाव से तो भिन्न है, परन्तु क्षेत्र से भी भिन्न है, यहाँ दोनो को भिन्न-भिन्न वस्तु कहा है। एक वस्तु की वास्तव मे अन्य वस्तु नही – ऐसा वहाँ कहा है। प्रवचनसार गाथा १०२ की शैली के अनुसार "चिद्‌विलास" मे भी ऐसा कहा है कि पर्याय के कारण से पर्याय होती है, द्रव्य-गुण के कारण से नही।

इसप्रकार मोक्षमार्ग की पर्याय का कर्त्ता पर्याय स्वय है। उस पर्याय का कर्म भी वही है, पर्याय का साधन, पर्याय का सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण भी वही पर्याय ही है। पर्याय एक समय की सहज सत् है। वीतराग का ऐसा मार्ग शूरो का मार्ग है। जो यह मार्ग सुनकर भी काँप उठते है – ऐसे कायरो का यहाँ काम नही है।

देखो, आत्मभान होने के बाद भी ज्ञानी को शुभ या अशुभ भाव भी आता है। उसे कदाचित् आर्त-रौद्रध्यान का तथा विषयभोग का भाव भी होता है। वह भाव कमजोरी के कारण होता है, पर ज्ञानी को इन भावों की रुचि नही है, उसे इन भावो मे आनन्द नही आता। वह तो जानता है कि मेरे स्वरूप मे ही आनन्द है, इसके सिवा बाहर मे, निमित्त मे या राग मे कही भी सुख नही है। राग और निमित्त मे सुख है, ऐसी दृष्टि का उसको अभाव है।

जो सारे दिन पैसा कमाने-धमाने में फँस गया हो, वह ये बाते किस दिन समझेगा ? पर बापू ! ये पैसे-वैसा तो जड़-मिट्टी, धूल है। इसमे कहाँ आत्मा है ? ये मेरा है—ऐसी मान्यता ही मिथ्यात्व है, क्योकि जो जड है,वह कभी चेतनरूप नही होता। यहाँ तो कहते है—जिसमे अपूर्व-अपूर्व आनन्द का स्वाद आता है, ऐसी मोक्ष मार्ग पर्याय भी द्रव्य से कथचित् भिन्न है। जहाँ अतीन्द्रिय आनन्द का पूर्ण स्वाद आवे, वह मोक्ष है और वह भी एक पर्याय है। वह पर्याय द्रव्य से कथचित् भिन्न है। द्रव्य क्या ? गुण क्या ? और पर्याय क्या ? ऐसा अपना द्रव्य-पर्याय स्वरूप जानने की लोगों ने कभी दरकार ही नही की।

त्रिलोकीनाथ अरिहत परमेश्वर ऐसा फरमाते है कि—व्यवहार-रत्नत्रय का विकल्प कथनमात्र मोक्ष का मार्ग है। यह विकल्प तो भगवान आत्मा से भिन्न है ही, पर त्रिकाली ध्रुव के आलम्बन से अन्तर में प्रगट होने वाली मोक्ष के मार्ग की पर्याय भी त्रिकाली शुद्ध-पारिणामिकभाव लक्षण निज-परमात्म-द्रव्य से कथचित् भिन्न है, क्योकि वस्तु द्रव्यरूप है, वह त्रिकाल है और पर्याय का काल तो एक समय है। निहालभाई ने तो "द्रव्यदृष्टिप्रकाश" मे पर्याय को द्रव्य से सर्वथा भिन्न कहा

है – यह बात ख्याल मे है, पर यहाँ अपेक्षा रखकर कथञ्चित् भिन्न कहा है। मोक्ष दशा का कारणरूप निश्चय-मोक्षमार्ग की पर्याय शुद्धात्मद्रव्य से कथञ्चित् भिन्न है – इसप्रकार यहाँ अपेक्षा से बात है।

सम्यग्दर्शन पर्याय है। उसका विषय त्रिकाल सत्यार्थ, भूतार्थ, मौजूद चीज, सच्चिदानन्द प्रभु भगवान आत्मा है। यहाँ कहते है, विषयी (पर्याय) अपने विषय (त्रिकाली ध्रुव) से कथञ्चित् भिन्न है। क्योकि विषयी (पर्याय) भावनारूप है और विषय (शुद्ध पारिणामिक भाव) भावनारूप नही है।

अहो! जगल मे बसने वाले सन्तो ने कैसा काम किया है। अन्दर मे सिद्धो के साथ गोष्ठी की है, अर्थात् अन्दर मे निज सिद्धस्वरूप का अनुभव प्रगट करके स्वय भगवान सिद्ध के साधर्मी होकर बैठे है, उनकी यह वाणी है।

भगवान आत्मा शुद्ध-पारिणामिकभाव लक्षण एक पूर्ण चैतन्यमय वस्तु है, वह त्रिकाल भावरूप है, भावनारूप नही, जबकि उसके आश्रय से जो मोक्ष का मार्ग प्रगट हुआ है, वह भावनारूप है, त्रिकाल भावरूप नही। सूक्ष्म बात है प्रभु!

अज्ञानी मूढ जीव ये स्त्री-पुत्रादि मेरे है, यह बाग-बगला मेरा है तथा मैं यह करूँ और वह करूँ – इसप्रकार पर की सम्भाल करने मे फँस गया है। वह तो मोक्ष के मार्ग से बहुत ही दूर है। यहाँ तो ऐसा कहते है कि मोक्षमार्ग की पर्याय वर्तमान भावनारूप होने से त्रिकाली ध्रुव निज-परमात्मद्रव्य से कथञ्चित् भिन्न है – ऐसा भेद अन्तर मे जिसे भासित नही हुआ, वह भी मोक्ष के मार्ग से दूर है। अब जहाँ यह बात है,[1] वहाँ व्यवहार से निश्चय प्रगट होता है – यह बात कहाँ रही प्रभु!

---

१ निर्मल पर्याय और त्रिकाली द्रव्य मे भिन्नता की बात है।

त्रिकाली पारिणामिक को भावरूप कहो, पारिणामिक कहो, ध्रुव कहो, नित्य कहो, एकरूप कहो; और पर्याय को अनित्य, अध्रुव, विसदृश कहो, क्योकि उसमे प्रतिसमय उत्पाद-व्यय होता है। मोक्ष का मार्ग भी उत्पाद-व्ययरूप है। अर्थात् वर्तमान समय मे जिसका उत्पाद होता है, दूसरे समय मे उसका व्यय होता है, दूसरे समय जिसका उत्पाद हो उसका तीसरे समय में व्यय होता है। इसप्रकार उत्पाद-व्ययरूप होने से मोक्ष मार्ग की पर्याय शुद्ध-पारिणामिकभावलक्षण द्रव्य से कथंचित् भिन्न है। क्यों ? क्योकि वह पर्याय भावनारूप है।

बारह भावनाये कही है न ? वे पहले तो विकल्परूप होती है, फिर विकल्प का व्यय होकर निर्विकल्प दशा होती है। यह निर्मल निर्विकल्प पर्याय भावनारूप है। भाव अर्थात् त्रिकाली एक रूप परमात्मद्रव्य, उसके सन्मुख होकर प्रगट होने वाली दशा भावनारूप है, त्रिकाली भावरूप नही। भाई ! ये शब्द तो जड है, उनका वाच्य (भाव) यथार्थ समझना चाहिए।

शुद्ध-पारिणामिकभावरूप त्रिकाली स्वभाव परमानदमय प्रभु है, वह भावनारूप नही, अर्थात् वह वर्तमान पर्यायरूप नही है। उसके आश्रय से प्रगट हुई मोक्ष के कारणरूप दशा भावना-रूप है। यह बात न समझकर कितने ही लोग दया, दान, व्रत, भक्ति आदि व्यहार करते-करते निश्चय मोक्षमार्ग प्रगट हो जाता है – ऐसा कहते हैं। अरे प्रभु ! इसप्रकार तुझे सत्य नही मिलेगा, असत्य ही मिलेगा, क्योकि राग के सर्व भाव असत्यार्थ ही है। त्रिकाली द्रव्य की अपेक्षा से मोक्षमार्ग की वर्तमान पर्याय को उससे कथचित् भिन्न कहकर असत्यार्थ कहा है तो फिर राग के विकल्पवाली मलिन दुःखरूप दशा का क्या कहना ? भाई ! मोक्षमार्ग की पर्याय तो पवित्र है, आनन्दरूप है, अबन्ध है। वह भी त्रिकाली शुद्ध-द्रव्य से कथंचित् भिन्न है तो फिर

बन्धरूप राग की दशा का क्या कहना ? राग करते-करते निश्चय (वीतरागता) प्रगटेगा, यह तो तेरा अनादिकालीन भ्रम है। भाई ! वीतरागभाव शुद्धात्मा के आश्रय से प्रगट होता है।

अहा ! मोक्ष के कारणरूप अबन्ध परिणाम भावनारूप हैं, त्रिकाली शुद्ध द्रव्यस्वभाव भावनारूप नही है। अहो ! ऐसी शुद्ध तत्त्वदृष्टि करके चक्रवर्ती और तीर्थङ्कर के आठ-आठ वर्ष के पुत्रो ने केवलज्ञान प्रगट करके अल्पकाल मे मोक्ष पद पाया है। उनको शरीर की अवस्था कहाँ रोकती है ? यह तो पुण्य-शालियो की बात है, नही तो लकडी बेचकर गुजारा चलाने वाले गरीब कठियारे के आठ-आठ वर्ष के पुत्र भी अन्त तत्त्व का भान करके, जहाँ मनुष्य के चलने का पगरव भी नही होता, ऐसे जङ्गल मे जाकर एकान्त स्थान मे निजस्वरूप की साधना करके अल्प समय मे ही परमपद की प्राप्ति कर लेते हैं। अहो ! अन्तर का ऐसा कोई अलौकिक मार्ग है।

बाहर की चीज – निमित्त और राग तो कही दूर रह गया, यहाँ तो निर्मल द्रव्य-पर्याय के बीच कथञ्चित् भेद होने की सूक्ष्म बात है। जैनतत्त्व बहुत सूक्ष्म और गम्भीर है भाई ! यहाँ विशेष कहते है –

'यदि वह (पर्याय) एकान्त से शुद्ध-पारिणामिक से अभिन्न हो. तो मोक्ष का प्रसंग बनने पर इस भावनारूप (मोक्ष की कारणभूत) पर्याय का विनाश होने पर शुद्ध पारि-णामिकभाव भी विनाश को प्राप्त हो, पर ऐसा तो होता नहीं है। (कारण कि शुद्ध पारिणामिक भाव तो अविनाशी है)"

देखो, क्या कहते हैं ? वीतरागभावरूप निर्मल पर्याय यदि त्रिकाली भाव से एकमेक हो तो मोक्ष का प्रसङ्ग बनने पर मोक्षमार्ग की भावनारूप पर्याय का विनाश होता है, उस समय ही शुद्ध पारिणामिकभाव – त्रिकालीभाव भी विनाश को प्राप्त

हो जाए। यहाँ क्या कहना है ? कि मोक्ष मार्ग मे क्षायिक-भावरूप जो निर्मल पर्याय हुई, वह पर्याय त्रिकाली द्रव्य के साथ सर्वथा अभिन्न नही है। यदि दोनों सर्वथा अभिन्न हो तो दो धर्मो की सिद्धि ही न हो और एक धर्म का (पर्यायि का) व्यय होने पर सम्पूर्ण द्रव्य का ही नाश हो जाए। देखो, पूर्ण शुद्ध ज्ञान और आनन्द की प्राप्तिरूप मोक्ष की प्रगटता होने पर मोक्षमार्ग की भावनारूप पर्याय का व्यय होता है। तो क्या उस समय आत्मद्रव्य का ही नाश हो जाता है ? नही होता, क्योकि वह पर्यायि द्रव्य के साथ सर्वथा अभिन्न नही है, कथचित् भिन्न है। मोक्षमार्ग की भावनारूप पर्याय यदि त्रिकाली पारिणामिकभाव के साथ एकान्त से एकमेक हो तो मोक्ष के प्रसङ्ग में मोक्षमार्ग को पर्यायि का व्यय होने पर त्रिकाली द्रव्य का भी नाश हो जाए पर ऐसा कभी बनता नही, क्योकि त्रिकाली द्रव्य स्वभाव तो शाश्वत् अविनाशी तत्त्व है। समझ में आया ? भाई ! यह बात न्याय से कही गई है, न्याय से तो समझना चाहिए न ? वाद-विवाद से क्या पार पडे ?

भाई ! केवलज्ञान की पर्याय भी नाशवान है। नियमसार, शुद्धभाव अधिकार मे नवतत्त्वो को नाशवान कहा है। जीव की एक समय की पर्याय नाशवान है, अजीव का ज्ञान करने वाली पर्याय नाशवान है। आस्रव, बन्ध, पुण्य और पाप सवर, निर्जरा और मोक्ष – इन सब तत्त्वो को वहाँ नाशवान कहा है। गजब की बात है भाई ! शरीर नाशवान, पैसा नाशवान, रागादि नाशवान, सवर-निर्जरा अर्थात् मोक्षमार्ग की पर्याय नाशवान और केवलज्ञान की पर्याय भी नाशवान है, क्योकि प्रत्येक पर्याय की स्थिति ही एक समय की है। केवलज्ञान की पर्याय दूसरे समय रह नही सकती, क्योंकि वह एक समय की स्थिति वाली क्षण विनाशी चीज है, जबकि भगवान

अन्दर नित्यानन्द प्रभु निज-परमात्मद्रव्य शुद्ध पारिणामिक भावरूप वस्तु अविनाशी शाश्वत् चीज है। इसप्रकार दोनो के बीच कथञ्चित् भिन्नता है। अनादि अनन्त ऐसी ही वस्तुस्थिति है।

प्रश्न – पचास्तिकाय मे पर्यायरहित द्रव्य नही, और द्रव्यरहित पर्याय नही – ऐसा कहा है न ?

उत्तर – हाँ, वहाँ तो पर से भिन्न द्रव्य का अस्तिकाय स्वरूप सिद्ध करना है, इसलिए कहा है कि पर्यायरहित द्रव्य नही और द्रव्य रहित पर्याय नही। वहाँ सम्पूर्ण द्रव्य का (द्रव्य-पर्यायमय) अस्तित्व सिद्ध करना है। पर यहाँ तो अनादिकालीन पर्यायमूढ जीव को भेदविज्ञान कराने का प्रयोजन है। इसलिए पर्यायदृष्टि छुडाने के लिए कहा है कि पर्याय की त्रिकाली द्रव्य से कथंचित् भिन्नता है, यदि दोनो सर्वथा एकमेक हो तो पर्याय का नाश होने पर द्रव्य का भी नाश हो जाए। पर ऐसा नही होता। इसलिए त्रिकाली भाव से वह भावनारूप पर्याय कथञ्चित् भिन्न है।

भाई ! यह तो अन्दर की बाते है। बापू ! यदि तुझे सत् शोधना हो तो वह शाश्वत् सत् अन्दर मे है, इसे शोधने वाली पर्याय भी इस सत् से कथञ्चित् भिन्न है, अर्थात् पर्याय मे जिसे अहभाव है, उसे वह सत् हाथ नही लगता – ऐसी चीज है भाई ! तुझे किसमे अहपना करना है ? किसे अधिकपने मानना है ? मै पर्याय से अधिक (भिन्न) हूँ – ऐसा मानने से अन्दर द्रव्य जो अधिक है, उसका अनुभव होता है। समयसार गाथा ३१ मे आता है –

"जो इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं।"

अहाहा ! ज्ञानस्वभाव जो त्रिकाल है, वह अधिक है। परमस्वभावभावरूप एक ज्ञायकभाव, राग और एक समय की पर्याय से अधिक अर्थात् भिन्न है। यहाँ यही कहते है कि ध्रुव-

स्वभाव के लक्ष्य से प्रगट होने वाला सत्यार्थ मोक्ष का मार्ग भावनारूप है और वह त्रिकाली भाव से भिन्न है। भावनारूप मोक्षमार्ग और त्रिकाली परमभाव – दोनो चीजे सर्वथा एक नही, वे दोनो चीजे सर्वथा एक हो तो जब भावनारूप मोक्षमार्ग का व्यय होकर मोक्ष हो, तब त्रिकाली भाव के भी नाश होने का प्रसग आएगा। भगवान ! मारग तो ऐसा सूक्ष्म है।

भाई ! यह मारग, तुझे जैसा है वैसा यथार्थ समझना पडेगा। इसे समझे बिना ही तू अनन्तकाल से रखडता हुआ दुःखी हो रहा है। यहाँ कोई बडा अरबपति सेठ हो, करोडो के बगले मे रहता हो, और क्षण मे देह छूटकर फू हो जाए[1] तब मरण करके बकरी की कूँख मे चला जाएगा, वहाँ जन्म होने पर बे–बे–बे करेगा। पर अरे ! इसे विचार ही नही कि मरकर मै कहाँ जाऊँगा ? मै कहाँ हूँ ? और मेरा क्या हाल-हवाल होगा ? भाई ! इस अवसर मे जो स्वरूप की समझ नही की तो कौए, कुत्ते, कीडा इत्यादि पर्याय धारण करके तू ससार मे खो जाएगा।

यहाँ भावनारूप पर्याय का मोक्ष की कारणभूत पर्याय कहते है। अन्य जगह ऐसा भी कहा है कि मोक्ष पर्याय, मोक्ष की कारणभूत मोक्षमार्ग पर्याय से प्रगट नही होती। वास्तव मे उस समय की केवलज्ञान और मोक्ष की दशा अपने स्वयं के षट्-कारकरूप परिणमन से स्वतन्त्र उत्पन्न होती है, उसे पूर्व की मोक्षमार्ग की पर्याय की अपेक्षा नही है। मोक्ष की पर्याय के पहले मोक्षमार्ग की पर्याय अवश्य ही होती है, तो भी मोक्ष की पर्याय उस समय का स्वतन्त्र सत् है। मोक्षमार्ग की पर्याय के कारण मोक्ष की दशा हुई – ऐसा नही है। ऐसा मार्ग है भाई !

यहाँ ऐसा समझना है कि मोक्ष होने के पहले जो मोक्ष-मार्गकी पर्याय थी, वह पर्याय त्रिकाली चीज से एकमेक नही, पर भिन्न है। यदि अभिन्न हो तो मोक्षमार्ग की पर्याय का नाश होने

---

१ मरण हो जाए।

पर शुद्ध पारिणामिकभाव भी विनाश को प्राप्त हो, पर ऐसा कभी बनता नही,क्योकि वस्तु–त्रिकाली द्रव्य अविनाशी है। अहा! सत् अर्थात् एक सदृशरूप स्वभाव – अविरुद्धस्वभाव त्रिकाली है, वह कहाँ जाए ? विसदृशपना और उत्पाद-व्यय तो पर्याय मे है, उपजना और विनसना तो पर्याय मे है। वस्तु तो उत्पाद-व्यय रहित त्रिकाल शाश्वत् सत्पने विद्यमान चीज है। आगे कहेगे कि मोक्ष के मार्ग की पर्यायपने आत्मा नही उपजता। अरे! वह मोक्ष के मार्ग की पर्याय के अभावपने (मोक्षपने) भी नही उपजता। बापू! यह मार्ग ही जुदा है नाथ!

अरेरे! यह जीव अभी स्व के भान बिना दुखी है – ऐसी इसको कहाँ खबर है ? अरे! दुख क्या है, इसकी भी इसको कहाँ खबर है ? शास्त्र मे दृष्टान्त आता है कि वन मे दावानल लगने पर पशु-पक्षी भस्म हो जाते है। उस समय कोई मनुष्य वन के बीच वृक्ष पर चढकर बैठा है और अपने चारो तरफ वन को जलता हुआ देखता है, तो भी ऐसा मानता है कि मै सकुशल हूँ, मै कहाँ जलता हूँ ? पर भाई! ये वन जल रहा है तो वह अभी ही इस झाड को जलाएगा और तू भी क्षण मे ही जलकर भस्म हो जाएगा। जैसे, झाड के ऊपर बैठा हुआ वह मनुष्य "मै सलामत हूँ" ऐसा मानता है – यह उसकी मूढता है, क्योकि क्षण मे ही अग्नि सुलगती-सुलगती आएगी और झाड को पकडेगी तब उसकी ज्वाला मे वह तत्काल भस्म हो जाएगा। वैसे, यह भवरूप वन कालाग्नि द्वारा जलता हुआ देखते हुए भी "मै सलामत (सुरक्षित) हूँ, सुखी हूँ, ऐसा कोई मानता है, यह उसकी मूढता है। अरे! जलने पर भी इसे जलने की खबर नही है।

अहा! मोक्षमार्ग की पर्याय भी नाशवान है। प्रभु! तुझे किस चीज को टिकाये रखना है ? तू स्वय नित्यानन्द प्रभु

त्रिकाली टिकता तत्त्व है। इसमे नजर नही करता और अनित्य को टिकाना चाहता है – यह तेरी मूढता है। तू देहादि बाह्य विनश्वर वस्तुओ को टिकाने की कोशिश करता है पर इसमे तुझे निष्फलता का दु ख ही प्राप्त होगा।

बढवाण का एक भाई कहता था – महाराज ! यह सब उपाधि किसने की ? तब हमने कहा – अरे भाई ! क्या इतनी भी तुझे खबर नही ? यह सब उपाधि तूने स्वय ही खडी की है। अपने स्वरूप को भूलकर अनादि से राग और विकार की उपाधि तूने स्वय बटोरी है। तू तुझे ही भूल गया है। अपने निरुपाधि शुद्ध चैतन्यतत्त्व को भूलकर यह सब उपाधि तूने स्वय खडी की है। तू अनन्तकाल से पुण्य-पाप के विकल्प करता रहा और इससे तुझे बन्ध हुआ, उसके निमित्त से यह सब सयोग हुआ है। इन सबको अपना मानकर तूने स्वय यह उपाधि ग्रहण की है।

देखो, चमरी गाय की पूँछ बहुत सुन्दर होती है। अपने बाल झाड मे फस जाने पर वह गाय बालो के प्रेम मे वही खडी रह जाती है और शिकारी के बाण से बिंधकर मारी जाती है, इसीप्रकार अज्ञानी ससारी प्राणी इस दुनिया के पदार्थों के प्रेम मे फँसकर वही खडा रह गया है और स्वय मर रहा है, लुट रहा है, इसका इसे भान नही है। नियमसार मे आता है, ये स्त्री-बच्चे, कुटुम्ब-कबीला वगैरह अपनी आजीविका के लिए तुझे ठगो की टोली मिली है, तेरे मरण के समय तुझे कोई काम मे नही आएगा। अभी भी वे किसी काम के नही है। तू अकेला विलाप करता हुआ कही का कही चला जाएगा, और इस भवभ्रमण के प्रवाह मे तू खो जाएगा।

भाई ! यह आत्मा के अन्दर के भावों की बात है। शुद्ध पारिणामिकभाव त्रिकाल परमभाव है, उसमे उत्पाद-व्यय नही है,

और उसका कभी अभाव नही होता – ऐसा शाश्वत ध्रुव एक रूप भाव उत्पाद-व्ययरूप है। अशुद्धता का व्यय होकर आशिक शुद्धतारूप मोक्षमार्ग प्रगट होता है, और मोक्षमार्ग का व्यय होकर पूर्ण मोक्षदशा प्रगट होती है, परन्तु जो परमभावरूप द्रव्य है, उसका व्यय भी नही होता और वह नया प्रगट भी नही होता। इसप्रकार पलटती पर्याय, और त्रिकाल टिकता (ध्रुव) द्रव्य – ऐसा वस्तु का स्वरूप है। द्रव्य अपेक्षा से वस्तु अपरिणामी और अक्रिय है और पर्याय अपेक्षा से परिणमनशील और सक्रिय है। श्री सर्वज्ञदेव ने ऐसे द्रव्य-पर्यायरूप वस्तुस्वरूप का उपदेश दिया है। द्रव्य और पर्याय सर्वथा अभिन्न नही है, कथचित् भिन्न है। सर्वथा भिन्न नही और सर्वथा अभिन्न भो नही–ऐसा वस्तु का स्वरूप है। सर्वथा भिन्न हो तो वस्तु अवस्था रहित होने से वस्तु ही न रहे, तथा सर्वथा अभिन्न हो तो पर्याय का नाश होने से द्रव्य का ही नाश हो जाए अर्थात् वस्तु ही न रहे। इसलिए द्रव्य-पर्याय कथचित् भिन्न हैं, यही यथार्थ है।

शास्त्र मे 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त सत्' कहा है। ध्रुवता अर्थात् टिकना, उत्पाद-व्यय अर्थात् बदलना। टिककर बदले, और बदलकर टिका रहे – ऐसा वस्तु का आश्चर्यकारी सत् स्वरूप है। द्रव्य अविनाशी है, और पर्याय विनाशी है – इसप्रकार द्रव्य-पर्याय दोनो सर्वथा एक नही है। त्रिकाली शुद्ध द्रव्य के लक्ष्य से प्रगट होने वाली श्रद्धा-ज्ञान-रमणतारूप निर्मल पर्याय यद्यपि मोक्ष दशा का कारण है, तथापि वह मोक्ष दशा होने पर व्यय हो जाती है, जबकि द्रव्य टिककर त्रिकाल स्थिर रहता है। इसप्रकार वस्तु के द्रव्य और पर्याय दोनो अशो मे भिन्नता है। ऐसा वस्तुस्वरूप समझने पर अश (पर्याय) बुद्धि टलकर द्रव्यदृष्टि होती है।

देखो, आत्मा में एक पर्याय अंश है। अज्ञान टलकर ज्ञान होना, अशुद्धता टलकर शुद्धता होना इत्यादि नया-नया कार्य पर्याय में ही होता है। जो जीव पर्याय का अस्तित्व ही नही मानता उसे तो नया कार्य होता ही नही, अर्थात् उसे अपने अज्ञानभाव के कारण ससार मिटता ही नही, तथा यदि कोई अकेली पर्याय के सामने ही देखा करे और द्रव्य के शुद्ध स्वभाव का लक्ष्य न करे तो उसे भी अशुद्धता टलकर शुद्धता नही होती। पर्याय की शुद्धता तो त्रिकाली शुद्ध द्रव्य के आश्रय से होती है। द्रव्यस्वभाव मे अन्तर्मुख होकर एकाग्र हुए बिना पर्याय की शुद्धता नही होती। द्रव्य को न माने तो भी शुद्धता न सधे, और एकान्त से पर्याय को ही वस्तु मान ले तो पर्याय का व्यय होने पर ही वस्तु का नाश हो जाए, परन्तु ऐसा वस्तु-स्वरूप नही है, तथा पर्याय को न मानकर वस्तु को एकान्त नित्य–कूटस्थ माने तो पर्यायरूप पलटना विना नया कार्य ही नही बन सकता, अत. तब ससार का भी अभाव नही होगा। इस-प्रकार वस्तु मे द्रव्य और पर्याय दोनो अंश एक साथ रहते है और उन दोनो मे कथञ्चित् भिन्नपना है, ऐसा स्याद्वाद मत है।

मोक्षमार्ग की पर्याय त्रिकाली द्रव्य से कथञ्चित् भिन्न है। यह शरीर, मन, वचन इत्यादि आत्मा से सर्वथा जुदे हैं। कर्म भी आत्मा से सर्वथा जुदे है। यहाँ कहते है – अपने मे जो द्रव्य-पर्याय के अंश है, वे भी परस्पर कथञ्चित् भिन्न हैं। अहो ! यह तो भेदज्ञान की चरम सीमारूप सर्वोत्कृष्ट बात है। यह बात जिसके अन्तर में बैठे वह निहाल हो जाए।

अब कहते है – इसलिए ऐसा निश्चित हुआ – **शुद्ध-पारिणामिकभावविषयक (शुद्ध-पारिणामिकभाव का अवलम्बन करने वाली) भावनारूप जो औपशमिकादि तीन भाव है, वे समस्त रागादि से रहित होने के कारण शुद्ध-उपादानकारण-**

भूत होने से मोक्ष के कारण हैं, परन्तु शुद्ध-पारिणामिक नहीं। (अर्थात् शुद्ध-पारिणामिकभाव मोक्ष का कारण नहीं है।)'

भगवान आत्मा नित्यानन्दमय सच्चिदानन्द प्रभु सदा एक ज्ञायकभाव वस्तु है, उसे शुद्ध-पारिणामिकभाव कहते हैं। यह पारिणामिकभाव मोक्ष का कारण नही है, इसे मोक्ष का कारण कहना व्यवहार-नय है, वास्तव मे शुद्ध द्रव्य मोक्ष की पर्याय का कारण नही है। अहा! जैसे द्रव्य त्रिकाली सत् है, वैसे पर्याय भी सहज सत् है – ऐसा वस्तु का स्वरूप है। राग परिणाम हो या वीतराग परिणाम हो, वह परिणाम उस-उस काल मे सहज सत् है। जहाँ ऐसा वस्तुस्वरूप है, वहाँ व्यवहार से – राग से निश्चय होता है, यह बात कहाँ रही?

व्यवहार रत्नत्रय करते-करते मोक्ष होगा, ऐसी बाते अभी चलती हैं, पर वे यथार्थ नही है। दया करो, व्रत करो, दान, भक्ति, पूजा करो इत्यादि प्ररूपणा अभी चलती है, पर भगवान! ये तो सब राग की क्रियाये हैं। राग तो उदयभाव है, बन्ध का कारण है, वह मोक्ष का कारण कैसे हो सकता है? स्वय पूर्णानन्द का नाथ प्रभु अन्तर मे सदा शान्ति और आनन्द-भावरूप से विराजमान है, उसके लक्ष्य से स्वतन्त्रपने अपने षट्-कारकरूप परिणमन द्वारा निर्मल रत्नत्रय पर्याय प्रगट होती है। उस पर्याय को व्यवहार–रत्नत्रय की अपेक्षा नही है। निश्चय-मोक्षमार्ग की पर्याय व्यवहार की अपेक्षा बिना ही निरपेक्षपने अपने षट्कारकरूप से परिणमती हुई प्रगट होती है। ऐसी सूक्ष्म बात है प्रभु!

भाई! आत्मा त्रिकाली शुद्ध वस्तु है, वह परिणमित नही होती। समयसार गाथा २८० के भावार्थ मे आया है – "आत्मा जब ज्ञानी हुआ तब उसने वस्तु का ऐसा स्वभाव जाना कि आत्मा स्वय तो शुद्ध ही है, 'द्रव्यदृष्टि से अपरिणमनस्वरूप

है, पर्यायदृष्टि से परद्रव्य के निमित्त से रागादिरूप परिणमित होता है, इसलिये अब ज्ञानी स्वयं उन भावो का कर्त्ता नही होता, जो उदय आते है, उनका ज्ञाता ही है।"अहा !-सम्यग्दृष्टि उसे कहते है कि जो व्यवहार-रत्नत्रयरूप राग का कर्त्ता या भोक्ता नही होता, क्योकि पर्याय मे वह ज्ञानभावरूप परिणमित हो रहा है और द्रव्य अपरिणमनस्वरूप है। यह परमात्मा के घर की बात है भाई !

अहाहा ! आत्मा अन्दर चिद्घन ध्रुव वस्तु परिणमनरहित और सदा एकरूप है, उसमे परिणमन ही नही है, और बदलने वाली विकारी या निर्विकारी पर्याय एक समय का सत् है। रागादि विकार रूप परिणाम भी जडकर्म की अपेक्षा विना स्वतत्ररूप से अपने षट्कारक से प्रगट होने वाले परिणाम हैं।

कुछ लोग कहते है – क्या कर्म से विकार नही होता ? यदि कर्म से विकार न हो तो वह स्वभाव हो जायगा।

अरे भाई ! कर्म तो बिचारे जड–अजीव हैं, परद्रव्य है, ये तो स्वद्रव्य को छूते भी नही। जब ऐसी वस्तु-स्थिति है तो परद्रव्य से स्वद्रव्य की विकारी पर्याय कैसे होगी ? नही होगी। "कर्म से विकार हुआ" यह तो निमित्त का ज्ञान कराने के लिए निमित्तप्रधान कथन है।

मिथ्यात्वदि भावो को जीव स्वतत्ररूप से अपनी पर्याय मे उत्पन्न करता है। जैसे त्रिकाली जीवद्रव्य इनका कारण नही है, वैसे परद्रव्य – कर्म भी इनका कारण नही है। मिथ्यात्व-भाव का कर्त्ता मिथ्यात्व पर्याय है। मिथ्यात्व की पर्याय कर्त्ता, मिथ्यात्व की पर्याय कर्म, मिथ्यात्व की पर्याय स्वय साधन, मिथ्यात्व का परिणाम स्वय सप्रदान, मिथ्यात्व मे से मिथ्यात्व हुआ वह अपादान और मिथ्यात्व के आधार से मिथ्यात्व हुआ वह अधिकरण; इसप्रकार मिथ्यात्व की विकारी पर्याय कर्त्ता-

कर्म आदि अपने षट्कारक से स्वतत्रपने उत्पन्न होती है, इसे निमित्त की या कर्म के षट्कारको की कोई अपेक्षा नही है।

देखो, जीव विकार की पर्याय को करे ऐसा उसका स्वभाव नही है, क्योकि जीव मे ऐसी कोई शक्ति नही जो विकार को करे। आत्मा मे ज्ञान, दर्शन, आनन्द, अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रभुत्व आदि अनत-अनत शक्तियाँ भरी हैं, पर इसमे ऐसी कोई शक्ति नही जो विकार को उत्पन्न करे। शक्तियाँ तो सब निर्मल ही निर्मल है।

प्रश्न – पर्याय मे विकार तो होता है।

उत्तर – हाँ पर्याय मे जो विकार होता है, वह अपने समय के षट्कारकरूप परिणमन से स्वतत्रपने होता है। जीव-द्रव्य उसका कारण नही है और निमित्त – कर्म भी इसका वास्तविक कारण नही है। पचास्तिकाय गाथा ६२ मे यह बात आयी है। लोगो को यह बात स्वीकार करना कठिन पडता है, परन्तु सत्य बात यही है।

इसी तरह मोक्षमार्ग की जो पर्याय – सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप निर्मल रत्नत्रय पर्याय निश्चय से अपने-अपने काल मे अपने षट्कारक से उत्पन्न होती है, उसे परम पारिणामिक-भावलक्षण त्रिकाली शुद्ध द्रव्य-गुण को भी अपेक्षा नही है, और दया, दान, व्रत,पूजा आदि व्यवहार-रत्नत्रय की भी अपेक्षा नही है। वीतराग का मार्ग ऐसा सूक्ष्म है भाई! राग की क्रिया करते-करते धर्म हो जाये, वीतराग के मार्ग मे ऐसा नही है। यह तो अज्ञानी लोगो द्वारा कल्पना करके खडी की हुई बात है। अरे! लोगो ने मार्ग को भ्रष्ट कर दिया है।

भाई! मोक्ष का मार्ग अर्थात् सम्यग्दर्शनादि निर्मल रत्नत्रय पर्याय स्वतत्रपने प्रगट हुई है, इसे त्रिकाली द्रव्य की अपेक्षा नही है और बाह्य व्यवहार-कारको की अपेक्षा नही है।

सम्यग्दर्शन पर्याय अपने षट्कारक से स्वतन्त्र उत्पन्न हुई है। सम्यग्दर्शन का कर्त्ता सम्यग्दर्शन पर्याय स्वय है, इसका कर्म भी वही पर्याय है, इसका साधन, सप्रदान, अपादान और अधिकरण भी वह पर्याय स्वय ही है। अहो! सतो ने आढतिया होकर सर्वज्ञ परमात्मा के द्वारा कही हुई बात जगत के समक्ष जाहिर की है।

अहाहा! आत्मा शुद्ध-पारिणामिकभावरूप सहजानद प्रभु, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनद, पूर्ण स्वच्छता, पूर्ण प्रभुता आदि पूर्ण शक्तियो से भरा हुआ पूर्णानन्दघन भगवान है। उसका अवलबन करने वाली अर्थात् उसे विषय करने वाली उपशमादि-भावत्रयरूप यह भावना समस्त रागादि से रहित है। देखो, क्या कहा? जिसे आगम भाषा से उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक-भावत्रयरूप कहा और अध्यात्म भाषा से "शुद्धात्माभिमुख" "शुद्धोपयोग" इत्यादि पर्यायसज्ञा दी है – ऐसी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप निर्मल रत्नत्रयभावना शुद्धपारिणामिक भाव का अवलम्बन करने वाली है और समस्त रागादि से रहित है।

यह टीका करनेवाले जयसेनाचार्यदेव, नग्न दिगम्बर सत थे, वे अन्तर मे आत्मा के प्रचुर आनदरस का स्वाद निरन्तर लेते रहते थे, वन मे निवास करते थे। नौ सौ वर्ष पहले उन्होने यह टीका बनाई है। टीका मे वे कहते है – भगवान आत्मा त्रिकाल चिदानदघन, नित्यानद प्रभु है, इसके आश्रय से - इसके अवलबन से - इसके लक्ष्य से जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप निर्मल मोक्षमार्ग पर्याय प्रगट होती है, वह भावनारूप पर्याय उपशमादि भावत्रयरूप है। यहाँ चौथे, पाँचवे और छठवे गुण-स्थान के क्षायिकभाव की बात है, केवली भगवान के क्षायिक-भाव की बात नही है। चौथे गुणस्थान मे भी क्षायिकसम्यक्त्व प्रगट होता है, उसकी यहाँ बात है।

श्रेणिक राजा को क्षायिक सम्यक्त्व था, उन्होने तीर्थंकर नामकर्म बाधा था, परन्तु पूर्व मे नरकगति की आयु बध गई थी इसलिये योग्यतावश नरक के सयोग मे गये हैं, परन्तु उन्हे राग से भिन्न पूर्णानदस्वरूप निज-परमत्माद्रव्य का अन्दर मे भान है, और साथ मे आनद का वेदन भी है। शोलपाहुड मे आता है कि धर्मी जीव को नरकगति मे भी शील है। अहाहा! जिसने पूर्णानद के नाथ को अन्दर मे खोजकर प्राप्त किया और सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट किया, उसे स्वरूपाचरणरूप स्थिरता भी होती ही है। अपने स्वरूप की श्रद्धा, स्वरूप का ज्ञान और स्वरूप का आचरण – ये तीनो मिलकर शील कहलाते है। शील अर्थात् मात्र शरीर से ब्रह्मचर्य पालना नही है, क्योकि यह तो अकेली राग की क्रिया है, जबकि स्वरूप के श्रद्धान-ज्ञान-चारित्ररूप शील तो राग से भिन्न है। मार्ग तो ऐसा है भाई!

शुभराग मे जितना अशुभराग टला वह शुद्धता है – ऐसा कहना यथार्थ नही है। सम्यग्दर्शन और आत्मा का अनुभव होने के बाद शुभराग आता है, उसमे अशुभराग टलता है। सम्यग्दर्शन के बाद शेष रहने वाले शुभ राग का क्रमश अभाव होते हुए पूर्ण अभाव होने पर मोक्ष प्रगट होता है। शुभराग रहे और मोक्ष प्रगट हो, ऐसा नही बनता। बापू! शुभराग तो बध का ही कारण है।

इन उपशमादि तीनो भावो को समस्त रागादि रहित कहा है। भाई! राग का कोई भी अश मोक्ष का मार्ग नही हो सकता। जिस भाव से तीर्थङ्कर प्रकृति बधती है वह भाव भी राग है और बध का ही कारण है। वह राग उपशम, क्षयोपशम या क्षायिकभावरूप नही है। वह शुभराग है, उदयभाव है, बध परिणाम है, जबकि उपशमादि भावत्रय मोक्षमार्गरूप है, अबधरूप हैं।

देखो, सोलह कारण भावना सम्यग्दृष्टि को ही होती है, अज्ञानी को नही होती। सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा को षोडशकारण भावनाओ का राग आता है, पर वह बध का ही कारण है, वह कोई अबन्ध परिणाम नही। यहाँ तो यह चोखी बात है कि भावत्रयस्वरूप मोक्ष का मार्ग समस्त रागादि से रहित है।

प्रश्न – धर्मी पुरुष के उपशमादिभाव के समय भी राग तो होता है, तो उसे समस्त रागादि रहित कैसे कहा है ?

उत्तर – भाई ! उपशमादि निर्मल भाव तो रागरहित ही है, उस काल मे धर्मी को राग भले हो, पर वह तो उपशमादि से भिन्न उदयभावरूप है, वह राग उपशमादिभावो मे नही समाता। आशिक शुद्धता और आशिक राग दोनो एकसाथ होने पर भी दोनो भिन्न-भिन्न है। वहाँ उपशमादिभाव मोक्ष का कारण है और जो रागाश है, वह बध का ही कारण है, वह मोक्ष का कारण जरा भी नही है। इसप्रकार मोक्ष का कारण जो उपशमादि निर्मल भाव है, वह समस्त रागरहित ही है।

त्रिकालभावरूप शुद्ध-द्रव्य और उसका अवलम्बन करके प्रगट होने वाली भावनारूप परिणति – ये दोनो शुद्ध है, पवित्र है। जैसे त्रिकाली ध्रुव आत्मद्रव्य मे राग नही है, वैसे उसमे झुकी हुई परिणति मे भी राग नही है। अहा ! जिसमे शुद्ध चैतन्यभाव का भवन (परिणमन) हुआ हो, शुद्धात्मा की ऐसी भावना परम अमृतस्वरूप है। ऐसी भावनारूप परिणति चौथे गुणस्थान से शुरू होती है। उपशमादि तीनो भाव चौथे गुणस्थान मे भी होते है। सम्यक्त्व प्रगट होने के काल मे तथा उसके बाद भी जितनी शुद्ध परिणति हुई है, उसका नाम "भावना" है और वह मोक्ष का साधन है।

जो लोग कहते है कि, चौथे गुणस्थान मे शुद्धोपयोग होता ही नही, उन्हे सम्यक्त्व क्या चीज है ? भगवान का मार्ग क्या है – इसकी खबर ही नही है। भाई ! शुद्धोपयोग बिना अकेले राग से तू मोक्षमार्ग मान ले परन्तु, वह वीतराग का मार्ग नही है। चौथे गुणस्थान मे उपशम सम्यग्दर्शन शुद्धोपयोगपूर्वक ही होता है - यह सिद्धान्त है। शुभराग द्वारा सम्यग्दर्शन हो – ऐसा कभी होता ही नही। शुद्धात्मभावना शुद्धद्रव्य का अवलबन करने वाली है, राग का नही। राग मे ये ताकत नही कि वह शुद्ध द्रव्य को भा सके। राग की मन्दता द्वारा अन्त प्रवेश करना शक्य ही नही तो उससे सम्यग्दर्शनादि कैसे हो सकता है ? नही हो सकता। भाई ! वीतराग का मार्ग तो रागरहित ही है।

भगवान आत्मा निजस्वरूप प्रभु है। आता है न कि–

जिन सो ही है आत्मा, अन्य सो ही है कर्म।
इसी वचन से समझले, जिन प्रवचन का मर्म।।

यह आत्मा सदा जिनस्वरूप - वीतरागस्वरूप - परमात्मस्वरूप ही है। यदि आत्मा स्वय वीतरागस्वरूप न हो तो पर्याय मे वीतरागता आएगी कहाँ से ? भगवान अरहन्तदेव को वीतरागता और केवलज्ञान प्रगट हुआ, वह शुद्धात्मभावना की पूर्णता द्वारा प्रगट हुआ है। मोक्षमार्ग रूप शुद्धात्मभावना समस्त रागादि से रहित है, राग का – विकल्प का अश भी इसमे नही समाता।

देखो, यह सस्कृत टीका नौ सौ वर्ष पहले श्री जयसेनाचार्यदेव ने रची है। इसमे ऐसी चोखी बात की है कि तीनभाव रूप शुद्धात्म भावना समस्त रागादि रहित होने के कारण शुद्ध-उपादान कारणभूत होने से मोक्ष का कारण है। भाई ! चौथे गुणस्थान मे भी जो निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का परिणाम

प्रगट हुआ है, वह रागादि रहित परिणाम है। यह तो जिनेश्वर-जिनचन्द भगवान सर्वज्ञ परमात्मा के घर की बात है। बापू श्री सीमन्धर परमात्मा महाविदेह क्षेत्र मे तीर्थङ्कर पद मे वर्तमान मे विराजते है, उनकी दिव्यध्वनि के सार रूप यह बात है। अहो ! दिगम्बर सन्तो ने इसमे तो केवलज्ञान का कक्का (प्रारम्भिक उपाय) बताया है।

यहाँ कहते है – यह भावना जो तीनभावरूप है वह समस्त रागादि रहित होने के कारण शुद्ध-उपादान कारणभूत होने से मोक्ष का कारण है। यहाँ पर्यायरूप शुद्ध-उपादान की बात है। त्रिकाली शुद्ध-उपादान कि जो शुद्ध-द्रव्यार्थिकनय का विषय है, उसकी बात तो पहले आ गई है। यहाँ पर्याय के शुद्ध-उपादान की बात है।

उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक – ये तीनो वीतरागी निर्मल पर्याये है। वह वीतरागी पर्याय समस्त रागादि से रहित शुद्ध-उपादान कारणभूत है, इसलिए मोक्ष का कारण है। अहा ! निर्मल पर्याय स्वय ही शुद्ध-उपादान कारणभूत है। क्या कहा ? यह पर्याय स्वय ही स्वय का उपादान कारण है। अहो ! यह तो कोई अलौकिक शैली से बात है। ऐसी बात भगवान केवली के मार्ग के सिवा अन्यत्र कही नही है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप निर्मल पर्याय का विषय त्रिकाली द्रव्य है। वर्तमान भावनारूप जो निर्मल पर्याय वह शुद्ध त्रिकाली को अवलबती है। धर्म की दशा और मोक्ष की दशा शुद्ध पारिणामिकभावस्वरूप त्रिकाली (द्रव्य) का अवलबन करती है, वह राग का अवलबन नही करती तथा वर्तमान पर्याय का भी अवलबन नही करती। निर्मल पर्याय का विषय पर्याय नही है। सम्यग्दर्शन की पर्याय त्रिकाली को अवलबती हुई अपने षट्कारक से स्वतत्रपने प्रगट होती है। यह तो अनुपम

अमृत है भाई ! अहो ! आचार्यदेव ने इस पचमकाल मे अमृत बरसाया है।

देखो, नियमसार मे आचार्यदेव ने ऐसा कहा है कि, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिकभाव जो निर्मल वीतरागी धर्म की पर्याय है, उसे हम परद्रव्य कहते है। अहाहा ! वह परभाव है, परद्रव्य है और इसलिये हेय है – ऐसा वहाँ कहा है। क्या कहा ? व्यवहार-रत्नत्रय का राग तो हेय है ही, पर शुद्ध आत्म-द्रव्य की दृष्टि होने पर जिसमे अतीन्द्रिय आनद का स्वाद आता है, वह मोक्षमार्ग की निर्मल पर्याय भी त्रिकाली द्रव्य की दृष्टि से परभाव है, परद्रव्य है और इसलिये हेय है, अर्थात् वह पर्याय भी अवलबन योग्य नही है। अहाहा ! निर्मल पर्याय को उस पर्याय का अवलबन नही है। जैसे राग आश्रय योग्य नही है, वैसे निर्मल पर्याय भी आश्रय योग्य नही है।

अरे भाई ! तू दुखी होकर चारगति मे रखडता हुआ जन्म-मरण कर रहा है। चारो गतियो मे तुझे जो मिथ्यात्व का भाव हुआ वह ससार है, अन्य वस्तु, स्त्री-पुत्र, कुटुम्ब-कबीला वगैरह कोई ससार नही है। राग के साथ एकत्वबुद्धि रूप मिथ्यात्व का भाव ही ससार है। बापू ! तूने स्त्री-पुत्र, छोडे, दूकान वगैरह छोडी, इसलिये ससार छोडा – ऐसा तू मानता है, पर यह मान्यता मिथ्या है। मिथ्यात्व के छोडे बिना ससार कभी छूटता ही नही है। ऐसे तो अनतकाल मे अनतबार नग्न दिगम्बर मुनि हुआ, पर इससे क्या ? छहढाला मे आता है–

मुनिव्रत धार अनतबार, ग्रीवक उपजायो।
पै निज आतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायो।

ऐसी बात कडक लगती है, इसलिये लोग विरोध करते है, पर भाई ! तीन काल मे कभी फिरे नही ऐसी यह परम

सत्य बात है। विरोध करो तो करो, पर तेरे ऐसे परिणाम से तुझे बहुत नुकसान होगा।

व्यवहार-रत्नत्रय मोक्षमार्ग है ही नही, वास्तव मे वह बध का ही कारण है। मोक्षमार्ग दो नही, इसका निरूपण दो प्रकार से है। निश्चय से मोक्ष का मार्ग तो समस्त रागादि से रहित है और वह शुद्ध-उपादानकारणभूत है। राग मोक्षमार्ग भी नही, और उसका कारण भी नही है।

समाधितन्त्र श्लोक ९१ के विशेष अर्थ मे लिखा है कि निमित्त होने पर भी, निमित्त से निरपेक्ष उपादान का परिणमन होता है। जयधवल पृष्ठ ११७, पुस्तक सात मे लिखा है—

वज्झकारण-निरपेक्खो वत्थुपरिणामो।

वस्तु का परिणाम बाह्य कारण से निरपेक्ष होता है। यहाँ यह बात समझने के लिये दृष्टान्त देते हैं।

देखो, दशमे गुणस्थान मे लोभ का परिणाम एक है, तो भी कर्मो की स्थिति मे फेर पडता है। निमित्तरूप से लाभ का एक ही परिणाम होने पर भी किसी कर्म की स्थिति आठ मुहूर्त की और किसी की स्थिति अन्तरमुहूर्त की पडती है। इसका कारण क्या? नीचे के गुणस्थानो मे भी ऐसा है, यहाँ तो लोभ के अन्तिम परिणाम की बात करते है। लोभ का एक ही परिणाम निमित्त कारण होने पर भी कर्म के स्थितिबन्ध मे फेर पडता है। नाम और गोत्रकर्म की स्थिति आठ मुहूर्त की बन्धती है, जबकि ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्म की स्थिति का बन्ध अन्तरमुहूर्त का पडता है। ऐसा क्यो? तो कहते हैं—वह स्थितिबन्ध की पर्याय स्वतन्त्र है, उसे कोई बाह्य कारण की अपेक्षा नही है अर्थात् वस्तु का परिणाम बाह्य कारण से निरपेक्ष होता है।

हम तो यह बात बहुत समय से कहते है। किसी कर्म की प्रकृति मे परमाणु कम आते है, तो किसी कर्म की प्रकृति मे परमाणु अधिक आते है। वहाँ मिथ्यात्व और रागादि परिणाम तो एक ही है, तो भी ऐसा बनता है, उसका क्या ? बस यही कि वस्तु के परिणाम बाह्य कारण से निरपेक्ष है। प्रत्येक कार्य अतरग कारण से ही होता है, उसे बाह्य कारणो की अपेक्षा है ही नही। अहाहा! मोक्ष का मार्ग जो अदर प्रगट होता है उसे बाह्य कारण की – व्यवहाररत्नत्रय की कोई अपेक्षा नही, मोक्षमार्ग की पर्याय शुद्धउपादानकारणभूत है। अहो! सर्वज्ञ के मार्गपर चलनेवालो ने सर्वज्ञ होने की ऐसी अलौकिक बात की है। जिसका परम भाग्य हो उसे यह बात सुनने मिलती है।

अहाहा! शुद्ध एक ज्ञायकस्वभाव को अवलबने वाली भावना रागादि रहित होने से शुद्ध उपादान कारणभूत होने से मोक्ष के कारणरूप है। उस भावना को बाह्य कारण की – व्यवहारकारण की अपेक्षा नही है। यह बात सुनकर केवल व्यवहार के पक्षवाले कहते है – निश्चय और व्यवहार – ऐसे दो मोक्षमार्ग हैं।

अरे भाई! तुझे खबर नही भगवान। निश्चय मोक्ष-मार्ग एक ही सत्यार्थ मोक्षमार्ग है, व्यवहार मोक्षमार्ग वास्तविक मार्ग नही, वह तो उपचारमात्र है। वास्तव मे तो वह राग है, बध का कारण है। व्यवहारमोक्षमार्ग को ही सत्यार्थ मोक्षमार्ग मानकर अनंतकाल से तू रखड़ने के मार्ग पर चढ गया है। मार्ग का यथार्थ स्वरूप समझे बिना एकेन्द्रिय आदि मे अनत – अनत अवतार धारण करके तू हैरान हो गया, हे प्रभु!

विक्रम सम्बत् १९८० में एकवार वोटाद मे हमने व्याख्यान मे कहा था कि जिस भाव से तीर्थङ्कर गोत्र ववता है वह भाव भी धर्म नही है – यह बात स्वीकार करना बहुत कठिन है तो भी लोग सुनते थे, क्योकि उन्हे हमारे ऊपर विश्वास था। उस समय व्याख्यान मे पंद्रहसौ – पद्रहसौ लोग आते थे। तब हम स्थानकवासी सम्प्रदाय मे थे। इस देह की उम्र कम थी। वाहर मे नाम बहुत प्रसिद्ध था न ? इसलिए हजारो लोग आते थे। तव हमने यह वात कही थी कि तीर्थङ्कर प्रकृति का बंध सम्यग्दृष्टि को ही होता है, अज्ञानी को नही होता, तो भी तीर्थङ्कर प्रकृति का कारणभूत परिणाम धर्म नही है। अहाहा ! जिस भाव से बध हो, वह भाव धर्म या धर्म का कारण कैसे हो सकता है ? नही हो सकता। भाई ! मुनिराज को होनेवाला पंचमहाव्रत का परिणाम राग है, इसलिए वह आस्रवभाव है, बंध का कारण है। यह बात सुनकर बहुत से लोगो को खलबलाहट हो जाती है, पर भाई ! यह त्रिलोकनाथ जैन परमेश्वर की वाणी मे आई हुई परम सत्य बात है।

ज्ञानी को शुभभाव आता जरूर है, जिसे आत्मज्ञान और स्वानुभव प्रगट हुआ है, उसे क्रम से आगे बढाते हुए बीच में यथायोग्य शुभभाव आता है, पर इससे धर्म होता है – ऐसा नही है। धर्म तो रागरहित शुद्धउपादानकारणभूत है। शुभ-भाव छोड़कर अन्दर आत्मानुभव मे स्थिरता हो, तब आगे-आगे के गुणस्थान प्रगट होते है। साधक को बीच में भूमिका योग्य व्यवहार आता जरूर है, पर उसके लिए वह हेय है।

नियमसार मे तो मोक्षमार्ग की पर्याय को भी कहा है, क्योंकि वह आश्रय योग्य नही है। वस्तुस्थिति ही ऐसी है वापू, किसी की कल्पना से वस्तुस्थिति नही बदलती। अहाहा !

चिदानदघन प्रभु अन्दर त्रिकाली सत्‌वस्तु है, उसके लक्ष्य से — उसके आश्रय से — उसके अवलबन से जो शुद्धात्मभावना प्रगट होती है, वह सर्वथा रागरहित है और शुद्धउपादानकारणभूत है। यह बात सप्रदाय बुद्धिवालो को (पक्षवालो को) कठिन पडती है, पर क्या करे ? फिर भी अब तो लाखो लोग इस बात को समझने लगे हैं।

जिसे यह बात नही बैठती वे कहते हैं कि, व्रत लो, प्रतिमा धारण करो, इससे धर्म हो जायेगा। पर भाई! सम्यग्दर्शन बिना प्रतिमा होगी कहाँ से ? अभी सम्यक्त्व दशा कैसी होती है, और वह कैसे प्रगटे ? जिसे इसकी भी खबर नही, उसे प्रतिमा कैसी ? उसे व्रत कैसे ? यहाँ तो एकदम सच्ची बात है कि मोक्षमार्ग की भावनारूप पर्याय रागरहित शुद्ध-उपादानकारणभूत है अर्थात् वह प्रतिमा आदि की अपेक्षा रहित है।

कुछ लोग कहते है — कार्य उपादान से भी होता है और निमित्त से भी होता है, परन्तु भाई! यह बात यथार्थ नही है। दो कारणो से कार्य होता है — ऐसा शास्त्र मे आता है। निमित्त का ज्ञान कराने के लिये उपचार से दूसरी चीज को कारण कहा है, पर वह सत्यार्थ कारण नही है, सत्यार्थ कारण तो एक उपादान कारण है। इसप्रकार मोक्ष का मार्ग और उसका कारण एक ही प्रकार का है।

चिद्‌विलास मे प दीपचदजी ने बहुत सरस बात कही है। वे कहते हैं — पर्याय का कारण पर्याय ही है। गुण बिना ही (गुण की अपेक्षा बिना ही) पर्याय की सत्ता पर्याय का कारण है, पर्याय का प्रदेशत्व पर्याय का कारण है। जिन प्रदेशो मे पर्याय उत्पन्न होती है, वे प्रदेश पर्याय के कारण हैं, ध्रुव के प्रदेश नही।

देखो, आत्मा के पांच भावो में कौन सा भाव मोक्ष का कारण है ? यह बात चलती है। एक शुद्ध चैतन्य स्वभाव की भावना से प्रगट हुए औपशमिकादि तीन भाव मोक्ष के कारण है, और वे तीनों भाव रागादि रहित शुद्ध है। राग औदयिक भाव है और वह मोक्ष का कारण नही है। इसप्रकार अस्ति – नास्तिरूप मोक्षमार्ग का स्वरूप कहा। ऐसे मोक्षमार्ग की शुरुआत चौथे गुणस्थान से होतो है। शुद्ध-आत्मद्रव्य का अवलवन चौथे गुणस्थान से ही शुरु होता है। वहाँ जितना शुद्धात्मा का अवलंवन है, उतनी शुद्धता है और उस शुद्धता को ही उपशमादि भावत्रय कहते हैं। उदयभाव – रागभाव तो इससे बाहर ही है।

प्रश्न – परन्तु उपशमादि भावों के काल में राग होता है न ?

उत्तर – हाँ, होता है न ? उस काल में राग हो, पर इससे क्या ? सारी दुनिया है, पर जिसप्रकार ज्ञान इनसे जुदा है और इनका कर्त्ता नहीं है, उसीप्रकार ज्ञान राग का भी कर्त्ता नही और भोक्ता नही है, मात्र जानता ही है। भाई ! समकिती (सम्यग्दृष्टि) के सम्यक्त्वादि निर्मल भाव राग से मुक्त ही हैं, भिन्न ही हैं। अहो। भगवान आत्मा तो राग से भिन्न है ही, और परिणति स्वाभिमुख हुई तो वह भी राग से भिन्न ही हुई। भाई ! राग, राग में हो, पर राग ज्ञान में नही है, क्योंकि ज्ञान ने राग को ग्रहण ही नही किया। राग ज्ञान मे जाना गया है, परन्तु मैं राग रूप हूँ इसप्रकार ज्ञान ने राग को पकड़ा नही है। मैं तो ज्ञान हूँ – इसप्रकार ज्ञान अपने को ज्ञानरूप ही वेदता है। ऐसे वेदन के साथ में आनंद है, पर इसमें राग नहीं है।

अरे जीव ! मोक्ष के कारणरूप तेरी निर्मलदशा कैसी होती है, उसे देख तो सही ! स्वरूप सपदा को देखनेपर वह प्रगट होती है। मोक्ष के कारणरूप वह दशा –

१ एक शुद्ध परम स्वभाव भाव का ही अवलबन करनेवाली है, पर का और राग का अबलबन करने वाली नही है।

२ देह, मन, वचन आदि जगत के सर्व अन्य पदार्थों से भिन्न है।

३ पुण्य-पाप आदि भावकर्म से भी भिन्न है। उसमें राग का एक कण भी नही समाता।

४. शुद्ध-उपादान कारणभूत है।

अहा ! मोक्ष के कारणरूप वह दशा स्वरूप के श्रद्धान – ज्ञान – रमणता आदि निज भावो से भरपूर है। समकिती की स्वावलवन से प्रगटी चैतन्यसपदा के आगे जगत की जडसपदा की कुछ कीमत नही है, क्योकि पुण्य के अधीन यह सम्पदा परम – सुखमय मोक्ष देने मे समर्थ नही है।

बापू ! वीतराग का मार्ग राग से सदा ही भिन्न है। चौथे गुणस्थान मे शुद्धता का जो अल्प अश प्रगट हुआ, उसमे भी राग का अभाव ही है। शुद्धता मे राग नही और राग मे शुद्धता नही, दोनो की जाति भिन्न है। सम्यग्दृष्टि के द्रव्य में राग नही, गुण मे राग नही, और जो निर्मल परिणति हुई उसमे भी राग नही है। इसप्रकार उसके द्रव्य-गुण-पर्याय तीनो ही रागरहित शुद्ध वर्तते है। अभेद एक "शुद्ध" की भावना से उन्हे शुद्धता का परिणमन हुआ करता है ऐसी शुद्धता की पूर्णता होना मोक्ष है, और आशिक शुद्धता मोक्षमार्ग है। श्रीमद् ने कहा है –

"मोक्ष कह्यो निज शुद्धता, ते पामे ते पंथ"

आत्मा की शुद्धता को मोक्ष कहा है. उसे प्राप्त करना ही मोक्ष का मार्ग है। इसप्रकार कारण – कार्य एक जाति के ही होते है। शुभराग कारण होकर अशुद्ध कार्य को ही करता है, पर वह शुद्ध कार्य को करे – ऐसा कभी नही होता। शुद्ध कार्य का कारण तो शुद्ध ही होता है, रागरहित ही होता है। ऐसा वस्तुस्वरूप होने पर भी कोई बाह्य मे होनेवाली जड़ की क्रियाओ को मोक्ष का कारण माने तो यह उसकी निरी मूढता ही है।

समकिती को स्व-आश्रय से जितनी शुद्ध-उपादानरूप परिणति हुई है उतना मोक्ष का कारण है। ध्रुवभावरूप, अक्रिय त्रिकाली शुद्ध-द्रव्य मोक्ष का कारण नही होता, तथा शुद्ध-द्रव्य से विमुखरूप वर्तते भाव भी मोक्ष के कारण नही होते, शुद्ध-द्रव्य के सन्मुख होकर वर्तते निर्मलभाव ही मोक्ष के कारण होते है। इसप्रकार यहाँ पर्याय में कारण-कार्यपना कहा है। ऐसे तो उस-उस समय की पर्याय अपने-अपने समय में शुद्ध-द्रव्य का अवलम्बन करके स्वय पूर्ण शुद्धरूप से प्रगट होती है, वह पूर्व पर्याय मे से नही आती। पर पूर्व में इतनी शुद्धि-पूर्वक ही पूर्ण शुद्धता होती है इसलिये उनमे कारण-कार्यपना कहा, और उनसे विरुद्ध भावों का निषेध किया है। इसप्रकार किस भाव से मोक्ष साधा जाता है – यह बताया है।

औपशमिकादि भावत्रयरूप शुद्धात्मभावना मोक्ष का कारण है, परन्तु शुद्ध-पारिणामिकभाव मोक्ष का कारण नही है। यह बनिया माल लेने जाता है तो बुद्धि का प्रयोग करता है, मोल भाव कर करके माल खरीदता है, पर यहाँ धर्म की बात आए तो उसमे "जयनारायण" करे, हाँजी हाँ करे, यहाँ बुद्धि का प्रयोग नही करता। पर भाई ! यह तो त्रिलोकनाथ

जैन परमेश्वर सर्वज्ञदेव की वाणी है। अहा! जिनकी सभा में इन्द्र, मुनिराज और गणधर विराजते हो, नाग और बाघ भी जिनकी वाणी सुनते हों वह वाणी कैसी होगी बापू! दया करो, व्रत पालो, भक्ति करो – ऐसी बातें तो कुंभार भी करते है, इसमे क्या नया है? पचास वर्ष पहले तो ऐसा रिवाज था कि श्रावणमास मे कुँभार अवा लगाना बन्द कर देता था, तेली घानी नही पेलता था। पर भाई! यह धर्मरूप परिणाम नही है।

मोक्ष का मार्गरूप निर्मल रत्नत्रय मोक्ष का कारण है, परन्तु त्रिकाली शुद्ध-द्रव्य मोक्ष का कारण नही है। अहाहा! चिदानन्दघन प्रभु भगवान आत्मा, जिसे कारण जीव, कारण परमात्मा कहते है, वह मोक्ष का कारण नही है। भाई जहाँ जिस पद्धति से बात हो, वहाँ उसे यथार्थ समझना चाहिए। यदि त्रिकाली भावरूप कारण परमात्मा मोक्ष का कारण हो तो मोक्षरूप कार्य सदा ही होना चाहिये, क्योकि द्रव्य तो सदैव विद्यमान है। परन्तु मोक्षरूप कार्य तो नया प्रगट होता है, इसलिये उसका कारण त्रिकाली शुद्ध-द्रव्य नही, परन्तु पर्याय है। अहाहा! कारण परमात्म द्रव्य सदा ही शुद्ध है, इसका भान करके पर्याय जब इसकी भावनारूप परिणमी, इसमे एकाकार होकर परिणमी, तब वह शुद्ध होकर मोक्ष का कारण हुई। इसप्रकार मोक्ष का कारण पर्याय है, शुद्ध द्रव्य नही।

प्रश्न – आप कहते है कि कारण-परमात्मा अनादि से विद्यमान है, तो उसका कार्य क्यो नही होता? कारण है तो उसका कार्य होना चाहिए न?

समाधान – कारण परमात्मा तो त्रिकाल सत् है। पर तूने इसका अस्तित्व कहाँ माना है? इसे स्वीकार किये बिना पर्याय मे इसका कार्य कहाँ से होगा? जब पर्याय स्वाभिमुख

होकर वर्तती है, तब इसका कार्य आता ही है। कार्य तो पर्याय में आता है, परन्तु स्वाभिमुख हो तब। इसप्रकार स्वाभिमुख पर्याय मोक्ष का कारण होती है, त्रिकाली शुद्ध-द्रव्य नही, क्योकि द्रव्य तो अक्रिय – अपरिणामी है।

इसप्रकार मोक्ष का कारण दर्शाकर अब शक्तिरूप और व्यक्तिरूप मोक्ष की चर्चा करते है।

"जो शक्तिरूप मोक्ष है वह तो शुद्ध पारिणामिक है, वह प्रथम से ही विद्यमान है। यह तो व्यक्तिरूप मोक्ष का विचार चलता है।"

भगवान आत्मा शुद्ध शक्तिरूप त्रिकाल मोक्षस्वरूप अबधस्वरूप है। समयसार गाथा १४-१५ मे आत्मा को "अबद्धस्पृष्ट" कहा है। अबद्ध कहो या मुक्त कहो, एक ही बात है। भगवान आत्मा तो शक्तिरूप से, स्वभाव से त्रिकाल मोक्षस्वरूप प्रथम से ही विद्यमान है। इसका मोक्ष करना है – ऐसा नही है, यह त्रिकाल मोक्षस्वरूप ही है, प्रथम से ही मोक्षस्वरूप है।

पन्द्रहवी गाथा में कहा है – जो कोई आत्मा को अबद्ध-स्पृष्ट देखता है वह सकल जिनशासन को देखता है। देखो, यह जैनधर्म ! भगवान आत्मा राग और कर्म के सबध से रहित अबद्धस्पृष्ट है। ऐसे शुद्ध चिदानद भगवान का जिसने अन्तर्मुख होकर अनुभव किया, वह सर्व जिनशासन को देखता है। वह जिनशासन बाह्य में द्रव्यश्रुत तथा अभ्यन्तर में ज्ञानरूप भाव-श्रुतवाला है अहा ! जिस पुरुष ने निज शुद्धोपयोग मे आत्मा-नुभव करके मोक्षमार्ग प्रगट किया उसने सकल जिनशासन देखा। यह जिनशासन एक वीतराग भावरूप है।

वीतरागी सत, मुनिवर श्री जयसेनाचार्यदेव कहते है – मोक्ष के दो प्रकार है – एक शक्तिरूप मोक्ष और दूसरा व्यक्ति-

रूप मोक्ष। पर्याय मे परिणमन होकर आत्मा का व्यक्तिरूप मे पूर्ण लाभ प्राप्त होना व्यक्तिरूप मोक्ष है और शुद्ध-पारिणामिक स्वभावरूप वस्तु त्रिकाल शक्तिरूप मोक्ष है। त्रिकाल परम स्वभाव भावरूप जो शक्तिरूप मोक्ष है, उसमे मोक्ष करना है – ऐसा नही है, क्योकि वह तो प्रथम से ही मोक्षस्वरूप है और उसका आश्रय करके परिपूर्ण स्वभावरूप प्रगट होने वाली पर्याय व्यक्तिरूप मोक्ष है। भाई ! फुरसत निकालकर इस तत्त्व का परिचय करना चाहिए, यह तो वीतराग का मार्ग है बापू !

यहाँ कहते है – त्रिकाल शुद्ध – पारिणामिकभाव शक्तिरूप मोक्ष है, वह प्रथम से ही विद्यमान है। यहाँ तो व्यक्तिरूप मोक्ष का विचार चलता है। अहा ! अनतज्ञान, अनतदर्शन, अनतसुख और अनतवीर्य – ऐसा अनत चतुष्टय व्यक्तिरूप मोक्ष है और वह मोक्षमार्ग की पर्याय से प्राप्त होता है। यह मोक्ष, द्रव्य से प्राप्त नही होता – ऐसा यहाँ कहना है। यह बात दुनियाँ को नही रुचेगी, परन्तु भाई ! पर्याय मे जो मोक्ष होता है वह मोक्षमार्ग के कारण से होता है, जैसे पर-पदार्थ उसका कारण नही है, वैसे त्रिकाली द्रव्य भी उसका कारण नही है। वास्तव मे तो उस – उस पर्याय का शुद्ध-उपादान ही उस पर्याय का कारण है।

यहाँ मोक्षमार्ग की पर्याय को मोक्ष का कारण कहा है, यह बात भी किसी अपेक्षा से है। मोक्षमार्ग की पर्याय का व्यय होकर मोक्ष की पर्याय प्रगट होती है – इस अपेक्षा से उसे मोक्ष का कारण कहा है।

अहो ! आचार्यदेव ने आत्मा का त्रिकाली ध्रुवस्वभाव और इसके आश्रय से प्रगट होने वाला मोक्षमार्ग समझाकर अतर का खजाना खोल दिया है। हे भाई ! तेरा चैतन्य खजाना अदर मोक्षस्वभाव से भरपूर है। इसमें अन्दर उतर कर जितना

चाहिये उतना निकाल, सम्यग्दर्शन निकाल, सम्यग्ज्ञान निकाल, सम्यक्चारित्र निकाल, केवलज्ञान निकाल और मोक्ष निकाल। अहाहा ! सदाकाल इसमे से पूर्ण ज्ञान और आनन्द लिया ही कर, तेरा खजाना घटे – ऐसा नही है। तेरा आत्मद्रव्य अविनाशी अनन्त गुणो से भरा हुआ सदा मोक्षस्वरूप ही है। ऐसे निज स्वभाव का ज्ञान-श्रद्धान हुआ उसे मोक्ष प्रगट होने मे क्या देर है ? जिसने अन्तर मे शक्तिरूप मोक्ष देखा उसे मोक्ष का भणकार आ गया और उसे अल्पकाल मे ही व्यक्तिरूप मोक्ष होता है। वस्तु अर्थात् ध्रुव आत्मद्रव्य शक्तिरूप मोक्ष त्रिकाल है, और उसके आश्रय से व्यक्तिरूप मोक्ष नया प्रगट होता है। पर्याय में मिथ्यात्व हो या सम्यक्त्व हो, बन्धन हो या मोक्ष हो, द्रव्यस्वभाव तो त्रिकाल मोक्षस्वरूप ही है, उसमे बन्धन नही, आवरण नही, अशुद्धता नही और अल्पज्ञता भी नही है। अहाहा ! वस्तु तो सदा परिपूर्ण ज्ञानघन, आनन्दघन मोक्षस्वरूप ही है। ऐसे निजस्वभाव का अन्तर्मुख होकर भान करने वाले की पर्याय मे बन्धन टलकर पूर्ण शुद्ध मोक्षदशा प्रगट होने लगती है। अहो ! मोक्ष का मार्ग ऐसा अलौकिक है और इसका नाम धर्म है।

अब कहते है – **"इसीप्रकार सिद्धान्त में कहा है कि "निष्क्रिय शुद्ध पारिणामिकः" अर्थात् शुद्ध-पारिणामिक (भाव) निष्क्रिय है "**

देखो, यह विशेष स्पष्ट करते है कि पारिणामिक ध्रुव स्वभावभाव मोक्ष का कारण नही है क्योकि वह निष्क्रिय है। अहाहा ! शुद्ध-पारिणामिक शुद्ध चेतना मात्र वस्तु मे दृष्टि पडने पर जो निर्मल परिणमन होता है वह मोक्ष का कारण है, परन्तु शुद्ध पारिणामिक वस्तु मोक्ष का कारण नही है, क्योकि वह उत्पाद-व्यय रहित निष्क्रिय चीज है। इसमे बन्ध-

मार्ग या मोक्षमार्ग की क्रियाये नही होती, ऐसी वह निष्क्रिय चीज है। यह बात सूक्ष्म है भाई!

परमार्थ वचनिका मे प० श्री बनारसीदासजी ने कहा है कि "मोक्षमार्ग साधना व्यवहार और शुद्ध द्रव्य अक्रियरूप वह निश्चय है।" तथा अन्त मे वहाँ कहा है कि "यह वचनिका यथायोग्य सुमतिप्रमाण केवली वचनानुसार है। जो जीव यह सुनेगा, समझेगा, श्रद्धेगा उसे भाग्यानुसार कल्याणकारी होगी।"

देखो, इसमे क्या कहा ? कि मोक्षमार्ग साधना व्यवहार है। यह शुभराग रूप व्यवहार मोक्षमार्ग व्यवहार है — ऐसा नही कहा। भाई! व्यवहार मोक्षमार्ग तो मार्ग ही नही है, यह तो उपचारमात्र, कथनमात्र है, वास्तव मे तो यह राग-रूप होने से बन्धरूप ही है। यह तो सर्वज्ञ परमात्मा से सिद्ध हुई बात है, यह कोई कल्पना की बात नही है।

"मोक्षमार्ग साधना वह व्यवहार, और शुद्ध द्रव्य अक्रिय वह निश्चय।" इसमे शुद्ध द्रव्य को अक्रिय कहा है। अहा! वस्तु त्रिकाली नित्यानन्द ध्रुव प्रभु है, वह अक्रिय है। जिसमे मोक्षमार्ग की अथवा मोक्ष की पर्याय भी नही — ऐसी त्रिकाली ध्रुव वस्तु अक्रिय है। इसे अक्रिय कहो या निष्क्रिय कहो — एक ही बात है।

त्रिकाली द्रव्य सदा ध्रुव निष्क्रिय तत्त्व है। तथापि उसमे दृष्टि करने से, उसका आश्रय करके परिणमित होने से, शुद्ध अरागी — वीतरागी परिणमन होता है, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहते है। वह मोक्ष का मार्ग है। ऐसा मोक्षमार्ग साधना व्यवहार है। यह धर्मी का व्यवहार और धर्मी की क्रिया है। धर्मात्मा निर्मलरत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग को साधता है, वह कही व्यवहार-रत्नत्रय को (रागको) नही साधता।

अरे ! यह जीव चौरासी लाख योनियों मे दु खी होकर भटक रहा है। कोई शुभभाव हो जाये तो पुण्योदयवश वह एकेन्द्रिय पर्याय से बाहर त्रसपर्याय मे आता है। एकेन्द्रिय पर्याय मे भी जीव को क्षण मे शुभ और क्षण मे अशुभ भाव निरन्तर हुआ करता है, पर मनुष्यगति मे आवे – ऐसा शुभ-भाव नही होता। मनुष्यपने मे आये – ऐसा शुभभाव जीव को कभी-कभी होता है। भाई ! पुण्योदयवश तुझे मनुष्यपना मिला है। यदि इस अवसर में निज अन्त तत्त्व मोक्षस्वरूप आत्मवस्तु मे जाये तो सम्यग्दर्शन हो, सम्यग्ज्ञान हो, सम्यक्चारित्र हो, मोक्षमार्ग हो। पर अन्दर न जाये तो ? तो वह अवसर तो चला जा रहा है और एकेन्द्रिय पर्याय से बाहर आये हुए अन्य जीव जैसे एकेन्द्रियादि मे चले जाते है वैसे तू भी एकेन्द्रियादि में चला जायेगा। छहढाला मे आता है न –

जो विमानवासी हूँ थाय, सम्यग्दर्शन बिन दुःख पाय।
तहतैं चय थावर तन धरै, यों परिवर्तन पूरे करै ॥

लोग तो बाह्य व्यवहार की– राग की (जड) क्रियाओ मे धर्म मानते है और मनवाते है। एकबार खाना या उपवास करना, वह तपस्या है और वह तपस्या मोक्ष का कारण है – ऐसी मान्यता जगत मे चलती है। अरे भगवान् ! यह तू क्या करता है ? तूने पूरा मार्ग विपरीत कर दिया प्रभु ! यहाँ तो दिगम्बर सन्त पुकार करके कहते है कि त्रिकाली सहजानद-स्वरूप अक्रिय आत्मवस्तु वह निश्चय है और उसके अवलम्बन से निर्मल परिणमनरूप मोक्षमार्ग साधना वह व्यवहार है। अहाहा ! अक्रिय शुद्ध द्रव्य वह निश्चय और उसके आश्रय से मोक्षमार्ग साधना वह व्यवहार है। जैसी वस्तु है वैसी समझना पडेगी। बाहर के जवाहरात आदि के धन्धे कुछ काम आनेवाले नही है। उलटे इनकी एकत्वबुद्धि से परिणमित होने से कौआ,

कुत्ता आदि की पर्यायो मे ससार-समुद्र मे गोता खाता हुआ डूब मरेगा।

कितने ही लोग कहते है कि आप किसी के साथ बात-चीत (वाद) क्यो नही करते ? क्या आपको यह मतभेद खडा रखना है ?

अरे भाई ! तू यह क्या कहता है ? बापू ! यह अध्यात्म की बात वाद-विवाद करने से समझ मे आये – ऐसी नही है। यह तो अन्तर परिणमन से समझ मे आनेवाली चीज है। देखो न, समयसार गाथा ११ के भावार्थ मे प० श्री जयचन्दजी ने कैसा सरस स्पष्टीकरण किया है –

१ प्राणियो को भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादि-काल से ही है।

२ और इसका उपदेश बहुध सर्व प्राणी परस्पर करते है।

३ जिनवाणी मे व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का हस्तावलब (सहायक) जानकर बहुत किया है।

४ पर, इसका फल ससार ही है।

व्यवहार करते-करते निश्चय होगा – ऐसा व्यवहार का पक्ष तो जीवो की अनादि से ही है। एक दूसरे को इसका उपदेश भी करते हैं कि व्रत, तप, दान, भक्ति, पूजा इत्यादि करो – इससे परपरा मोक्ष होगा, तथा शास्त्रो मे भी शुद्ध – नय का हस्तावलम्ब जानकर व्यवहार का उपदेश बहुत किया है, पर भाई ! इसका फल ससार ही है। तथा वहाँ कहा है –

१ शुद्ध-नय का पक्ष तो कभी आया नही।

२ और इसका उपदेश भी विरल है, कही-कही आया है।

३ इसलिये उपकारी श्रीगुरु ने शुद्ध-नय के ग्रहण का फल मोक्ष जानकर इसका उपदेश प्रधानता से दिया है कि –

शुद्ध-नय भूतार्थ है, सत्यार्थ है, इसका आश्रय करने से सम्यग्दृष्टि हो सकते है, इसे जाने बिना जहाँ तक जीव व्यवहार मे मग्न है, वहाँ तक आत्मा का ज्ञान-श्रद्धानरूप निश्चय सम्यक्त्व नही हो सकता। देखो, गृहस्थाश्रम मे रहनेवाले पं. श्री जयचन्दजी ने ऐसा भावार्थ लिखा है।

यहाँ जयसेनाचार्यदेव कहते है – **सिद्धांत में ऐसा कहा है कि शुद्धपारिणामिक (भाव) निष्क्रिय है। निष्क्रिय का क्या अर्थ है? वह कहते है –**

"(शुद्धपारिणामिकभाव) बंध की कारणभूत जो क्रिया रागादि परिणति उसरूप नही होता और मोक्ष के कारणभूत जो क्रिया शुद्धभावना -- परिणति, उसरूप भी नहीं होता। इसलिये ऐसा जानने में आता है कि शुद्ध पारिणामिकभाव ध्येयरूप है, ध्यानरूप नहीं।"

निष्क्रिय अर्थात् क्या? जडकी और पर की क्रिया रहित चीज, क्या इसका नाम निष्क्रिय है? आत्मा शरीर आदि पर की क्रिया नही कर सकता इसलिये वह निष्क्रिय है? नही, ऐसा नही है। भाई! तू जरा धैर्य से सुन। बंध के कारणभूत जो क्रिया अर्थात् – रागादि मलिन भाव, उसरूप शुद्ध पारिणामिक नही है, इसलिए उसे निष्क्रिय कहते हैं। क्या कहा? पुण्य-पाप का भाव बंध के कारणरूप क्रिया है और उसका शुद्ध पारिणामिक मे अभाव है, इसलिये उसे निष्क्रिय कहा है। वह क्रिया पर्याय मे तो है पर शुद्ध द्रव्य वस्तु मे उसका अभाव है, इसलिये शुद्ध द्रव्य वस्तु निष्क्रिय है। भाई! यह जैनतत्व बहुत सूक्ष्म है।

लोक मे तो धर्म के नाम पर अन्य मिथ्या मान्यताएँ चलती है। चलती है तो चले, पर इनसे ससार मे रखडने का अन्त नही आयेगा। यहाँ तो सच्ची बात है कि निश्चय – सम्यग्दर्शन का ध्येय जो त्रिकाली शुद्ध द्रव्य, वह रागरूप क्रिया की परिणति से भिन्न है अर्थात् राग की किसी क्रिया से वह प्राप्त हो – ऐसा नही है। जैनकुल मे जन्म लेनेवाले को भी इस बात की खवर नही है। एकबार एक त्यागीजी प्रवचन सुनने आये। वे कहते थे कि ऐसी बात की हमे खबर नही थी, हमारी सब क्रियाये व्यर्थ गई।

देखो, त्रिकाली शुद्ध-पारिणामिकभाव निष्क्रिय है अर्थात् क्या – इसकी बात चलती है। शुद्ध-पारिणामिकभाव, जैसे बध के कारणभूत (रागादि परिणति) क्रियारूप नही होता, वैसे मोक्ष के कारणभूत (निर्मल, निर्विकार शुद्धभावना परिणति) क्रियारूप भी नही होता, इसलिये वह निष्क्रिय है। अहाहा! सम्यग्दर्शन का विषय जो त्रिकाली शुद्ध द्रव्य है वह सम्यग्दर्शन की क्रियारूप नही होता। भाई! यह तो त्रिलोक-नाथ जैन वीतरागी परमेश्वर की दिव्यध्वनि मे आया हुआ अमृत है। अहो! समयसार, प्रवचनसार इत्यादि द्वारा आचार्य देव ने अमृत बरषाया है।

वोलना, चलना, खाना, पीना, लिखना इत्यादि जड की क्रियायें तो भगवान आत्मा मे है ही नही, यहाँ तो कहते है -- इसकी पर्याय मे जो रागादि विकार की क्रिया होती है उस क्रियारूप भी शुद्धद्रव्य नही होता। अहा! जो एक ज्ञायकभाव है वह तो वही है, वह कभी प्रमत्त – अप्रमत्तरूप नही हुआ। इसलिये त्रिकाली शुद्ध-द्रव्य अक्रिय है। अहो! कोई अलौकिक शैली से वीतरागी सतो ने शुद्ध द्रव्यस्वभाव का रहस्य खोला है। वापू! ये तो अन्तर के निधान खोले है।

यह तो पहले कहा जा चुका है कि शुद्ध-उपादानभूत शुद्ध-द्रव्यार्थिकनय से जीव कर्तृत्व – भोक्तृत्व से तथा बध-मोक्ष के कारण और परिणाम से शून्य है। बध और बध का कारण, मोक्ष और मोक्ष का कारण – ये चारों ही चीजे त्रिकाली शुद्ध-द्रव्य मे नही हैं।

दया, दान, व्रत, तप के परिणाम बध के कारणरूप क्रिया है, ये आत्मद्रव्य मे नही है, और शुद्धभावना परिणति जो निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप है वह मोक्ष की कारण-रूप क्रिया है। वह भी आत्मद्रव्य मे नही है इसलिये ऐसा जानने मे आता है कि शुद्ध-पारिणामिकभाव ध्येयरूप हैं, ध्यानरूप नही है।

शुद्ध-पारिणामिकभावरूप त्रिकाली शुद्ध-द्रव्य नित्यानंद चिदानन्द प्रभु ध्यान का ध्येय है, ध्यान नही। जिसमे निराकुल आनन्द का स्वाद आये ऐसा निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होने मे त्रिकाली शुद्ध चिन्मात्र वस्तु ध्येय है, ध्यानरूप नही, क्योकि त्रिकाली वस्तु अक्रिय है। अब ध्येय क्या और ध्यान क्या ? इसकी तो खबर नही और तैयार हो गये आसन लगाकर ध्यान करने, परन्तु इससे जरा भी ध्यान नही होने-वाला, सुन तो जरा ये तो सब मिथ्या क्रियाएँ है।

यहाँ कहते है – शुद्ध-पारिणामिकभावरूप चिन्मूर्ति प्रभु आत्मा ध्यान का ध्येय है, वह ध्यानरूप नही। पर्याय को कथचित् द्रव्य से भिन्न कहा है न ? यही बात यहाँ सिद्ध की है।

त्रिकाली वस्तु शुद्ध चैतन्य का महा दरिया है। "शुद्ध-चेतनासिधु हमारो रूप है" – ऐसा आता है न ? अनत-अनत-अनत गुणो का एकरूप दल प्रभु आत्मा है। वह ध्येयरूप है, ध्यानरूप नही। सम्यग्दर्शन पर्याय ध्यानरूप है और त्रिकाली

ध्रुव द्रव्य इसका ध्येय है। ध्यान तो ध्येय मे एकाग्र हुई पर्याय है, और ध्येय त्रिकाल ध्रुवस्वभाव है। ध्यान की पर्याय की ध्येय को ध्याती है तो भी जो ध्येय है, वह ध्यानरूप नही होता। अहो ! यह तो अलौकिक बात है।

भगवान् ! निज ध्येय को भूलकर अपनी नजर को तूने राग मे रोक रखा है, इसलिये ध्येयरूप निज ज्ञानानद का दरिया तुझे नही दिखाता। तूने नजर को वर्तमान पर्याय की रूचि मे रोक दिया है, इसलिए अनत गुणनिधि शुद्धचेतना सिंधु भगवान आत्मा तुझे भासित नही होता। अरे भाई ! ध्यानरूप पर्याय रागरहित निर्मल भावरूप है और इसका ध्येय परमस्वभावभावरूप त्रिकाली शुद्ध-आत्मद्रव्य है। इसलिये रुचि को पलट दे और ध्रुव स्वभाव मे उपयोग को स्थिर करके उसका ध्यान कर। उपयोग को ध्येय मे एकाग्र करके ध्याने पर जो ध्यान प्रगट होगा उसमे अतीन्द्रिय आनन्द की धारा उल्हसित होगी।

वास्तव मे तो पर तरफ ढली हुई ज्ञान की पर्याय मे भी ज्ञायक ही जानने मे आ रहा है। यह बात आचार्यदेव ने १७-१८ वी गाथा मे कही है। ज्ञान की पर्याय स्वभाव का स्व-पर प्रकाश है, इसलिये वर्तमान ज्ञानपर्याय मे त्रिकाल परम-पारिणामिकभाव मे स्थित वस्तु जानने मे आती है। अज्ञानी के ज्ञान मे भी वह त्रिकाली द्रव्य जानने मे आता है, पर उसकी नजर इसके ऊपर नही है। दृष्टि का फेर है भाई ! ध्रुव की दृष्टि करने के बदले वह अपनी नजर पर्याय पर, राग पर, निमित्त पर और बाहर के पदार्थों पर रखता है, इसलिये उसे अन्दर का चैतन्यनिधान नही दिखता।

अरे ! पैसे-वैसे में बिल्कुल सुख नही है। बापू ! ये तो सब धूल के ढेर है। और इसका ध्यान करके परिणमित होना

अकेला दुःख का ढेर है। पंचमहाव्रत का विकल्प भी राग है, दुःख है, बन्ध का कारण है। तू इसे भ्रम से संवर मानकर सेवन करता है, पर आचार्यदेव ने इसे "तत्त्वार्थसूत्र" मे आस्रव मे गिना है। भाई! आस्रव से तुझे लाभ है – ऐसी दृष्टि स्वरूप के श्रद्धान-ज्ञान होने मे बाधक है।

यहाँ कहते हैं – "शुद्ध-पारिणामिकभाव ध्येयरूप है, ध्येयरूप नही। किसलिये? कारण कि ध्यान विनश्वर है। और शुद्ध-पारिणामिकभाव तो अविनाशी है।"

देखा? जो ध्यान है वह पर्याय है, औपशमिकादिभाव-रूप है और वह पलट जाती है इसलिये ध्येयरूप नही है। ध्येयरूप तो एक शुद्ध-पारिणामिकभाव है, क्योकि वह अविन-श्वर है, नित्य है, शाश्वत है, ध्रुव है, एकरूप है, वह ध्यान-रूप कैसे हो सकता है? भाई! यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र स्वरूप जो मोक्षमार्ग की पर्याय है वह नाशवान है, क्योकि मोक्षदशा प्रगट होने पर मोक्षमार्ग की पर्याय का नाश हो जाता है – व्यय हो जाता है, इसलिये वह ध्येयरूप नही है। और त्रिकाली शुद्ध द्रव्य नित्य अविनाशी होने से ध्येयरूप है, परन्तु ध्यानरूप नही है। यह भाषा तो सादी है, पर भाव तो जो है, वही है। लोग कहते हैं कि सरल करो। पर सरल क्या करे? यह सरल ही है। तू व्रत, तप, उपवास आदि के विकल्प को सरल मानता है, पर बापू! यह तो मार्ग ही नही है, ये तो सब राग मदता की क्रियाये है और रखड़ने का मार्ग है।

ध्यान पर्याय विनश्वर है। शुक्लध्यान की पर्याय भी विनश्वर है, इसलिये वह ध्येयरूप नही, ध्येय से भिन्न है। श्री योगीन्द्रदेव ने भी परमात्मप्रकाश की अड़सठवीं गाथा मे कहा है –

णवि उपज्जइ णवि मरई बन्धु ण मोक्खु कोरेइ ।
जिउ परमत्थे जोइया जिणवर एउ भणेइ ।।

हे योगी, परमार्थ से जीव उपजता भी नही, मरता भी नही और बन्ध-मोक्ष भी नही करता – ऐसा श्री जिनवर कहते है। अहाहा ! त्रिकाली वस्तु रूप शुद्ध-द्रव्य रूप परमार्थ से नरकगति, मनुष्यगति, सिद्धगति इत्यादि पर्यायो मे उपजता नही तथा मरता भी नही ।

नियमसार की गाथा ३८ मे कहा है कि त्रिकाली ध्रुव एक ज्ञायकभाव मात्र शुद्ध-पारिणामिकभावमात्र वस्तु है, वही वास्तव मे आत्मा है। पर्यायरूप आत्मा तो व्यवहार-आत्मा है, त्रिकाली की अपेक्षा यह अभूतार्थ – असत्यार्थ है। अहो ! यह तो अलौकिक बात है ।

भाई ! गणधर भगवान के रचे हुए शास्त्र कैसे होगे ? केवली परमात्मा के श्रीमुख से जो ओमध्वनि निकलती है, जिसे सुनकर चार ज्ञान के धारक श्री गणधरदेव अन्तर्मुहुर्त में बारह अग और चौदह पूर्व की रचना करते है, वह चीज कैसी होगी ? उसमे कोई लौकिक वार्ता नही होती। उसमे कहते है – नित्य ध्रुव एक चिन्मात्र वस्तु को हम आत्मा कहते है। ऐसा आत्मा एक समय की पर्याय मे नही आता। त्रिकाली ध्रुव अन्त तत्त्व आत्मा मोक्षमार्ग या मोक्ष की समय की पर्याय रूप से उपजता और विनशता नही है। उस रूप से पर्याय उपजती है, पर शुद्ध जीव नही उपजता ।

ऐसी बात जिसने कभी सुनी न हो उसे लगता है कि क्या जैन का मार्ग ऐसा होगा ? तथा किसी को यह सुनकर वेदान्त जैसा लगता है, पर वेदान्तो मे तो ये बात ही नही है। आत्मा को एकान्त से नित्य एक सर्वव्यापक मानना तो गृहीत मिथ्या-दर्शन है। भाई ! वेदान्त मत वाले पर्याय को कहाँ मानते हैं ?

अनन्त आत्माओं को कहाँ मानते है ? अनन्त परमाणुओ को कहाँ मानते है ? अनन्त गुणो को कहाँ मानते है ? उनके मन में मूल वस्तुस्वरूप की बात ही कहाँ है ? तुझे वेदान्त जैसा लगता है, पर बापू ! वेदान्त दर्शन में और जैन दर्शन मे बहुत बड़ा (जमीन आसमान जैसा) अन्तर है।

परमार्थ से जीव उपजता नही, मरता भी नही, यह उपजना-विनशना जिसमें होता है वह पर्याय है। अहा ! प्रत्येक द्रव्य की पर्याय प्रगट होने का जन्मक्षण है। प्रत्येक पर्याय की उत्पत्ति का स्वकाल है और उसी काल मे वह उत्पन्न होती है। यह बात प्रवचनसार मे आती है। वहाँ पहले अधिकार मे ज्ञान तत्त्व का निरूपण है, दूसरा ज्ञेय अधिकार है। उसमे छहो द्रव्यो के स्वरूप का वर्णन है। जिस समय द्रव्य मे जो पर्याय होना हो उस समय वही पर्याय प्रगट होती है, वह पर्याय आगे-पीछे नही होती तथा वह किसी अन्य के कारण भी नही होती। प्रत्येक पर्याय अपने क्रमबद्ध अवसर मे प्रगट होती है। वहाँ ६६ वी गाथा मे कहा है जिस समय मे जो पर्याय होने वाली हो वह अपने स्व अवसर मे प्रगट होती है, आगे-पीछे प्रगट नही होती। यह जैनदर्शन की मूल बात है। द्रव्य मे समस्त पर्याये क्रमबद्ध हो अपने-अपने अवसर मे प्रगट होती है।

प्रश्न – पर्याये क्रमबद्ध ही होती है तो फिर पुरुषार्थ कहाँ रहा ?

उत्तर – भाई ! तू जरा धैर्यधारण करके सुन। जीव जब स्वभाव सन्मुख होकर स्वानुभव प्रगट करता है, तभी उसे क्रमबद्धपर्यायों का यथार्थ निर्णय होता है और यही पुरुषार्थ है। अज्ञानी का पुरुषार्थ है ही कहाँ ? क्रमबद्ध का निर्णय कहो कि स्वभाव-सन्मुखता का पुरुषार्थ कहो – एक ही बात है। क्रमबद्ध के निर्णय वाले को पुरुषार्थ का अभाव कभी नही होता और

जिसे पुरुषार्थ का अभाव है उसे क्रमबद्ध का यथार्थ निर्णय कभी नही होता। यहाँ कहते हैं कि जिस पर्याय मे केवलज्ञान हुआ उस पर्याय मे भगवान ध्रुवस्वभाव नही आता।

परमार्थ से जीव बन्ध-मोक्ष को भी नही करता। ऐसा कौन कहता है ? तो कहते हैं – "जिणवर एउ भणेइ" भगवान जिनेश्वरदेव, जिन्हे एक सेकेण्ड के असख्यातवे भाग मे तीन-काल, तीनलोक दिखाई देता है, वे सर्वज्ञ परमात्मा ऐसा कहते है।

देखो, भगवान ने एक समय मे तीनकाल-तीनलोक देखा, ऐसा कहना भी व्यवहार है। केवलज्ञान की पर्याय मे तीनकाल, तीनलोक जानने मे आता है – ऐसा कहना व्यवहार है, क्योकि ज्ञान की पर्याय को जानते ही उसमे लोकालोक जानने मे आ जाता है, उसे देखने नही जाना पडता, तथा केवलज्ञान उसमे (लोकालोक मे) तन्मय होकर नही जानता।

यहाँ कहते है – अनन्त सर्वज्ञ परमात्मा फरमाते है कि त्रिकाली ध्रुव नित्यानन्द परमात्मद्रव्य बन्ध-मोक्ष के परिणाम और बन्ध-मोक्ष के कारण को नही करता, क्योकि वह तो त्रिकाल सदृश एकरूप भाव है, जब कि बन्ध-मोक्ष का परिणाम विसदृश है, भाव-अभावरूप है। उत्पाद भावरूप है और व्यय अभावरूप है,परन्तु वस्तु मे ध्रुव भाव-अभाव कहाँ है ? नही है। इसलिये बन्ध और मोक्ष के कारणरूप, रागादि परिणाम और मोक्ष तथा मोक्ष के कारणरूप शुद्धभावना परिणति (निर्मल-रत्नत्रय) को शुद्धात्मद्रव्य नही करता।

किसी को ऐसा लगे कि यदि आत्मा बन्ध-मोक्ष का भाव नही करता तो फिर यह दीक्षा कैसी ? यह आनन्द की दशा का परिणमन कैसे ?

सुन, भाई ! अनत तीर्थङ्कर देवों ने यह कहा है कि परमार्थ रूप निश्चय जीव दीक्षा के परिणामरूप या आनन्द की दशारूप नही उपजता तथा – उस दशा का व्यय होने पर वह मरता भी नही है। मनुष्यरूप से उत्पाद और देवगति का व्यय – ये दोनों उत्पाद-व्ययरूप अवस्थाये है जरूर, पर उस-उस अवस्था के काल में ध्रुव आत्मद्रव्य उत्पाद-व्ययरूप नही होता, वह तो त्रिकाल एकरूप शुद्ध ज्ञायकभावरूप से ही रहता है। ऐसा ही द्रव्य – पर्यायरूप वस्तुस्वरूप है।

"जिणवर एउ भणेइ" भगवान जिनेश्वर देव दिव्यध्वनि द्वारा ऐसा कहते है कि बन्ध – मोक्ष के परिणाम को शुद्धजीव नही करता, अर्थात् शुद्धजीव नित्यानन्द चिदनन्द प्रभु बन्ध – मोक्ष की पर्यायरूप नही होता। अहो ! ऐसा अलौकिक शुद्ध जीवतत्व सम्यग्दर्शन का विषय है। क्या कहा ? "सम्यग्दर्शन का विषय नही, परन्तु त्रिकाली शुद्ध जीववस्तु सम्यग्दर्शन का विपय है और इसलिये उसे मुख्य करके समयसार की ११वी गाथा में भूतार्थ कहा है।

"और विशेष कहते है कि विवक्षित एकदेश शुद्धनयाश्रित यह भावना निर्विकार स्वसंवेदनलक्षण क्षायोपशमिकज्ञानरूप होने से यद्यपि एकदेश व्यक्तिरूप है तो भी ध्याता पुरुष ऐसा ध्याता है कि जो सकल – निवारण अखण्ड एक – प्रत्यक्षप्रतिभासमय अविनश्वर – शुद्ध-पारिणामिक परभावलक्षण निज परमात्मद्रव्य है वही मैं हूँ, अपितु "खण्डज्ञानरूप मै नहीं हूँ।

विवक्षित अर्थात् कहने में आनेवाली आशिक शुद्धिरूप परिणति एकदेश शुद्धनयाश्रित है। निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप भावना एकदेश शुद्ध है, आशिक शुद्ध है, पूर्ण शुद्ध नही। पूर्ण शुद्धि तो भगवान केवली को होती है। प. श्री टोडरमलजी की रहस्यपूर्ण चिट्ठी मे आता है – "इसीप्रकार

चौथे गुणस्थानवर्ती आत्मा को ज्ञानादिगुण एकदेश प्रगट हुए है इसकी तथा तेरहवे गुणस्थानवर्ती आत्मा को ज्ञानादिगुण सर्वदेश प्रगट हुए हैं उनकी एक ही जाति है।" ऐसा समझना कि साधक को जो निर्मल रत्नत्रयरूप भावना प्रगट हुई है वह एकदेश शुद्ध है, आशिक शुद्ध है।

आकाश के प्रदेश अनत है, इनसे अनत-गुणे एक जीव के गुण है। सम्यग्दर्शन होनेपर प्रत्येक गुण का जो आशिक शुद्ध परिणमन होता है, उसे यहाँ एकदेश शुद्धनयाश्रित भावना कहा है। यहाँ प्रगट परिणति को शुद्धनय कहा है। समयसार की चौदहवी गाथा मे शुद्धनय, अनुभूति और आत्मा को एकार्थ-वाची कहा है। त्रिकाली परमात्मस्वरूप भगवान आत्मा को ध्येय बनाकर परिणमित होनेपर प्रगट होनेवाली निर्मल दशा एकदेश शुद्धनयाश्रित भावना है। द्रव्यसग्रह मे मोक्षमार्ग की प्रगट पर्याय के ६५ नाम दिये है। यहाँ उसके दो नाम देकर कहा है कि वह अध्यात्मभाषा से "शुद्धात्माभिमुख परिणाम" "शुद्धोपयोग" इत्यादि पर्यायसज्ञा पाता है। द्रव्यसग्रह मे कहे गए ६५ नामो मे से कुछ इसप्रकार कहे गए है—

वह भावना परम ब्रह्मस्वरूप है, परम विष्णुस्वरूप है, परम शिवस्वरूप है, परम बुद्धस्वरूप है, परम जिनस्वरूप है, वह परम निभ आत्मोपलब्धिरूप है, वह निरजनस्वरूप है, वह निर्मलस्वरूप है, वह स्वसवेदनज्ञान है, वह परमतत्वज्ञान है, वह परमावस्थारूप परमात्मा का स्पर्शन है, वह परमावस्थारूप है,वह परमात्मज्ञान है,वही ध्यान करने योग्य शुद्ध—पारिणामिक भावरूप है, वह ध्यान भावनारूप है, वही शुद्ध चारित्र है, वही अन्तरगतत्व है, वही परमात्मतत्व है, वही शुद्धात्मद्रव्य है, वही परमज्योति है।

इसीप्रकार अन्य नाम भी है। मोक्षमार्ग एकदेश व्यक्त पर्याय है। यह आंशिक शुद्धिरूप परिणति निर्विकार स्वसंवेदन लक्षण क्षायोपशमिक ज्ञानरूप होने से एकदेश व्यक्तिरूप है।

एक समय की पर्यायरहित त्रिकाली द्रव्यस्वभाव–ध्रुवभाव को यहाँ निश्चय जीव कहा है, वह जीव (शुद्धजीव) सिद्धपर्यायरूप उत्पन्न नही होता और पूर्व की मनुष्यगति का व्यय होने पर भी वह (शुद्धजीव) व्ययरूप नही होता, अहा! ऐसा जो नही उपजने और नही मरनेवाला वह शुद्ध पारिणामिक भावरूप शुद्धजीव, सम्यग्दर्शन का विषय है – यह बात यहाँ सिद्ध करना है, इसलिए ऐसी भाषा में कहा – "**शुद्धपारिणामिक भाव ध्येयरूप है, ध्यानरूप नहीं। क्योकि ध्यान विनश्वर है और शुद्ध पारिणामिकभाव अविनश्वर है।**"

प्रश्न – वह शुद्ध पारिणामिकभाव कैसे प्राप्त हो?

उत्तर – सम्यग्दर्शन के साथ प्रगट होने वाले सहज वीतरागी आनन्द की अनुभूतिवाले स्वसवेदन ज्ञान से वह प्राप्त होता है। ध्रुव से ध्रुव जानने मे नही आता, क्योकि ध्रुव मे जाननेरूप क्रिया नही है, निर्विकार स्वसवेदन लक्षण ज्ञान से ध्रुव जानने मे आता है।

वस्तु का त्रिकाली स्वरूप ध्रुवभावरूप है। वह ध्रुव-भावरूप वस्तु पर्याय मे प्राप्त होती है। कैसी है वह पर्याय? तो कहते है – एकदेश प्रगट शुद्धनय की भावनारूप है। अहाहा! ऐसी भाषा और ऐसा भाव। इसे कभी सुना नही। एकदेश शुद्ध नयाश्रित यह भावना अतीन्द्रिय आनन्द की अनुभूति लक्षणवाले निर्विकार स्वसवेदन ज्ञानरूप है। यह निर्विकार स्वसवेदन लक्षण ज्ञान क्षायोपशमिकभाव है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्ष का मार्ग तीनभावरूप है, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक। इन तीनों मे स्वसंवेदन

लक्षण ज्ञान क्षयोपशमभावरूप है। शुद्ध-आत्मतत्त्व की प्राप्ति क्षयोपशम ज्ञान मे होती है। मोक्षमार्ग की पर्याय को तीन भावरूप कहा है, परन्तु वह ज्ञान क्षयोपशमभावरूप है, उपशम या क्षायिक भावरूप नही। ये तो सर्वज्ञ वीतरागी भगवान के पेट की बाते है भाई!

यह भावना निर्विकार स्वसवेदन लक्षण क्षायोपशमिक ज्ञानरूप होने से एकदेश व्यक्तिरूप है। देखो, तीनो भावो मे यह निर्विकार स्वसंवेदन लक्षण ज्ञान क्षयोपशमभाव है।

सम्यग्दर्शन होने पर जो ज्ञान प्रगट हुआ वह ज्ञान क्षयोपशमभावरूप है। भले सम्यग्दर्शन उपशम हो, क्षयोपशम हो या क्षायिक हो, परन्तु उसके साथ होने वाला ज्ञान तो क्षायोपशमिक ज्ञान है। तथा कैसा है वह ज्ञान? निर्विकार आनन्द का स्वाद जिसके अनुभव मे आता है वह ऐसा स्वसवेदन लक्षण ज्ञान है। अहा! वह ज्ञान स्व-स्वरूप के जानने अनुभवने मे प्रवृत्त है।

भावना सम्बन्धी यह वर्णन बन्ध-अधिकार तथा सर्वविशुद्धज्ञानाधिकार के अन्त मे श्री जयसेनाचार्यदेव की टीका मे आता है, तथा परमात्मप्रकाश मे भी आता है। यही बात यहाँ कही है। मिथ्यातत्त्व, अज्ञान और रागद्वेष से होने वाले बन्ध के विनाश के लिए विशेष भावना है। अहा! मैं तो एक त्रिकाली ध्रुव परम स्वभावभावमय शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूपी परमात्मद्रव्य ही हूँ। दया, दान का विकल्प भी मैं नही, गुणभेदका विकल्प भी मैं नही, और एक समय की पर्याय भी मैं नही – इसप्रकार यह भावना ध्रुव मे एकरूप रहकर ध्रुव का निर्णय करती है। इसका नाम जैनदर्शन है और यह महा अद्भुत अलोकिक चीज है।

जिसे स्वद्रव्य के आश्रय से अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आता है ऐसा धर्मी जीव इसप्रकार भाता है कि मै तो सहज शुद्ध सच्चिदानन्दमय परमानन्दमय परमात्मा ही हूँ और जगत के सर्व जीवों का अन्तरग मे ऐसा ही स्वरूप है। परमात्मप्रकाश के अन्त मे आचार्यदेव कहते है – इस परमात्मप्रकाश वृत्ति का व्याख्यान जानकर भव्य जीवो को क्या करना ? भव्य जीवो को ऐसा विचार करना चाहिए कि "शुद्ध निश्चय से मैं एक (केवल) तीन लोक मे, तीन काल मे मन-वचन-काय से और कृत-कारित-अनुमोदना से उदासीन हूँ, निज निरंजन शुद्ध आत्मा के सम्यक्श्रद्धान, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्अनुष्ठानरूप निश्चय-रत्नत्रयात्मक निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न वीतराग सहजानन्द-सुखानुभूतिमात्र लक्षणवाले स्वसवेदनज्ञान से स्वसवेद्य गम्य प्राप्य ऐसा परिपूर्ण हूँ, राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ, पाच इन्द्रियो का विषय-व्यापार, मन-वचन-काय का व्यापार, भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म, ख्याति, पूजा, लाभ, देखे, सुने और अनुभवे हुए भोगो की आकाक्षारूप निदान, माया, मिथ्यात्व ये तीन शल्य आदि सर्व विभाव परिणामो से रहित-शून्य हूँ। सभी जीव ऐसे ही हैं – ऐसी निरन्तर भावना करना। देखो, यह धर्मी की एकरसरूप (समरस) भावना।

सम्वत् १९६४ मे एकबार हम पालेज से बड़ोदरा माल लेने गये। उस समय १८ वर्ष की उमर थी। वहाँ रात में नाटक देखने गये। उस समय के नाटक भी वैराग्यपूर्ण थे, अब तो नाटक सिनेमा मे नैतिक जीवन का खात्मा कर दिया है। वहाँ "सती अनुसूइया" नाटक हो रहा था, हमने नाटक की पुस्तक भी खरीदी थी। इस नाटक मे ऐसा दृष्य आता है कि जब अनुसूइया स्वर्ग में जारही थी, तब देव ने उसे रोक दिया और कहा – "अपुत्रस्य गतिर्नास्ति" अर्थात् जिसका पुत्र न हो

उसे स्वर्ग गति नही मिलती। (यह तो अन्य मत की बात है) इसलिए नीचे जा और जो मिले उसे वर। उस बाई ने नीचे आकर एक अन्धे ब्राह्मण को वर लिया। उसके एक बालक हुआ। बालक को पालने मे झुलाती हुई वह बाई कहती थी – "बेटा! शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, निर्विकल्पोऽसि, उदासीनोऽसि।" अर्थात् तू शुद्ध है, बुद्ध है, निर्विकल्प है, उदासीन है। यह बात तो नाटक मे आई थी। यहाँ शुद्ध भावना का अधिकार बाचते समय वर्षों पहले देखे उस नाटक का भाव याद आ गया।

अहा! सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा ऐसा भाता है कि मैं निर्विकल्प हूँ, शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ, परम-उदासीन हूँ, और जगत के सब जीव भी स्वभाव से ऐसे ही है। सूक्ष्म निगोद के जो अनन्त जीव है, उन सबका स्वरूप भी ऐसा शुद्ध सच्चिदानन्द-मय है। कन्दमूल के एक अश मे असख्य जीव हैं। इन सब जीवो का द्रव्य शुद्ध चिद्घन आनन्दघन ही है – ऐसा भाता है। जगत के सर्व जीवो को धर्मात्मा द्रव्यदृष्टि से ऐसा ही देखता है।

अहा! मैं ऐसा शुद्ध, बुद्ध, चैतन्यघन, ज्ञानमूर्ति प्रभु आत्मा हूँ – ऐसा किसमे जाना जाता है? अतीन्द्रिय आनन्द की अनुभूति जिसका लक्षण है। ऐसे स्वसवेदन ज्ञान मे ऐसा जाना जाता है। इसके सिवा वह शुद्ध-बुद्ध आत्मा भगवान से नही जाना जाता, भगवान की वाणी से भी नही जाना जाता और व्यवहार-रत्नत्रय के विकल्प से भी नही जाना जाता। वह तो निर्विकार स्वसवेदन लक्षण क्षयोपशम ज्ञान से जाना जाता है। आत्मा स्वय स्वसवेद्य है न? अर्थात् स्वानुभव की की दशा मे जो ज्ञान स्वाभिमुख हुआ है उससे ही वह जानने मे आता है, अन्य किसी प्रकार से वह प्राप्त नही होता। लोगो को यह बात कठिन लगती है, पर क्या करे? वस्तु का स्वरूप तो जैसा है वैसा ही है, इसे जाने बिना बाहर के व्रतादि के

व्यवहार से आत्मा प्राप्त हो जायेगा – ऐसे भ्रम मे काल चला गया तो यह जीव चारगतिरूप ससार मे डूब जायेगा।

व्रतादि का व्यवहार तो राग है बापू! भावपाहुड की तेरासी गाथा मे आचार्य भगवान कहते है कि प्रजा और व्रत के भाव पुण्य है, धर्म नही, एक वीतराग परिणाम या सम्यग्दर्शन-ज्ञान का परिणाम ही जैनधर्म है और वही मुक्तिमार्ग है।

अहा! मैं अपनी केवलज्ञान आदि अनत शक्तियो से भरा हुआ पूर्ण परमात्मा हूँ, निश्चय से मेरा आत्मा अनतदर्शन, अनत आनन्द, अनन्त वीर्य, अनन्त स्वच्छता अनन्त, प्रकाश, अनन्त प्रभुता आदि अनन्त शक्तियों से भरा हुआ है। धर्म की पहली सीढीवाला सम्यग्दृष्टि जीव अपने आत्मा को इसप्रकार भाता है, ध्याता है। जगत के सभी आत्मा शक्तिरूप से भगवान है, रागद्वेषादि विभाव से रहित-शून्य है, भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म से भिन्न है-ऐसा वह जानता है। अहा! जिस भाव से तीर्थङ्कर नामकर्म बन्धे वह भाव भी विभाव अर्थात् विपरीत भाव है और इससे भगवान आत्मा शून्य है – ऐसा समकिती जानता है। अहो! जिसमे जगत के सर्वजीव समानपने शक्ति से परिपूर्ण भासते है, ऐसे समकिती की भावना कोई अचिंत्य और अलौकिक है। अहा! अनन्त शक्ति से भरा पूर्ण चैतन्य दरिया जिसमे भाषित हुआ, वह भावना अपूर्व है। पास मे पाच-दस करोड का सयोग हो तो सेठ लोग मानते हैं कि हम भी कुछ है, पर बापू। ये तो सब धूल की (पुण्य की) धूल है।

प्रश्न – परन्तु इस धूल के बिना काम नही चलता न?

समाधान – तुझे खबर नही भगवान! इस धूल के बिना ही तेरा काम अनादि से चल रहा है, क्योंकि तेरे द्रव्य-गुण पर्याय मे वह कहाँ है? भाई! आत्मा में परद्रव्य का तीनोकाल

अभाव है, और स्वभाव का सदा ही सद्‌भाव है। भाई! तेरे स्वभाव मे परद्रव्य तो क्या, एक समय की पर्याय भी प्रवेश नही पापती-ऐसा तेरा द्रव्य है।

भगवान आत्मा निर्विकार स्वसवेदन लक्षण क्षायोपशमिक ज्ञान मे जाना जाता है। यह ज्ञान भावश्रुतज्ञान होने से क्षयोपशमभावरूप है, सम्यक्त्व भले क्षायिक हो, पर ज्ञान तो क्षायोपशमिकभावरूप ही है।

देखो, श्रेणिक राजा को क्षायिक सम्यक्त्व था, स्वानुभव मण्डित भावश्रुत ज्ञान था। तीर्थङ्कर प्रकृति बाँधी है, पूर्व मे नरक की आयु बन्ध गई थी इसलिए अभी पहले नरक के सयोग मे गये है। वहाँ भी क्षायिक सम्यक्त्व वतता है। वहाँ क्षण-क्षण तीर्थङ्कर प्रकृति बन्धती है। अहा! नरक के ऐसे पीडाकारी सयोग मे भी वह अपने आत्मा को शुद्ध-बुद्ध चिदानन्दस्वरूप परमात्मस्वरूप अनुभवता है। अज्ञानी को इसकी खबर कैसे पडे? यह करो, वह करो – एकान्त से ऐसे क्रियाकाण्ड मे ही वह रुक गया है। उसे भगवान केवली की आज्ञा की खबर ही नही है। बापू! यह तो जगत से अत्यन्त निराली बात है, जगत के साथ इसका मेल बैठे-ऐसा नही है।

समकिती को जो भावश्रुतज्ञान है वह क्षयोपशमरूप है और एकदेश व्यक्तिरूप है, क्षायिक की तरह पूर्ण व्यक्तिरूप नही है, सर्वदेश व्यक्तिरूप क्षायिकज्ञान तो केवली परमात्मा को होता है। सम्यग्दृष्टि को तथा भावलिंगी मुनिवर को जो ज्ञान अन्दर प्रगट है वह क्षायोपशमिक है और इसलिये वह एकदेश व्यक्तिरूप है।

अहाहा! भगवान! तू जिन है, जिनवर है, जिन सो जिनवर, और जिनवर सो जिन। ऐसा जिनस्वरूप भगवान आत्मा जिसमे जाना जाये वह भावश्रुतज्ञान क्षायोपशमिक है

और एकदेश प्रगटरूप है। आत्मा में अनन्त शक्तियाँ है। आत्मानुभव होने पर वे सब शक्तियाँ पर्याय में अंशरूप प्रगट होती है। सम्यग्दर्शन होने पर जो क्षयोपशम ज्ञान प्रगट होता है वह अंशरूप व्यक्त होता है, पूर्ण व्यक्त नही। सर्वज्ञ परमेश्वर को जो अनन्त शक्तियाँ है वे सब पूर्ण व्यक्तिरूप है, परन्तु साधक को तो वे शक्तियाँ मोक्षमार्ग के काल में आंशिक व्यक्तिरूप हैं, ज्ञान भी एकदेश व्यक्तिरूप है।

अभी तो जैनकुल मे जन्म लेनेवालो को भी खबर नही है कि जैन परमेश्वर कौन है ? और उनके ज्ञान की कैसी अलौकिकता है ? बापू ! यह बात समझे बिना ही तू अनंतकाल से रखड-रखडकर मर रहा है। भाई ! चौरासी लाख योनियों मे अनन्तबार जन्म-मरण करके तू चकचूर हो गया, अब तो अरे ! यह बात समझे बिना ये करोडपति और अरबपति लोग सब दु खी ही है। भाई ! दिल्ली से सेठ साहू शान्तिप्रसादजी यहाँ पन्द्रह दिन पहले आये थे, तीन व्याख्यान सुने फिर एकान्त मे मिलने आये। तब हमने उनसे कहा था – अरे सेठ ! दुनिया के पाप के धन्धे मे पडकर यह आत्मा क्या चीज है, यह सुनने का भी तुम्हे समय नही मिलता, ऐसा तुम्हारा जीवन कितना दु खमय है ? कुछ विचार तो करो। बापू ! यह समझे बिना ससार मे भले किसी भी स्थान मे रहे तो भी जीव दु खी ही है।

पाच-दस करोड़ रुपये मिल जाये परन्तु यह तो सब धूल है। यह धूल तेरे आत्मा में कहाँ है ? कदाचित् इसमे से पाच-पच्चीस लाख रुपये मन्दिर बनाने मे तथा प्रतिष्ठा वगैरह कराने मे दान दे दें तो भी धर्म नही होता। देखो, भावनगर से सत्साहित्य प्रकाशित होता है। उसके प्रकाशन के लिए एक मुमुक्षु ने एक लाख रुपये का दान दिया, लाख तो क्या, एक

करोड रुपयो का दान दे तो भी इसमे मन्द राग हो तो पुण्य बन्धेगा, धर्म जरा भी नही होता। भाई! वीतराग का धर्म तो वीतराग भाव से ही प्रगट होता है। (राग से धर्म होना मानना तो मिथ्याभाव है।

यहाँ कहते है – यह भावना निर्विकार स्वसवेदन लक्षण क्षायोपशमिक ज्ञानरूप होने से यद्यपि एकदेश व्यक्तिरूप है तो भी ध्याता पुरुष ऐसा भाता है कि **"जो सकलनिरावरण, अखण्ड, एक, प्रत्यक्ष प्रतिभासमय, अविनश्वर, शुद्ध पारिणामिक परमभाव-लक्षण निजपरमात्मद्रव्य है, वही मै हूँ", परन्तु ऐसा नहीं भाता कि "मैं खण्ड-ज्ञानरूप हूँ।"**

अहाहा धर्मी जीव को आनन्द की अनुभूति सहित स्वसवेदन ज्ञान प्रगट हुआ। वह ज्ञान एकदेश व्यक्तिरूप है। उसमे अपना पूर्ण परमात्मद्रव्य जाना जाता है। परन्तु ज्ञानी उस खण्डज्ञानरूप दशा का ध्यान नही करते। लोगो को यह बात कठिन लगे, पर क्या करे? जैन परमेश्वर का कहा हुआ मार्ग तो ऐसा है। अन्य मत मे तो यह बात है ही नही। एक पद मे आता है –

"धुन रे धुनियाँ अपनी धुन, जाकी धुन मे पाप न पुन्न।"

अहा! भगवान आत्मा की जिसे धुन लगी है उसे पुण्य-पाप के तरफ का लक्ष्य नही होता। आत्मा की धुन मे पाप-पुण्य के भाव बिलकुल नही होते। हे भाई! तू निर्मल आनन्द का नाथ प्रभु परमात्मद्रव्य है। एकबार इसकी धुन तो लगा, तुझे सम्यग्दर्शन होगा, सुखी होने का मार्ग प्रगट होगा। भाई! यह सर्वज्ञ-परमात्मा की कसी हुई बात है, यह बात अन्य कही नही है।

कोई जगतकर्त्ता ईश्वर को माने या सर्वव्यापी एक ईश्वर को माने, पर ऐसा वस्तुस्वरूप नही है। सर्वज्ञ वीतरागदेव के सिवा

आत्मा कैसा है, वह किसी ने देखा नही, जाना नही। भले अन्य मतवाले आत्मा की बाते करे, पर ये सब कल्पित बाते है। सर्वज्ञ परमेश्वर ने जिस आत्मा को देखा और दिव्यध्वनि मे कहा है वही यथार्थ है। अहा! ऐसे अनन्तगुणमण्डित अखण्ड एक परम जिनस्वरूप आत्मा का जिसे स्वानुभव मे भान हुआ, उसकी स्वानुभव की दशा एकदेश प्रगटरूप है। भाई! धर्मात्मा को निज परमात्मद्रव्य के लक्ष्य से जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दशा प्रगट हुई, वह दशा एकदेश व्यक्तिरूप है। धर्मी पुरुष उस दशा का ध्यान नही करता, पर अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय परमात्माद्रव्य मैं हूँ – ऐसा ध्यान करता है।

अहा! त्रिलोकीनाथ सर्वज्ञदेव ऐसा फरमाते है कि अनन्त शक्तिस्वरूप आत्मा का अनुभव करने पर अनन्त शक्तियो का एक अश पर्याय मे प्रगट होता है। सम्यग्दर्शन के रूप मे श्रद्धा का अश प्रगट होता है, भावश्रुतज्ञान के रूप मे ज्ञान अंश प्रगट होता है, चारित्र का अंश प्रगट होता है, वीर्य का अंश प्रगट होता है, स्वच्छता और प्रभुता का अंश भी पर्याय मे व्यक्त होता है। वे सब निर्मल पर्याये, ध्याता पुरुष के ध्यान का ध्येय नही है। ध्याता पुरुष उन प्रगट पर्यायो को जानता जरूर है, पर उन पर्यायो का ध्यान नही करता, उन पर्यायो को ध्याता नही है।

यह बात आठ दिन से चल रही है। आज यह आखिरी प्रवचन है। अहा! सच्चिदानन्दमय निज भगवान के स्वरूप को कहने वाली भगवान के घर को यह भागवत् कथा है। स्व-द्रव्य के अवलम्बन से प्रगट होने वाली वीतराग-विज्ञानमय दशा को धर्मात्मा पुरुष नही ध्याता, तो किसे ध्याता है? धर्मी पुरुष किसका ध्यान करते है? त्रिकाल विद्यमान सकल निरावरण

अखण्ड, एक, प्रत्यक्ष प्रतिभासमय शुद्ध-पारिणामिक परमभाव-स्वरूप निज-परमात्मद्रव्य का ध्यान करते है।

अहाहा ! अन्दर शक्तिस्वरूप जो आत्मवस्तु है वह त्रिकाल निरावरण है। भाई ! तेरा द्रव्य, स्वभाव से सदा ही निरावरण है, पर्याय मे राग के साथ और कर्म के साथ एक समय का सम्बन्ध व्यवहार से भले हो, पर अन्दर जो भूतार्थ वस्तु है, चिदानन्दमय सदा विद्यमान वस्तु है वह निरावरण है। भगवान ! तेरी परमानन्दमय वस्तु अन्दर सदा निरावरण है, कर्म और राग के सम्बन्ध से रहित है। परन्तु यह सब कैसे बैठे ? तू मान या न मान, पर अन्दर ज्ञानघन वस्तु सकल निरावरण है, और उसे धर्मी पुरुष ध्याता है।

अनन्त-अनन्त शक्तियो का पिण्ड प्रभु आत्मा सकल निरावरण है। तथा वह अनन्त गुणो से भरा होने पर भी गुण-भेद से रहित अखण्ड एक है, खण्डरूप नही, भेदरूप नही, पर्याय भेद से भी भेदरूप नही होता, ऐसा अभेद एक है। तथा स्वसवेदन ज्ञान मे प्रत्यक्ष जाना जाये, ऐसा प्रत्यक्ष प्रतिभासमय है। आत्मा स्वभाव से ही प्रत्यक्ष प्रतिभासमय है।

प्रश्न — परन्तु ऐसा जानने मे तो नही आता ?

उत्तर — तू राग में या निमित्त मे इसे शोधे तो वह कैसे जानने मे आये ? आत्मा जहाँ है वहाँ अन्तर्मुख होकर देख तो अवश्य जानने मे आये — ऐसा वह प्रत्यक्ष प्रतिभासमय है। आत्मा चैतन्यप्रकाश का बिम्ब है। ज्ञान को उसमे एकाग्र करके देखने वालो को वह अवश्य जानने मे आता है। अहाहा ! आत्मा अन्तर्मुख उपयोग में — निज स्वसवेदन ज्ञान मे जाना जाये, ऐसा प्रत्यक्ष प्रतिभासमय है। भले मतिज्ञान हो या श्रुत-ज्ञान हो, सम्यग्ज्ञान की एक समय की पर्याय में सम्पूर्ण आत्मा एक अखण्डरूप से ज्ञात हो जाये, ऐसा ही इसका प्रत्यक्ष स्वरूप है।

वह न जाना जाये यह बात ही कहाँ है ? भाई ! तू बाहर खोजे और वह ज्ञात न हो तो इसमे हम क्या करे ?

निज परमात्मतत्त्व सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय त्रिकाल अविनश्वर वस्तु है, और वही ध्याता पुरुष के ध्यान का ध्येय है। सम्यग्दर्शन का विषय भी यही है और कल्याणकारी ध्यान का ध्येय भी यही है।

अरे ! यह जीव चैतन्य निधानस्वरूप अपने भगवान को भूलकर अनादि से उल्टे रास्ते चढ गया है ! स्वयं चैतन्य लक्ष्मी से भरा हुआ त्रिकाल विद्यमान होने पर भी यह बाह्य जड लक्ष्मी और पुण्य की भावना करता है। तीन लोक का नाथ जिनस्वरूप प्रभु, ऐसा भिखारी होकर डोले – यह कैसे शोभे ? भगवान ! तू यह क्या करता है ? अपने उपयोग को अन्तर मे ले जा, तुझे सुख निधान प्रभु आत्मा प्राप्त होगा। भाई ! तेरे सुख का यह एक ही उपाय है। धर्मी पुरुष अन्तर्मुख होकर परमभावस्वरूप इस एक को ही ध्याते है।

पर्याय की अपेक्षा से केवलज्ञानादि को परमभाव कहते हैं, पूर्ण दशा को परमभाव कहते है, परन्तु द्रव्यस्वभाव की अपेक्षा से तो त्रिकाल एकस्वरूप शुद्ध-पारिणामिकभाव ही परमभाव है। छठवी गाथा मे जिसे एक ज्ञायकभाव कहा, वही परमभाव है। ऐसा परमभावस्वरूप अखण्ड एक ज्ञायकभाव जिसका भाव है वह निज परमात्मद्रव्य मैं हूँ – ऐसा धर्मात्मा ध्याता है। धर्मात्मा अपने को अरहन्तादि (अपने से अन्य) सर्वज्ञ परमात्मारूप ध्याते है – ऐसा नही है, वे तो अपने ही त्रिकाली आत्मा को "मै परमात्मद्रव्य हूँ" – ऐसा ध्याते है अर्थात् अनुभव करते है। प्रगटरूप सर्वज्ञ परमात्मा तो परद्रव्य है, इन्हे ध्याने से तो राग होगा बापू !

प्रश्न – भगवान को तारण-तरण कहा जाता है न ?

उत्तर – हाँ, भगवान को व्यवहार से तारण-तरण कहते है। जब तरनेवाला स्वय अपने स्वरूप का अनुभव करके तरता है तब भगवान को निमित्त होने के कारण व्यवहार से तारण-तरण कहा जाता है। ध्याता अपने आत्मा को अन्तर्मुखपने ध्यावे, यही मोक्ष के कारणरूप ध्यान है। कोई एकान्त से पर भगवान का ध्यान धरकर मोक्ष होना माने, तो इसमे तो बहुत फेर हो गया भाई! ध्याता के ध्यान का ऐसा स्वरूप नही है।

भाई! यह तो अनन्त तीर्थङ्करो ने गणधरो और मुनिवरो के समक्ष धर्मसभा मे जो फरमाया है वही यहाँ दिगम्बर सत जगत के सामने प्रगट करते है। भगवान का यह सदेश है कि आत्मा स्वयं चिदानन्दघन प्रभु, सकल निरावरण, अखण्ड, एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय, अविश्वर है; शुद्ध-पारिणामिक परमभाव लक्षण परमात्मद्रव्य है। अहा! मैं ऐसा निज परमात्मद्रव्य हूँ, ध्याता पुरुष ऐसा ध्याते हैं, भाते है और यही मोक्ष के कारण रूप ध्यान है। जिसमे अपना त्रिकाली शुद्ध आत्मा ही ध्येयरूप है, वह परमार्थ ध्यान है और वही मोक्ष के कारणरूप है।

देखा? निज परमात्मद्रव्य ही मैं हूँ, परन्तु सवेदन की पर्याय मैं नही हूँ। सम्यग्दर्शन-ज्ञान को प्रगट पर्याय मे निराकुल आनन्द का वेदन साथ मैं ही है। परन्तु वह पर्याय ऐसा भाती है कि यह त्रिकाली शुद्ध निज-परमात्मद्रव्य ही मै हूँ, मै यह प्रगट पर्याय नही हूँ। यह बात सूक्ष्म है भाई! परन्तु इसका स्वीकार किए बिना जन्म-मरण का अन्त नही आयेगा।

अहाहा! धर्मी ऐसा भाता है कि अखण्ड एक निज परमात्मद्रव्य मै हूँ, परन्तु ऐसा नही भाता कि मै भावश्रुतज्ञान हूँ। आनन्द के अनुभव सहित जो श्रुतज्ञान प्रगट हुआ वह एक समय की पर्याय है, इसलिये धर्मी पुरुष इसका ध्यान नही करता। पर्याय खण्डरूप विनश्वर है न? इसलिये धर्मात्मा

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय का ध्यान नही करता। अहा ! ध्यान करनेवाली पर्याय है, परन्तु वह पर्याय का – भेद का ध्यान नही करती। वह अखण्ड अभेद एक परमात्मद्रव्य को ही ध्याती है। धर्मात्मा की ध्यान की दशा एक ध्रुव को ही ध्याती है, वह भेद के सामने देखती ही नही। इसप्रकार धर्मी पुरुष निज-परमात्मतत्त्व को भाकर, ध्याकर, ध्यान के फलरूप अविचल मोक्ष दशा को प्राप्त हो जाता है।

अरेरे ! इसने अपने अन्तरंग परमात्म स्वरूप का इंकार करके अपने को मरण तुल्य कर दिया है ! इसने अनतकाल में अपनी दया नही की। जैसा अपना पूर्ण त्रिकाली ध्रुव चैतन्य-तत्त्व है, वैसा उसे नही माना उसने अपने को रागवाला और पुण्यवाला माना है, पर्यायदृष्टि करके अपने को पर्यायरूप माना है। पर भाई ! इसप्रकार तूने स्वयं अपना घात ही किया है, क्योकि वस्तु पर्यायमात्र नही है।

यहाँ कहते है – मै निज कारण परमात्मद्रव्य हूँ। धर्मात्मा ऐसी भावना करता है, परन्तु मै खण्डज्ञानरूप हूँ, ऐसी भावना नही करता। अहा ! समकिती को ज्ञान और आनन्द की निर्मल पर्याय प्रगटी है, उसे वह जानता है, पर उसकी भावना नही करता। निर्मल पर्याय के प्रति भी वह उदासीन है। भाई ! शास्त्र की यह भाषा और भाव जिसकी समझ में आता है उसे भवनाशिनी शुद्धात्म भावना प्रगट होती है और यही इस "तात्पर्यवृत्ति" का तात्पर्य है।

अब अन्त में कहते हैं – "विवेकी जनों को ऐसा जानना चाहिए कि यह व्याख्यान परस्पर सापेक्ष आगम-अध्यात्म दोनों नयों के अभिप्राय के अविरोध से कहा गया सिद्ध होता है।"

देखो, भगवान के कहे हुए शास्त्रों में आगम और अध्यात्म के शास्त्र है। भगवान के द्वारा कहे हुए द्रव्यों का

जिसमें निरूपण हो, उसे आगम कहते है। अनत आत्मा है, अनतानत पुद्गलद्रव्य है, एक धर्मास्तिकाय, एक अधर्मास्तिकाय, एक आकाश और असख्यात कालाणु – इसप्रकार जाति से छह द्रव्य है, और सख्या से अनत है। जिसमे इन सबका निरूपण हो, वह आगम है, तथा जिसमे शुद्ध निश्चयस्वरूप आत्मद्रव्य और उसकी निर्मल पर्यायो का निरुपण हो, वह अध्यात्मशास्त्र है। आचार्य कहते है – यहाँ इन दोनो का सापेक्ष कथन किया है।

नयद्वय के अभिप्राय के अविरोधपूर्वक ही यहाँ कहने मे आया है। इसलिये यह कथन सिद्ध है, निर्बाध है - ऐसा विवेकियो को जानना चाहिए। वर्तमान पर्याय मे आनन्द का अनुभव होकर जो निर्विकल्प निर्मल भावनारूप दशा प्रगट हुई वह पर्यायार्थिकनय का – व्यवहारनय का विषय है, और जिसका लक्ष्य करके वह (निर्मलपर्याय) प्रगट हुई वह त्रिकाली शुद्ध-परमात्मद्रव्य शुद्ध-निश्चयनय का – द्रव्यार्थिकनय का विषय है। ऐसे नयद्वय के अविरोधपूर्वक सर्व कथन परस्पर सापेक्ष है। इसलिए यह कथन सिद्ध है, निर्दोष है, निर्बाध है – ऐसा विवेकी पुरुषो को जानना चाहिए। जिसे विवेक नही, वह भले जैसे रुचे वैसा माने, पर विवेकी पुरुषो को तो इसे प्रमाणरूप जान कर जैसे भवनाशिनी शुद्धात्मभावना प्रगट हो वैसे प्रवर्तना, क्योकि ऐसी भावना द्वारा ही भव का नाश होकर सिद्धपद की की प्राप्ति होती है।

इसप्रकार आज आठ व्याख्यान द्वारा इस गाथा की जयसेनाचार्य कृत टीका पर प्रवचन पूरा होता है।

❖ भेद ज्ञान ❖

(मंदाक्रान्ता)

भेदज्ञानोच्छलनकलनाच्छुद्धतत्त्वोपलंभा-
द्रागग्रामप्रलयकरणात्कर्मणां संवरेण ।
बिभ्रत्तोषं परमममलालोकमम्लानमेकं,
ज्ञानं ज्ञाने नियतमुदितं शाश्वतोद्योतमेतत् ।।

श्लोकार्थ – भेदज्ञान प्रगट करने के अभ्यास से शुद्ध तत्त्व की उपलब्धि हुई, शुद्ध तत्त्व की उपलब्धि से राग समूह का विलय हुआ, राग समूह के विलय करने से कर्मो का सवर हुआ और कर्मो का सवर होने से, ज्ञान मे ही निश्चल हुआ ऐसा यह ज्ञान उदय को प्राप्त हुआ – कि जो ज्ञान परम सन्तोष को (परम अतीन्द्रिय आनन्द को) धारण करता है, जिसका प्रकाश निर्मल है (अर्थात् रागादिक के कारण जो मलिनता थी वह अब नही है), जो अम्लान है (अर्थात् क्षायोपशमिक ज्ञान की भाँति कुम्हलाया हुआ – निर्बल नही है, सर्व लोकालोक को जाननेवाला है), जो एक है (अर्थात् क्षयोपशम से जो भेद था वह अब नही है) और जिसका उद्योत शाश्वत है अर्थात् जिसका प्रकाश अविनश्वर है ।

– आचार्य अमृतचन्द्र, समयसार कलश १३२

समयसार गाथा ३२० : आत्मख्याति टीका

उत्थानिका, मूलगाथा, संस्कृत छाया, अमृतचन्द्राचार्य कृत संस्कृत टीका एवं उसका हिन्दी अनुवाद

कुत एतत ?

दिट्ठी जहेव णाणं अकारयं तह अवेदयं चेव ।
जाणइ य बन्ध मोक्खं कम्मुदयं णिज्जरं चेव ॥३२०॥

दृष्टि. यथैव ज्ञानमकारकं तथाऽवेदक चैव ।
जानाति च बन्धमोक्षं कर्मोदयं निर्जरा चैव ॥

यथात्र लोके दृष्टिर्दृश्यादत्यंतविभक्तत्वेन तत्करणवेदनयोरसमर्थत्वात् दृश्यं न करोति न वेदयते च, अन्यथाग्निदर्शनात्संधुक्षणवत् स्वयं ज्वलनकरणस्य,लोहपिडवत्स्वयमौष्ण्यानु-

---

अब प्रश्न होता है कि यह (ज्ञानी कर्त्ता-भोक्ता नही है मात्र ज्ञाता ही है) कैसे है ? इसका उत्तर दृष्टान्तपूर्वक कहते है –

ज्यो नेत्र, त्यो ही ज्ञान नहि कारक, नहीं वेदक अहो ।
जाने हि कर्मोदय, निरजरा, बंध त्यो ही मोक्ष को ॥

अन्वयार्थ – [यथा एव दृष्टि] जैसे नेत्र (दृश्य पदार्थो को करता-भोगता नही है, किन्तु देखता ही है), [तथा] उसी प्रकार [ज्ञानम्] ज्ञान [अकारकं] अकारक [अवेदकं च एव] तथा अवेदक है, [च] और [बंधमोक्षं] बन्ध, मोक्ष, [कर्मोदय] कर्मोदय [निर्जरां च एव] तथा निर्जरा को [जानाति] जानता ही है ।

टीका – जैसे इस जगत मे नेत्र दृश्य पदार्थ से अत्यन्त भिन्नता के कारण उसे करने-वेदने (भोगने) मे असमर्थ होने से,दृश्य पदार्थ को न तो करता है और न भोगता है – यदि ऐसा न हो तो अग्नि को देखने पर, सधुक्षण[1] की भाति, अपने को

---

१. सधुक्षण – सधूकण, अग्नि जलानेवाला पदार्थ, अग्नि को चेतानेवाली वस्तु ।

भवनस्य च दुर्निवारत्वात्, किन्तु केवलं दर्शनमात्रस्वभावत्वात् तत्सर्वं केवलमेव पश्यति; तथा ज्ञानमपि स्वयं द्रष्टृत्वात् कर्मणोऽत्यन्तविभक्तत्वेन निश्चयतस्तत्करणवेदनयोरसमर्थत्वात्कर्म न करोति न वेदयते च, किन्तु केवलं ज्ञानमात्रस्वभावत्वात्कर्म-बन्धं मोक्षं वा कर्मोदयं निर्जरां वा केवलमेव जानाति ।

(नेत्र को) अग्नि का कर्तृत्व (जलाना), और लोहे के गोले की भाति अपने को (नेत्र को) अग्नि का अनुभव दुर्निवार होना चाहिए ।[1] किन्तु केवल दर्शनमात्र स्वभाववाला होने से वह (नेत्र) सबको मात्र देखता ही है, इसीप्रकार ज्ञान भी, स्वय (नेत्र की भाति) देखनेवाला होने से कर्म से अत्यन्त भिन्नता के कारण निश्चय से उसके करने-वेदने (भोगने) मे असमर्थ होने से, कर्म को न तो करता है और न वेदता (भोगता) है, किन्तु केवल ज्ञानमात्र स्वभाववाला (जानने का स्वभाववाला) होने से कर्म के बन्ध को तथा मोक्ष को, और कर्म के उदय को तथा निर्जरा को मात्र जानता ही है ।

पूज्य कानजी स्वामी का प्रवचन

अब पूछते है कि ज्ञानी करता-भोगता नहीं – यह किस प्रकार है ? शिष्य पूछता है अर्थात् वह बहुत जिज्ञासा से बात सुनता है । भाई ! मात्र सुनने के लिए सुनना जुदी चीज है । शिष्य का आशय है कि ज्ञानी अनेक तरह के विकल्प करता हुआ, उन्हे वेदता हुआ दिखता है और आप कहते है कि वह करता नही, भोगता नही – ऐसा कैसे हो सकता है ? अहा ! आत्मा पर को, राग को, करता नही और वेदता नही – यह क्या चीज है ? ऐसे विस्मयकारी स्वभाव को जानने की

---

१ यदि नेत्र दृश्य पदार्थ को करता और भोगता हो तो नेत्र के द्वारा अग्नि जलनी चाहिए, और नेत्र को अग्नि की ऊष्णताका अनुभव अवश्य होना चाहिए, किन्तु ऐसा नही होता, इसलिए नेत्र दृश्य पदार्थ कर्त्ता और भोक्ता नही है ।

जिसे अन्तर में जिज्ञासा जगी है उस शिष्य को इस गाथा मे दृष्टातपूर्वक उत्तर देते हैं।

"जिसप्रकार इस जगत में नेत्र दृश्य पदार्थ से अत्यन्त भिन्नता के कारण उसे करने-वेदने मे असमर्थ होने से दृश्य पदार्थ को करता नहीं और वेदता नहीं..."

पहले जगत का अस्तित्व सिद्ध किया है, छह द्रव्यमय जगत की मौजूदगी बताई है। जगत है – इसप्रकार उसकी अस्ति सिद्ध करके बात करते हैं कि यह नेत्र दृश्य अर्थात् देखने योग्य पदार्थ से अत्यन्त भिन्न है। भाई! यह आँख जिस पदार्थ को देखती है, उस देखने योग्य पदार्थ से अत्यन्त भिन्न है, इसलिए वह (आँख) उन्हे करने और वेदने मे असमर्थ है। देखो, यह सिद्धान्त कहा कि दृश्य पदार्थ से आँख भिन्न है और आँख से दृश्य पदार्थ भिन्न है। जहाँ ऐसी परस्पर भिन्नता है, वहाँ आँख भिन्न वस्तु को करे और वेदे कैसे? जो अपने से अभिन्न हो उसे करे और वेदे, परन्तु भिन्न वस्तु को – पर को करे और वेदे, यह कैसे बने? जिसे आँख स्पर्श भी नही करती उसे वह करे और भोगे यह कैसे बने? भाई! आँख जगत की चीज को देखती है, पर वह जगत की दृश्य वस्तु को करती नही और वेदती भी नही।

अब कहते है – यदि ऐसा न हो तो अग्नि को देखने से, संधुक्षरण की तरह, अपने को (नेत्र को) अग्नि का कर्तृत्व (जलाना) और लोहे के गोले की तरह अपने को (नेत्र को) अग्नि का अनुभव दुर्निवार होना चाहिए।

"देखा? भिन्नपने के कारण आँख दृश्य पदार्थ को करे और वेदे तो नही, परन्तु यदि करे और वेदे तो अग्नि को देखने से, सन्धुक्षरण अर्थात् अग्नि को चेताने वाले – सुलगाने वाले की तरह आँख को अग्नि का कर्त्तापना आ जायगा।

जैसे, सन्धुक्षण सुलगाता है वैसे (पर से भिन्न होने पर भी आँख यदि पर को करे तो) आँख को भी पर को सुलगाने (जलाने) का प्रसंग आ जाएगा, अर्थात् जिस पदार्थ पर नजर पड़ेगी उस पदार्थ के सुलगाने का प्रसग आएगा; और यदि आँख पर को वेदे तो जैसे लोहे का गोला अग्नि मे ऊष्ण हो जाता है वैसे अग्नि को देखने मात्र से आँख अग्निमय हो जाएगी, जल जाएगी। यदि आँख भिन्न वस्तु का अनुभव (वेदन) करे तो आँख से भिन्न अग्नि के देखनें मात्र से आँख अग्निमय हो जाएगी, उसे लोहे के गोले की तरह अग्नि का अनुभव दुर्निवार हो जाएगा।

देखो, यहाँ दो बाते की है – एक तो यदि आँख पर को – भिन्न वस्तु को करे तो जैसे सन्धुक्षण अग्नि को करता है, वैसे आँख की जहाँ नजर पड़े वहाँ पदार्थ में अग्नि प्रगट हो जाए। यदि आँख पर को करे तो जैसे सन्धुक्षण द्वारा अग्नि जलती है वैसे आँख के द्वारा अग्नि जलना चाहिए।

दूसरी बात यह है कि यदि आँख पर को वेदे ता अग्नि को देखने मात्र से ही आँख को अग्नि की उष्णता का अनुभव होना चाहिए, पर ऐसा नही है, अर्थात् आँख अग्नि को देखती तो है, पर वह अग्नि का अनुभव नही करती। यदि वह उसमें एकाकार हो तो अनुभव हो, पर अग्नि तो आँख से भिन्न चीज है। आँख भिन्न वस्तु को करती भी नही और वेदती भी नही।

आचार्यदेव कहते है – 'ऐसा तो नही होता' अर्थात् आँख से कोई जलता भी नही, और आँख अग्नि को वेदती भी नही। देखनें योग्य पदार्थ को आँख देखे; देखे इतना सम्बन्ध तो है, पर उसे करे और भोगे – ऐसा सम्बन्ध नही है। इसलिए दृश्य पदार्थ को नेत्र करता भी नही और वेदता भी नही।

"परन्तु केवल दर्शनमात्र स्वभाववाला होने से वह सबको केवल देखता ही है।" देखो ? आँख का तो केवल देखना मात्र स्वभाव है और इसलिए वह सबको केवल देखती ही है; किसी को करे या वेदे – ऐसा नही है। यदि करे और वेदे तो देखने मात्र से ही वह दृश्य पदार्थ मे अग्नि को करे और स्वय ही अग्नि को वेदे, परन्तु अग्नि को आँख करती नही, तथा अग्नि को देखने पर जलती भी नही, इसलिए, आँख सबको देखती ही है, किसी को करती नही, वेदती भी नही। यह दृष्टान्त कहा, अब इसे सिद्धान्त मे उतारते हैं।

"उसीतरह ज्ञान भी, स्वयं (नेत्र की तरह) देखनेवाला होने से, कर्म से अत्यन्त भिन्नपने के कारण निश्चय से उसे करने-वेदने में असमर्थ होने से कर्म को करता नहीं और वेदता नहीं।"

ज्ञान अर्थात् ज्ञान स्वभावी आत्मा नेत्र की तरह देखने वाला है, वह पर को देखता है – ऐसा व्यवहार सबध है। आँख जैसे पर को – दृश्य को देखती है वैसे भगवान आत्मा पर को देखता जरूर है, परन्तु देखने के अलावा पर का करना और वेदना उसमे नही है।

अहाहा ! नेत्र की तरह, ज्ञान अर्थात् भगवान आत्मा पर को देखता तो है, किन्तु पर को देखता है – ऐसा कहना व्यवहार है, परन्तु इतना व्यवहार यहाँ स्वीकार किया है।

प्रश्न – जैसे आत्मा पर को देखता है – ऐसा व्यवहार है, वैसे पर को करता है – ऐसा व्यवहार भी होना चाहिए न ?

उत्तर – नही, ऐसा नही है। आँख पर को देखती है इससे आँख को – अग्नि वगैरह को करती है या वेदती है – ऐसा नही है, इसीप्रकार भगवान आत्मा का पर के साथ उसे देखने का सबध तो है; इतना तो व्यवहार सबध है, पर अन्य को करे या वेदे – ऐसा नही है, समझ मे आया ?

अहाहा ! भगवान आत्मा कर्म से अत्यन्त भिन्न है। अकेला भिन्न ही नही, अत्यन्त भिन्न है। जैसे, आँख दृश्य पदार्थ से भिन्न है वैसे, शुद्ध-चिदानन्दमय चैतन्यरत्नाकर प्रभु कर्म से अत्यन्त भिन्न है, पर पदार्थ से अत्यन्त भिन्न है। अत्यन्त भिन्नपने के कारण, जैसे आँख दृश्य पदार्थ को देखती है, परन्तु करती-वेदती नही है; वैसे ही भगवान आत्मा पर पदार्थ को देखे-जाने जरूर, परन्तु पर को करता या भोगता नही, भोग सकता भी नही।

प्रश्न – आत्मा देखने-जानने की अपनी क्रिया करता है तो फिर साथ में पर का भी करता है या नही ?

उत्तर – अपने परिणाम को भले करे और भोगे। (यहाँ तो निर्मल परिणाम को करने-भोगने की बात है, मलिन की बात नही।) आत्मा परको देखे-जाने इतने सबध मात्र से पर को करे और पर को वेदे – ऐसा कहाँ से आया ? पर को देखना, इतना तो इसका सबध है, परन्तु इतने सबध मात्र से वह पर का क्या करे ? कुछ न करे। क्या वह हाथ-पैर को हिलाता है ? आँख को हिलाता है, या भाषा बोलता है ? कुछ नही करता। जो चीज है उसे देखता है, परन्तु देखने पर भी वह पर का कुछ करदे – ऐसा नही है। आत्मा देखनेवाला होने पर भी कर्म से अत्यन्त भिन्नपने के कारण कर्म को नही करता, रागादि को नही करता।

ज्ञान अर्थात् ज्ञानस्वभावी आत्मा का परको देखने-जानने का सबध तो कहा (व्यवहार से) पर निश्चय से उसमें देखने के अलावा परवस्तु को करने-वेदने की असमर्थता है। कर्म को करे और वेदे – ऐसी उसमे असमर्थता है, इसलिए ज्ञान अर्थात् आत्मा कर्म को करता या वेदता नही है।

यह सब सारे दिन व्यापार-धन्धे का ऊधम चलता है न ? स्वय दुकान पर बैठा हो और माल आए-जाए, पैसा आए और जाए, तो यहाँ कहते हैं कि आत्मा का इन सबके साथ देखने मात्र का सबध है, अर्थात् आत्मा इन्हे जानता जरूर है, परन्तु जानने के साथ-साथ वह सबको करे और वेदे – ऐसा उसका स्वभाव नही है। जैसे आँख अग्नि वगैरह दृश्य पदार्थ मे कुछ करती नही, वैसे भगवान आत्मा कर्म या कर्म से प्राप्त चीजो मे कुछ करता या वेदता नही है।

"परन्तु केवल ज्ञानमात्रस्वभाववाला (जानने के स्वभाव वाला) होने से कर्म-बंध को तथा मोक्ष को, कर्म के उदय को तथा निर्जरा को केवल जानता ही है।"

देखा? आत्मा का केवल ज्ञानमात्र स्वभाव है, जानन-मात्र स्वभाव है, अर्थात् क्या ? कि रागादि करने का आत्मा का स्वभाव नही; परवस्तु तो कही दूर रही, राग करना आत्मा का स्वभाव नही है। केवल ज्ञानस्वभाव कहा न ? अर्थात् जाने सबको परन्तु करे किसी को नही, ऐसी बात है। विषयवासना के काल मे सयोग को देखे, पर वह सयोग को और सयोगी-भावरूप वासना को करता नही, भोगता नही। आत्मा सामने की वस्तु को करता और भोगता हुआ दिखता है न ? परन्तु यहाँ कहते है – ज्ञानस्वभावी आत्मा का ज्ञानमात्र स्वभाव होने से वह पर का करता और भोगता नही है।

देखो, यहाँ ज्ञान केवल ज्ञानमात्रस्वभाववाला है – ऐसा कहकर एकान्त किया है, पर बापू ! ये तो सम्यक् एकान्त है भाई ! क्योकि भगवान आत्मा का एकान्त ज्ञानस्वभाव ही है। कथचित् ज्ञानस्वभाव और कथचित् कर्त्ता-स्वभाव, ऐसा आत्म वस्तु का स्वरूप ही नही है, ऐसा ज्ञान का स्वरूप ही नही है।

प्रश्न -- कथचित् बध-मोक्ष का कर्त्तापना कहो तो अनेकान्त हो ?

उत्तर – भाई ! ऐसा नही है, भगवान आत्मा केवल ज्ञानमात्र स्वभाववाला होने से जानना तो करे, पर वह बंध-मोक्ष को नही करता,इसी प्रकार वह राग को भी नही वेदता । ज्ञान बंध को – राग को जाने, पर उसे वह करे या वेदे – ऐसा उसका स्वरूप ही नही है । पर का अर्थात जवाहरात, हीरा, माणक मोती और कपडा वगैरह का करना तो कही दूर रह गया ।

अहाहा ! यह आत्मा एक रजकण से लेकर सारी दुनिया को जानता है, परन्तु जानने के संबंध मात्र से इसे पर को तथा राग को करने और वेदने का सबंध हो जाये – ऐसी वस्तु नही है । ज्ञान स्वभावी वस्तु बहुत सूक्ष्म है भाई ! लोग तो इसे स्थूल संयोग के और राग के सबध से मानते है, पर यहाँ कहते है – राग से और पर से भिन्न शुद्ध ज्ञानतत्व केवल ज्ञानमात्र स्वभाव वाला है और इसलिये वह कर्म के बन्ध को मात्र जानता ही है । क्या कहा ? कर्म का जो बंध होता है, उसे परज्ञेय रूप से जानता है, परन्तु करता है या भोगता है – ऐसा नही है । बहुत कठिन बात है । शुभभाव के पक्षवालों को यह बात कठिन पड़े, पर क्या करे ? वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है ।

ज्ञान अर्थात् आत्मा को ज्ञानमात्र स्वभाववाला कहा, वहाँ वस्तु मे – आत्मा मे अकेला ज्ञान है – ऐसा न जानना, पर इसमे अन्य अनन्त गुण साथ ही अविनाभाव रूप से रहते है – ऐसा जानना । इसमे राग का या पर करना नही, इसलिये "ज्ञानमात्र भाववाला" कहा है । यह बोले नहीं, खाये नही, चले नही, अन्य को उपदेश दे नही, अन्य से उपदेश ले नही, पर का कुछ करे नही, ऐसा ज्ञानमात्र तत्व आत्मा है ।

प्रश्न – कल दोपहर के प्रचवन मे तो ऐसा आया था कि 'गुरु के वचनों को पाकर'– इसका क्या आशय है ?

उत्तर – भाई ! स्व.के आश्रय से इसे समदृष्टि प्रगट हुई तो कहा कि "गुरु के वचनो को पाकर"; यह तो उस-उस काल मे उपस्थित बाह्य निमित्त का ज्ञान कराने के लिये व्यवहार से कहा गया है। गुरु के वचनो को कोई लेता है – ऐसा वस्तु का स्वरूप नही है।

यहाँ कहते है – केवल ज्ञानमात्र स्वभाववाला होने से आत्मा कर्म के बध को करता नही, मात्र जानता ही है। देखो, शास्त्र मे आता है कि चौथे गुणस्थान मे इतनी प्रकृति सत्ता मे होती है, इतनी का उदय होता है, इतनी प्रकृतियाँ बधती हैं और इतनी की उदीरणा होती है; परन्तु भाई ! आत्मा तो जो कुछ होता है, उसे जानता ही है, करता नही। कर्म के उदयादि नजदीक की चीज को भी मात्र जानता ही है, करता नही, तो फिर पर चीज को करे, ये बात कहाँ रही ? बोलना-चालना पर की मदद करना, पर से मदद लेना, आदि पर की क्रिया करना आत्मा के स्वरूप में नही है।

देखो, इसमे एक "भाव" नाम का गुण है। इस गुण के कारण उसे प्रतिसमय नियत पर्याय होती ही है। अहा ! जब ऐसे द्रव्य का स्वीकार हुआ तब पर्याय मे जो बध,राग आदि है, उसे वह जानता ही है करता नही। उस गुणस्थान के अनुसार कर्म का उदय आता है और उदीरणा होती है, पर इसे वह करता नही। अहाहा ! यह ३२० गाथा बहुत ऊँची है, आखिरी हद है। इसमे बहुत खीचकर तू कहे तो, यह जानता-देखता है – ऐसा हम कह सकते है। वास्तव मे तो जानना-देखना (परका) भी व्यवहार है।

अहाहा ! आत्मा स्वय अपने को जानता है – यह निश्चय है और पर को जानता है – यह व्यवहार है, पर को करे और वेदे यह बात तो है ही नही। भाई ! यहाँ तो यह

कहना है कि तू अधिक आग्रह करे तो यह देखता-जानता है, बस इतना रख, पर का करना और वेदना तो आत्मा में है ही नही। ज्ञानस्वरूपी भगवान आत्मा मोक्ष को करता है – ऐसा भी नही है।

प्रश्न – तो इसका पुरुषार्थ क्या हुआ ?

उत्तर – बापू ! आत्मा जानता है यही इसका पुरुषार्थ है। जानना इसका स्वभाव है, इसलिये जानने के प्रति वीर्य जागृत हो, यही पुरुषार्थ है, क्योंकि मैं करूँ तो पर्याय (पर का कार्य) हो – ऐसा वस्तु के स्वरूप मे कहाँ है ?

ज्ञानमात्र स्वभाववाला होने से आत्मा बन्ध को नही करता तथा मोक्ष को नही करता। मोक्ष की पर्याय उस काल में होनेवाली है, वही होती है, जो है, उसे करना क्या ? जानने वाले को मोक्ष की पर्याय को करना कहाँ है ? बापू ! मोक्ष की पर्याय स्वय होती है। 'है' उसे करना तो परस्पर विरुद्ध हो गया। जो 'है' उसे करना तो विरुद्ध है, 'है' उसे बस जानना ही है, यह वस्तुस्वरूप है।

द्रव्य सत् है, गुण सत् है और एक समय की पर्याय भी सत् है। मोक्ष की जो अवस्था होती है वह सत् है। जो सत्पनें होती ही है उसे मैं करता हूँ – यह कैसे हो ? सत् है; जो है रूप से है, उसे क्या करूँ ? अहा ! जिसे यथार्थ सम्पूर्ण द्रव्य-दृष्टि हुई है, वह मोक्ष को भी जानता ही है, मोक्ष को करता नही। ऐसी बात है बापू ! यह बात बहुत सूक्ष्म है। लोग तो अब बाहर की क्रिया करने मे ही उलझ गये है, परन्तु आत्मा ज्ञानमात्र स्वभाववाला होने से बन्ध को तथा मोक्ष को नहीं करता, मात्र जानता ही है।

आगे कहते है – "**ज्ञानमात्र स्वभाववाला होने से कर्म के उदय को तथा निर्जरा को जानता ही है।**" अहाहा ! कर्म

का उदय भी है, आत्मा उदय को पररूप से जानता है, इसके अलावा अन्य (करता है कि वेदता है) कुछ नही है। निर्जरा को भी बस जानता है, करता नही।

अशुद्धता का गलना, शुद्धता का बढना और कर्म का खिर जाना – इसप्रकार निर्जरा तीन प्रकार की है। इसमे अशुद्धता का गलना व्यवहारनय से है और कर्म का टलना असद्भूत व्यवहारनय से है। शुद्धता का बढना वास्तविक निर्जरा है। एक समय मे ये तीनो ही है। अब ये है, इन्हें करना क्या ? शुद्धता का बढना एक समय का (उस-उस समय मे) सत् है, यह पर्याय सत् – विद्यमान है, उसे करना क्या ? अहाहा ! शुद्धोपयोग की स्थिरता होने पर वहाँ शुद्धता का बढना होता है। अब जो है, उपजता है, इसे करना क्या ? जैसे मोक्ष उपजता है, वैसे निर्जरा भी (पर्याय होने से) उत्पन्न होती है। जो अपना अस्तित्व लेकर उत्पन्न होता है, उसे करना है – यह बात ही कहाँ रही, इसलिए निर्जरा को भी वह नही करता, मात्र जानता ही है।

अहाहा ! पर्याय के क्रमबद्ध प्रवाह मे अपने स्वकाल मे निर्जरा होती है, उसे करना क्या ? अब यह बात तो समझ मे आती नही इसलिये लोग कहते हैं कि दूसरो की सहायता करना, गरीबो के आँसू पोछना, एक-दूसरे को मदद करना, अन्न, वस्त्र, औषधि देना इत्यादि धर्म है। 'जनसेवा वह प्रभुसेवा' लोग ऐसा कहते है, क्योकि अनन्त काल से उनकी दृष्टि पराधीन है,परन्तु बापू ! यह तो विपरीत दृष्टि है। यह वीतरागता का मारग नही है प्रभु !

जैसे, ज्ञानस्वभावी त्रिकाली आत्म-द्रव्य सहज सत् है, वैसे, उसकी एक समय की पर्याय भी वर्तमान सत् ही है। जैसे त्रिकाली को करना नही, वैसे वर्तमान वर्तती पर्याय को भी नही

करना है। बहुत सूक्ष्म बात है प्रभु ! जैसे आत्म वस्तु त्रिकाल सत् है वैसे निर्जरा और मोक्ष की पर्याय भी उस-उस काल में सत् ही है। अब जो सत्पने 'है', इसे क्या करना ? इसे मात्र जानना है। अहा ! गजब बात की है। यह सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार है न ? यहाँ तो जाननेरूप पर्याय निजरा और मोक्ष को जानती है – ऐसा कहा है, करती है, ऐसा नही कहा, परन्तु वास्तव मे तो निर्जरा को और मोक्ष को उस-उस काल मे जाने – ऐसी जाननेरूप पर्याय स्वत होनेवाली ही है, वही होती है। क्या कहा ? निर्जरा और मोक्ष की पर्याय उस-उस काल मे विद्यमानरूप से है, उसे ज्ञान जानता है – ऐसा कहा जाता है, परन्तु जानने की पर्याय भी उस काल में उसी प्रकार सत् है। निर्जरा और मोक्ष है, इसलिये जाननेवाली पर्याय है – ऐसा नही है। अहा ! ऐसा बहुत सूक्ष्म स्वरूप है।

भाई ! यहाँ तो सत्रूप से सिद्ध करते है। एक समय की पर्याय है,पर वस्तु है;जो है उसे ज्ञान जानता है – ऐसा भलेकहो, वास्तव मे तो जाननेरूप पर्यायभी उस काल मे सत् ही है। पर-वस्तु है, पर्याय है, इसलिये ज्ञान उसे जानता है – ऐसा नही है। जो है उसे उसी काल मे उसी प्रकार से जाने – ऐसी ज्ञान की पर्याय भी स्वय सत् है। अन्य वस्तु है, इसलिये वह उसे जानती है – ऐसा नही है। जानने वाली पर्याय अन्य वस्तु की अपेक्षा नही रखती, वह स्वय अपने क्रम मे जाननेरूप मे अपने से ही विद्यमान है। अन्य को जानती है – ऐसा कहना तो व्यवहार है।

यहाँ चार बोल लिये है। अब बाकी क्या रहा ? बन्ध, मोक्ष, उदय और निर्जरा को उस-उस काल मे ज्ञान जानता ही है। राग – बन्ध होता है, उसे उस काल मे ज्ञान स्वय अपने से जानता हुआ प्रगट होता है, राग और बन्ध है, इसलिये ज्ञान जानता है – ऐसी अपेक्षा ज्ञान को नही है। राग की – बन्ध की

अपेक्षा रखकर जानने की पर्याय होती है – ऐसा नही है। वास्तव में इसे ज्ञान जानता है – ऐसा कहना व्यवहार है। अहाहा ! अनन्त गुण, अनन्त पर्यायें, बन्ध, मोक्ष आदि को उस-उस काल मे ज्ञान की पर्याय उस-उस रूप से स्वय जानती है – इसप्रकार वह स्वत स्वतन्त्र उत्पन्न होती है।

कुछ लोग कहते है – जो आत्मा को पर का करता न माने वह दिगम्बर जैन नही। अरे प्रभु ! यह तू क्या कहता है ? ये दिगम्बराचार्य क्या कहते हैं ? यह तो देख ! तू कर्त्ता तो नही, पर वास्तव मे तो पर का जाननेवाला भी नही है। जाननेवाली पर्याय जाननेवाले को जानती हुई सत्पने उत्पन्न होती है। यहाँ तो ज्ञान, बन्ध, उदय आदि को जानता है – ऐसा व्यवहार सिद्ध किया है। समझ मे आया ? जाननेवाली पर्याय और बन्ध-मोक्ष आदि पर्याय तथा अनन्त गुणो की अनन्त पर्याये अक्रम से (एक साथ ही) उत्पन्न होती है, उन्हे उस-उस काल मे उसी प्रकार से ज्ञान जानता है – यह व्यवहार है।

प्रश्न – 'जानने' मे गर्भितरूप से कर्त्तापना भी आया कि नही ?

उत्तर – अहा ! जानूँ अर्थात् जाननेरूप क्रिया करूँ – ऐसा भी नही है। ये जानने की पर्याय उस काल मे सहजपने ही सत्रूप है, और होती है। अब जहाँ ऐसा वस्तुस्वरूप है, वहाँ मैं यह करूँ और वह करूँ, मैंने बच्चो को पाला-पोषा और बडा किया, मैंने व्यापार-धधा किया और बहुत पैसा कमाया – यह बात ही कहाँ रहती है ? बापू ! ये तो सब मिथ्या कल्पना ही है, सब गप – झूठ है।

अब जहाँ ज्ञानपर्याय अपनी निर्जरा और मोक्ष की पर्याय को भी जाने का काम करती है – यह भी कथनमात्र है, वहाँ पर पदार्थ को – रजकणो को और स्कंध को यह पलटावे

यह बात ही कहाँ रहती है ? आत्मा रोटी बनाये और खाये तथा व्यापार करे -- ये सब बाते झूठ ही है बापू ! ये तो उस-उस समय मे वह (रोटी वगैरह पर्याय) सत् है, इसलिये इसप्रकार परिणमन होता है। उसमें तेरे हेतु की कहाँ जरुरत है ? और उस-उस काल मे ज्ञान उसे ऐसा ही जानता है, इसमें उस पर्याय की कहाँ अपेक्षा है ? जैनतत्त्व बहुत गम्भीर है भाई ! यहाँ तो सिद्ध करना है कि, भगवान ! तू ज्ञान स्वरूप है तो तू इन्हें(बध-मोक्ष आदि को)जाने, बस इतना मान, पर इसे करे और वेदे, यह तेरा स्वरूप ही नही है। अहो ! ऐसा मारग है।

प्रश्न – एकेन्द्रिय आदि की रक्षा करो, हिंसा न करो, क्या यह जैन का मारग नही है ?

उत्तर – ये सब व्यवहार के वचन है भाई ! क्या तू अन्य जीव रक्षा कर सकता है ? कभी नही। उस-उस काल में हिसा होने वाली है ही नही, रक्षा होने वाली है, उसे ज्ञान जानता है, वह भी परजीव की रक्षा होती है – इसकी अपेक्षा रखकर ज्ञान होता है – ऐसा नही है। अहाहा ! सत् का ऐसा अलौकिक स्वरूप है।

श्री योगीन्द्रदेव भी कहते है --

ण वि उपज्जइ ण वि मरइ, बन्धु ण मोक्खु करेइ।
जिउ परमत्थे जोइया, जिणवर एउ भणेइ ॥

श्री जयसेनाचार्य ने इसकी टीका करते हुए लिखा है कि '**जिनवर ऐसा कहते है कि**', परन्तु भाई ! वाणी, वाणी के कारण से खिरती है, परन्तु भगवान उस काल मे निमित्त है, वैसे वाणी भी उस काल मेस्वत. विद्यमान है। (किसी अन्य के कारण कोई है – ऐसा नही है) यह तो सर्वोत्कृष्ट निमित्त का ज्ञान कराने के लिये कहा कि "जिणवर एउ भणेइ"।

जिनवर कहते है – हे योगी ! योग को आत्मा मे

जोडने वाले हे योगी ! परमार्थ से जीव उपजता भी नही, और बन्ध तथा मोक्ष को भी नही करता । इसका अर्थ ही यह हुआ कि आत्मा का जो ज्ञानमात्र स्वभाव है, उसकी तरफ जहाँ जानने का लक्ष्य हुआ, वहाँ सब (करना) छूट गया, बस जो है, उसे यह जानता ही है । निर्जरा को और मोक्ष को भी ये जानता ही है । साधकदशा के काल मे निर्जरा को जाने और साध्य-काल में मोक्ष को जाने, बस जाने इतना ही, वहाँ जानने की पर्याय भी उस काल मे वैसी ही अपने से उत्पन्न होती है ।

यहाँ कहते है—परमार्थ से जीव उपजता नही और मरता भी नही । उत्पन्न नही होता, किसमे ? कि पर्याय मे । परमार्थ से उसमे उत्पाद भी नही और व्यय भी नही । प्रवचनसार गाथा १०२ में आया है कि जो पर्याय उत्पन्न होती है उसे ध्रुव की अपेक्षा नही है । अब जहाँ इसे अपने ध्रुव की अपेक्षा भी नही, वहाँ पर की अपेक्षा की तो बात ही कहाँ रही ? बन्ध-मोक्ष इत्यादि जैसा ज्ञेय हो, ज्ञान वैसा ही उस काल मे जानता है, पर उसे (ज्ञान की पर्याय को) बध-मोक्ष आदि ज्ञेय की अपेक्षा नही है । अहाहा ! जाननेवाले ज्ञान में, जानने योग्य ज्ञेय बराबर आये, इसलिये ज्ञान उसें जानता है—ऐसी अपेक्षा लेकर ज्ञानपर्याय उत्पन्न नही होती है ।

अहाहा ! पूर्णानन्द का नाथ पूर्ण ज्ञानघन अकेला ज्ञान स्वभावमय भगवान आत्मा है, उसकी पर्याय मे (ज्ञानपर्याय मे) अनन्त पर्याये औरद्रव्य-गुण ज्ञात होते है; वे पर्याये सहज होती है, उन्हे मैं उत्पन्न करता हूँ—ऐसा नही है । बन्ध को, मोक्ष को, उदय को, निर्जरा को केवल जानता हूँ, जो है उसे मात्र जानता ही हूँ, परन्तु करता हूँ या भोगता हूँ—ऐसा नही है । पर की दया करना और पर की मदद करना इत्यादि बाते तो अत्यन्त तत्त्व-विरुद्ध है, यह यथार्थ मार्ग नही है ।

नयों दोनों की सफलता

जीव का स्वरूप दो नयों से बराबर ज्ञात होता है। अकेले द्रव्यार्थिकनय या अकेले पर्यायार्थिकनय से ज्ञात नही होता, इसलिए दोनो नयो का उपदेश ग्रहण करने योग्य है।

एकान्त द्रव्य को ही स्वीकार करे और पर्याय को स्वीकार न करे, तो पर्याय के बिना द्रव्य का स्वीकार किसने किया ? काहे मे किया ? और मात्र पर्याय को ही स्वीकार करे, द्रव्य को स्वीकार न करे तो पर्याय कहाँ दृष्टि लगाकर एकाग्र होगी ? इसलिए दोनो नयो का उपदेश स्वीकार करके द्रव्य-पर्याय की सन्धि करनेयोग्य है।

द्रव्य-पर्याय की सन्धि का अर्थ क्या ? पर्याय को पृथक् करके लक्ष मे न लेते हुए, अन्तर्मुख करके द्रव्य के साथ एकाकार करना अर्थात् द्रव्य-पर्याय के भेद का विकल्प तोडकर एकतारूप निर्विकल्प-अनुभव करना ही द्रव्य-पर्याय की सन्धि है – यही दोनो नयो की सफलता है।

पर्याय को जानते हुए उसी के विकल्प मे रुक जाए, तो वह नय की सफलता नही है, उसीप्रकार द्रव्य को जानते हुए यदि उसमे एकाग्रता न करे तो वह भी नय की सफलता नही है। द्रव्य-पर्याय दोनो को जानकर दोनों के विकल्प तोडकर पर्याय को द्रव्य मे अन्तर्लीन, अभेद, एकाकार करके अनुभव करने मे ही दोनो नयो की सफलता है।

—पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी

(आत्मधर्म वर्ष १६, अक १८२, जून, १९६०, कवरपृष्ठ २)

प्रवचनसार गाथा ११४ : तत्त्व प्रदीपिका टीका

उत्थानिका, मूल गाथा, संस्कृत छाया, अमृतचन्द्राचार्य कृत संस्कृत टीका एवं उसका हिन्दी अनुवाद

अथैकद्रव्यस्यान्यत्वानन्यत्वविप्रतिषधमुद्धुनोति –

दव्वट्ठिएण सव्वं दव्वं तं पज्जयट्ठिएण पुणो ।
हवदि य अण्णमणण्णं तक्काले तम्मयत्तादो ॥११४॥

द्रव्यार्थिकेन सर्वं द्रव्यं तत्पर्यायार्थिकेन पुन ।
भवति चान्यदनन्यत्तत्काले तन्मयत्वात् ॥

सर्वस्य हि वस्तुनः सामान्यविशषात्मकत्वात्तत्स्वरूप-मुत्पश्यतां यथाक्रम सामान्यविशेषौ परिच्छिन्दतो द्वे किल चक्षुषी, द्रव्यार्थिकं पर्यायार्थिकं चेति ।

अब एक ही द्रव्य के अन्यपना और अनन्यपना होने में जो विरोध है, उसे दूर करत है। (अर्थात् उसमें विरोध नही आता – यह बतलाते हैं।)

द्रव्यार्थनय से द्रव्य सब हैं; वही पयार्यायार्थ से ।
है अन्य, क्योकि उस समय तद्रूप है पर्याय से ॥

अन्वयार्थ – [द्रव्यार्थिकेन] द्रव्यार्थिक (नय) से [सर्वं] सब [द्रव्यं] द्रव्य है, [पुन च] और [पर्यायार्थिकेन] पर्यायार्थिक (नय) से [तत्] वह (द्रव्य) [अन्यत्] अन्य-अन्य है, [तत्काले तन्मयत्वात्] क्योकि उस समय तन्मय होने से [अनन्यत्] (द्रव्य, पर्यायो से) अनन्य है।

टीका – वास्तव मे सभी वस्तु सामान्य-विशेषात्मक होने से वस्तु का स्वरूप देखनेवालो के क्रमश. सामान्य और विशेष को जाननेवाली दो आँखे है – (१) द्रव्यार्थिक और (२) पर्यायार्थिक ।

तत्र पर्यायार्थिकमेकान्तनिमीलितं विधाय केवलोन्मीलितेन द्रव्यार्थिकेन यदावलोक्यते तदा नारकतिर्यग्मनुष्यदेवसिद्धत्वपर्यायात्मकेषुविशेषेषुव्यवस्थितंजीवसामान्यमेकमवलोकयतामनवलोकितविशेषाणां तत्सर्वं जीवद्रव्यमिति प्रतिभाति यदा तु द्रव्यार्थिकमेकान्तनिमीलितं विधाय केवलोन्मीलितेन पर्यायार्थिकेनावलोक्यते तदा जीवद्रव्ये व्यवस्थितान्नारकतिर्यग्मनुष्यदेवसिद्धत्वपर्यायात्मकान्विशेषाननेकानवलोकयतामनवलोकितसामान्यानामन्यदन्यत्प्रतिभाति । द्रव्यस्य तत्तद्विशेषकाले तत्तद्विशेषेभ्यस्तन्मयत्वेनानन्यत्वात् गणतृणपर्णदारुमयहव्यवाहवत् । यदा तु ते उभे अपि द्रव्यार्थिकपर्यायार्थिके तुल्यकालोन्मीलिते

इनमे से पर्यायार्थिक चक्षु को सर्वथा बन्द करके जब मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु के द्वारा देखा जाता है, तब नारकपना, तिर्यन्चपना, मनुष्यपना, देवपना और सिद्धपना – पर्यायस्वरूप विशेषो मे रहनेवाले एक जीवसामान्य को देखनेवाले और विशेषो को न देखनेवाले जीवो को 'वह सब जीवद्रव्य है' – ऐसा भासित होता है । और जब द्रव्यार्थिक चक्षु को सर्वथा बन्द करके मात्र खुली हुई पर्यायार्थिक चक्षु के द्वारा देखा जाता है, तब जीवद्रव्य मे रहनेवाले नारकपना, तिर्यन्चपना, मनुष्यपना देवपना और सिद्धपना – पर्यायस्वरूप अनेक विशेषो को देखनेवाले और सामान्य को न देखनेवाले जीवो को (वह जीवद्रव्य) अन्य-अन्य भासित होता है, क्योकि द्रव्य उन-उन विशेषो के समय तन्मय होने से उन-उन विशेषो से अनन्य है – कण्डे, घास, पत्ते और काष्ठमय अग्नि की भाँति । (जैसे घास, लकडी इत्यादि को अग्नि उस-उस समम घासमय, लकड़ीमय इत्यादि होने से घास, लकडी इत्यादि से अनन्य है; उसीप्रकार द्रव्य उन-उन पर्यायरूप विशेषो के समय तन्मय होने से उनसे अनन्य है, पृथक् नही है ।) और जब उन द्रव्यार्थिक और

विधाय तत इतश्चावलोक्यते तदा नारकतिर्यग्मनुष्यदेवसिद्धत्वपर्यायेषु व्यवस्थित जीवसामान्यं जीवसामान्ये च व्यवस्थिता नारकतिर्यग्मनुष्यदेवसिद्धत्वपर्यायात्मका विशेषाश्च तुल्यकालमेवावलोक्यन्ते । तत्रैकचक्षुरवलोकनमेकदेशावलोकनं, द्विचक्षुरवलोकनं सर्वावलोकनं । ततः सर्वावलोकने द्रव्यस्यान्यत्वानन्यत्वं च न विप्रतिषिध्यते ॥

पर्यायार्थिक दोनो आँखो को एक ही साथ खोलकर उनके द्वारा और इनके द्वारा (द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक चक्षुओं के द्वारा) देखा जाता है, तब नारकपना, तिर्यञ्चपना, मनुष्यपना, देवपना और सिद्धपना – पर्यायों मे रहनेवाला जीवसामान्य तथा जीवसामान्य मे रहनेवाले नारकपना, तिर्यञ्चपना, मनुष्यपना, देवपना और सिद्धत्व – पर्यायस्वरूप विशेष तुल्यकाल मे ही (एक ही साथ) दिखाई देते है । वहाँ एक आँख से देखा जाना, वह एकदेश अवलोकन है और दोनो आँखो से देखना, वह सर्वावलोकन (सम्पूर्ण अवलोकन) है । इसलिये सर्वावलोकन मे द्रव्य के अन्यत्व और अनन्यत्व विरोध को प्राप्त नही होते ।

भावार्थ – प्रत्येक द्रव्य सामान्य-विशेषात्मक है, इसलिये प्रत्येक द्रव्य 'वह का वह' भी रहता है और 'बदलता' भी है । द्रव्य का स्वरूप ही ऐसा उभयात्मक होने से द्रव्य के अनन्यत्व मे और अन्यत्व मे विरोव नही है । जैसे – मरीचि और भगवान महावीर का; जीवसामान्य की अपेक्षा से अनन्यत्व और जीव के विशेपो की अपेक्षा से अन्यत्व होने मे किसी प्रकार का विरोध नही है ।

द्रव्यार्थिकनयरूपी एक चक्षु से देखने पर द्रव्यसामान्य ही ज्ञात होता है, इसलिये द्रव्य अनन्य अर्थात् 'वह का वही' भासित होता है और पर्यायार्थिकनयरूपी दूसरी चक्षु से देखने

पर द्रव्य के पर्यायरूप विशेष ज्ञात होते है, इसलिए द्रव्य अन्य-अन्य भासित होता है। दोनो नयरूपी दोनो चक्षुओं से देखने पर द्रव्यसामान्य और द्रव्य के विशेष दोनो एकसाथ ज्ञात होते है, इसलिये द्रव्य अनन्य तथा अन्य-अन्य दोनो भासित होता है।

उत्थानिक व गाथा पर प्रवचन

यहाँ आचार्यदेव सामान्य-विशेषात्मक द्रव्य का स्वरूप बताते हुए कहते है कि द्रव्य सामान्यपने वैसे का वैसा ही अर्थात् अनन्य है और विशेषपने भिन्न-भिन्न – अन्य-अन्य है। अहाहा ! वस्तु पर्याय-अपेक्षा अन्य-अन्य होते हुए भी द्रव्य-अपेक्षा अनन्य ही है। यद्यपि यहाँ जीवद्रव्य पर अनन्यत्व व अन्यत्व घटित करेंगे, तथापि प्रत्येक द्रव्य,सामान्य अर्थात् वही का वही – अनन्य है तथा विशेष अर्थात् अन्य-अन्य भी है। द्रव्य के विशेष अर्थात् पर्याये स्वकाल मे अन्य-अन्य होते हुए भी उस द्रव्य से अनन्य ही है, द्रव्य से भिन्न नही है। भाई ! यह तो प्रत्येक द्रव्य के स्वरूप का कथन है।

कर्म, शरीर, परिवार, पैसा, इज्जत आदि के साथ आत्मा का कोई सम्बन्ध नही है, क्योकि ये सब परद्रव्य तो आत्मा से भिन्न ही है, अन्य ही है, अनन्य नही है। यहाँ तो द्रव्य को अपने मे ही अन्यत्व व अनन्यत्व होने मे विरोध नही है – यह बात सिद्ध करते है। प्रत्येक द्रव्य अपने स्वरूप मे कायम रहकर प्रतिसमय भिन्न-भिन्न अर्थात् अन्य-अन्य अवस्थारूप होता है, अत. पर्याय-अपेक्षा उसे अन्य-अन्य भी कहा जाता है और वह अवस्था उस द्रव्य की ही है, द्रव्य स्वय ही उस अवस्थारूप परिणमित हुआ है, इसलिए वह अनन्य भी कहा जाता है। अहाहा ! इसमे सारी दुनिया का परिचय दे दिया है।

देखो ! क्या सूक्ष्म तत्त्वज्ञान है। कहते है कि पर्याय मे जीव को नारकी आदि अनेकपना होते हुए भी जीव अनन्य

है, क्योकि आत्मा के साथ वह पर्याय तन्मय है। चाहे हिंसा के परिणाम हो या भक्ति-पूजा-दया-दान आदि के परिणाम हो या रौद्रध्यान के परिणाम हो – ये सभी परिणाम द्रव्य की पर्याय मे है। वे परिणाम भिन्न-भिन्न अवस्थारूप है, इसलिए आत्मा को अन्य-अन्य भी कहा जाता है और आत्मा उन परिणामो मे वर्तता है, इसलिए अनन्य भी कहा जाता है, पर-पदार्थो के साथ आत्मा का कोई सम्बन्ध नही है क्योकि वे तो सर्वथा भिन्न ही है, अनन्य नही हैं। यहाँ तो कहते है कि प्रत्येक द्रव्य की पर्याय अन्य-अन्य उत्पन्न होती हुई, द्रव्य से अनन्य है। अहाहा ! जो अन्य है, वही अनन्य है – ऐसा अविरोधपने सिद्ध करते है।

टीका पर प्रवचन

वास्तव में सभी वस्तु सामान्य-विशेषात्मक होने से वस्तु का स्वरूप देखने वालो के क्रमशः सामान्य और विशेष को जाननेवाली दो आँखें हैं - (१) द्रव्यार्थिक और (२) पर्यायार्थिक।

देखो, यहाँ द्रव्य शब्द का प्रयोग न करके 'वस्तु' कहा है। **सर्वस्य हि वस्तुनः** – ऐसा कहा है, क्योकि इसमे अनन्त शक्तियाँ बसी हुई है। अहाहा ! प्रत्येक द्रव्य को, चाहे वह परमाणु हो, आकाश हो या जीव हो – वस्तु कहा है, क्योकि उसमे अनन्त अन्वयी गुण बसे हुए है। द्रव्य अनत-अनत गुणो – शक्तियो द्वारा भरा हुआ है, इसलिये उसे वस्तु कहा है। द्रव्य मे बसी हुई शक्तियाँ तद्रूपपने द्रव्य की स्वय की हैं। ऐसा नही है कि दूसरे की शक्ति यहाँ वस्तु मे आ गई हो या वस्तु दूसरे की शक्तियो मे जा बसी हो। देखो, यह वस्तु का स्वरूप ! सबसे निकट अपना शरीर या स्त्री-परिवार आदि सब बिलकुल भिन्न भिन्न चीजे है, जबकि द्रव्य का विशेष अन्य-अन्य होते हुए भी द्रव्यसे अनन्य है, क्योकि वह विशेष – पर्याय द्रव्य से भिन्न

चीज नही है, इसी प्रकार वे भिन्न-भिन्न पर्याये भी बिलकुल भिन्न ही है – ऐसा नही है। यद्यपि वे पहले नही थी और बाद मे उत्पन्न हुई – इस अपेक्षा से उन्हे अन्य भी कहा है, तथापि उनमे द्रव्य वर्त्तता है – इस अपेक्षा से अनन्य भी है।

देखो ! **वास्तव में सर्व वस्तु सामान्य-विशेषात्मक होने से** – इस वाक्य मे सर्व अर्थात् अनत वस्तुओ के सम्बन्ध में कहा है, एक वस्तु के सबध मे नही कहा। प्रत्येक वस्तु स्वयं अपने से ही सामान्य-विशेषात्मक है; द्रव्यरूप से सामान्य और पर्याय-अपेक्षा विशेषरूप है – ऐसा द्रव्य का सामान्य-विशेषस्वरूप स्वत है। जैसे सामान्यपना – एकरूपपना द्रव्य का स्वरूप है, उसी प्रकार विशेषपना – अन्यरूपपना भी उसका स्वरूप ही है। विशेष अर्थात् पर्याय परसयोग या पर के द्वारा होती है – ऐसा नही है। प्रत्येक द्रव्य की उस-उस समय की वह विशेष अवस्था पहले नही थी और बाद मे हुई, इसलिए वह भिन्न द्रव्य के कारण हुई है – ऐसा नही है। पहले नही थी और बाद में हुई – इस अपेक्षा से पर्याय अन्य है, तो भी उस विशेष – पर्याय मे सामान्य वर्त्तता है, इसलिये वह अनन्य भी है, वह सामान्य से भिन्न चीज नही है। जैसे अन्य सभी परद्रव्य बिलकुल भिन्न है, वैसे पर्याय, सामान्य से भिन्न नही है।

देखो ! एक आत्मा का दूसरे आत्मा से कोई सम्बन्ध नही है। यहाँ सामान्यपने सभी आत्माएँ एक है और विशेषपने भिन्न है – ऐसा नही है। अथवा, वे सामान्यपने भिन्न है और विशेषपने एक है – ऐसा भी नही है। इसीप्रकार अन्य समस्त आत्माएँ तथा अनत परमाणु इस आत्मा से सामान्य-अपेक्षा एक है – ऐसा भी नही है। अथवा, सामान्य-अपेक्षा एक तथा विशेष-अपेक्षा भिन्न है – ऐसा भी नही है। यहाँ तो द्रव्य स्वयं ही अन्य-अन्य और स्वय ही अनन्य है – यह बात कही जा रही है।

अहाहा ! अपने द्रव्य में प्रगट होनेवाली प्रत्येक पर्याय का काल अर्थात् क्रमानुपाती स्वकाल है। (यह बात गाथा ११३ मे कही जा चुकी है) जो पर्याय स्वकाल मे क्रमानुसार आनेवाली थी, वही पर्याय आई है। पूर्व पर्यायो को अपेक्षा से उसे अन्य कहते हैं, परन्तु वस्तु की अपेक्षा अनन्य है। इसलिए वह पर्याय किसी अन्य से हुई है – ऐसा है ही नही।

भाई ! भाषा तो सरल है, परन्तु उसका भाव बैठना[1] कठिन है, तथापि न बैठे – ऐसा भी नही है। समयसार कलश ६० की पांडे राजमलजी कृत बालबोधिनी टीका मे आता है कि "ज्ञान भिन्न व क्रोध भिन्न – ऐसा अनुभवना वस्तुत कठिन ही है, पर वस्तु का शुद्धस्वरूप विचारने पर भिन्नपनेरूप स्वाद आता है (आत्मज्ञान होता है)"। यह भाव बैठना कठिन तो है, परन्तु द्रव्यसामान्यरूप भगवान आत्मा को देखने से अन्तर मे भाव बैठ जाता है। भले ही देखनेवाली पर्याय विशेष है, परन्तु वह देखती है सामान्य को। यह पर्याय ऐसा मानती है कि मैं अखण्ड एक ज्ञायकस्वरूप विराजमान हूँ। अहाहा ! इस पर्याय का विषय मात्र पर्याय न रहकर द्रव्य बन जाता है, तब अन्तर मे भाव बैठ जाता है।

यहाँ कहते है – वास्तव मे सर्व वस्तु सामान्य-विशेषात्मक है। इसका यह अर्थ है कि वस्तु किसी अन्य से बनी है या कोई ईश्वर इसका कर्त्ता है – ऐसा नही है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य की पर्याय को नही कर सकता। सर्व वस्तु सामान्य-विशेषात्मक है अर्थात् कायम रहने की अपेक्षा से सामान्यरूप और पलटने की अपेक्षा से विशेषरूप है। सामान्य और विशेष – ये दोनो द्रव्य के स्वरूप है। आगे भी द्रव्य का स्वरूप दो रूप है – ऐसा आएगा।

---

१ बैठना=समझ मे आना।

प्रश्न – प्रिय पत्नी और पुत्र के साथ भी आत्मा का सबंध नही है क्या ?

उत्तर – भाई ! किसकी पत्नी और किसका पुत्र ? जहाँ वस्तु का विशेष भी मात्र एकसमय टिकता है, वहाँ पत्नी-पुत्रादि आत्मा के है – यह बात कहाँ रही ? प्रभु ! प्रत्येक वस्तु कायम रहने की अपेक्षा ध्रुव है, तो भी उसका विशेष एकसमय मात्र ही टिकता है। पर्याय द्रव्य को होते हुए भी एकसमय मात्र ही टिकती है, इसलिये पूर्व पर्याय की अपेक्षा से उसे अन्य भी कहते है तथा उसमे द्रव्य वर्त्तता है, इसलिये अनन्य भी कहा, परतु आत्मा से पर का तथा परमाणु से परमाणु का परस्पर कोई सबध नही है। लोगो को यह बात कठिन लगती है, परतु उन्हे विचार करने की फुरसत ही कहाँ है ? सारा दिन धधा-व्यापार, कुटुम्ब-परिवार की सम्हाल और दुनिया के जजाल में ही बीत जाता है और जिन्दगी ऐसे ही ऐसे पूरी हो जाती है।

मूल गाथा में वस्तु के सामान्य और विशेष को अनुक्रम से देखने की बात कही है परंतु टीका मे दोनो को साथ मे देखने की बात भी कहेगे।

वहाँ सर्वप्रथम कहते है कि **इनमे से पर्यायार्थिक चक्षु को सर्वथा बन्द करके** ··· । देखो, यहाँ से शुरू किया है। द्रव्यार्थिक चक्षु को बद करके – ऐसी शुरूआत नही की। द्रव्य को देखने के लिए पर्यायार्थिक आँख को सर्वथा बद कर दे। गजब बात है भाई ! पर्याय है अवश्य, परतु उसकी तरफ देखनेवाली दृष्टि को बद कर दे – इसप्रकार बात शुरू की है। पहले तो यह कहा कि वस्तु सामान्य-विशेषात्मक है। विशेष नही है – यह बात कहाँ है ? परतु अब विशेष को देखने की आँख बद करके – ऐसा कहा। अहाहा ! कथञ्चित् बद करके – ऐसा नही कहा, परतु पयार्यार्थिक चक्षु को सर्वथा बंद करके मात्र खुली

हुई द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा देखा जाता है – ऐसा कहा। अहाहा ! त्रिकाली द्रव्य को जानना है न ? तो विशेष नय की आँख बद करके, द्रव्य जिसका प्रयोजन है – ऐसे द्रव्यार्थिक नय की आँख से देख – ऐसा कहा है। आचार्यदेव की भाषा तो देखो। कहते हैं कि 'मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा ।'

अवस्था को देखनेवाली पर्यायार्थिक आँख को बद कर दे और द्रव्यसामान्य को देखने-जाननेवाली द्रव्यार्थिक आँख से से देख, इससे तुझे अवस्था मे द्रव्यसामान्यरूप भगवान आत्मा ज्ञात होगा। अवस्था को देखनेवाली आँख बद करके सामान्य को देखने पर भी, देखनेवाली विशेष पर्याय तो रहेगी, परतु देखनेवाली पर्याय का विषय विशेष नही, सामान्य रहेगा।

यहाँ कहते है कि विशेष को देखनेवाला पर्यायार्थिक आँख बन्द कर दे। दूसरे को देखना बन्द कर दे – यह बात तो एक तरफ रही, क्योकि परपदार्थों को देखनेवाली दृष्टि, पर्यायार्थिक या द्रव्यार्थिक नही कहलाती। मात्र अपने मे दो प्रकार है, सामान्यपना अर्थात् कायम रहना और विशेषपना अर्थात् बदलना। इन दोनो को देखनेवाली दो आँखे हैं। अब कहते है कि विशेष को देखनेवाली आँख को बिलकुल बन्द करके खुली हुई द्रव्यार्थिक आँख से देख। भाई ! भारी गजब बात है, यह बहुत ऊँची बात है, थोडे शब्दो मे बहुत भरा है।

यहाँ स्त्री, पुत्र, मित्र, धन आदि पर द्रव्यो को देखना बन्द कर दे – ऐसा नही कहा, क्योकि जो स्वरूप मे ही नही है, उसकी बात क्यो करे ? प्रभु ! तेरे स्वरूप मे सामान्य और विशेष – दो पहलू है, अब इनमे से विशेष का देखनेवाली आँख सर्वथा बन्द कर दे और खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु से देख। देखो, विशेष को देखनेवाली आँख कथञ्चित् बन्द कर दे और कथञ्चित् खुली रख अथवा उसे गौण कर दे – ऐसा नही

कहा। पर्याय को देखना बन्द कर दिया अर्थात् द्रव्य को देखनेवाला ज्ञान प्रगट हो गया। द्रव्यार्थिक चक्षु से द्रव्य को देखनेवाला ज्ञान भी है तो पर्यायरूप, परन्तु उसका विषय द्रव्य है। अहो! यह तो तत्काल सम्यग्दर्शन प्रगट होने की बात है। कितनी गंभीर टीका है। भरतक्षेत्र मे ऐसी बात अन्यत्र कहाँ है? सन्तो ने त्रिलोकीनाथ परमात्मा की दिव्यध्वनि मे से अमृत बरसाया है। जगत का महाभाग्य है कि ऐसी वाणी रह गई। (अर्थात् आज तक उपलब्ध है) भाई! ऐसी वाणी सुनने का सौभाग्य मिला और तुझे फुरसत नही है? भगवान! तुझे कहाँ जाना है, कहाँ रहना है? इसका विचार तो कर।

पहले कहा कि सर्व वस्तु सामान्य-विशेषात्मक है। अब कहते है कि तुझे अपनी वस्तु को देखना हो तो पर्यायार्थिक चक्षु को सर्वथा बन्द करके, खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु से देख। पर्यायार्थिक आँख बन्द करके, पर को देख – ऐसा नही कहा। यहाँ तो अमृतस्वरूप भगवान आत्मा को देखने की बात है। सन्तो ने तो अमृत बरसाया है, परन्तु अरे! जगत को उसकी दरकार कहाँ है?

भगवान! तुझ में सामान्य और विशेष – ऐसे दो प्रकार है। यहाँ बात तो सभी द्रव्यों की करना है, परन्तु जीव में घटित करके समझाया गया है।

अमृतचन्द्राचार्यदेव की टीका मे स्पष्ट नही कहा, परन्तु जयसेनाचार्य की टीका मे स्पष्ट कहा है कि **सर्वद्रव्येषु यथासंभवं ज्ञातव्यमित्यर्थः** – ये जयसेनाचार्यकृत टीका के अन्तिम शब्द है। भाई! यह तो धैर्यवान पुरुष का काम है। समयसार कलशटीका में कहा है कि निभृत अर्थात् स्वरूप में एकाग्र होने वाले निश्चिन्त पुरुषों द्वारा इस वस्तु का विचार किया जाता है।

पहले 'पर्यायार्थिक चक्षु को सर्वथा बन्द करके' – ऐसा

कहकर जोर दिया और अब उससे भी अधिक जोर देने के लिए कहते है – **जब मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु के द्वारा देखा जाता है** ''अर्थात् ज्ञान को इसप्रकार खोलकर देख कि द्रव्य दिखाई दे। 'मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा' – ऐसा कहा है न ? अर्थात् द्रव्य को देखने वाले प्रगट ज्ञान द्वारा देख ! जब पर्याय को बन्द कर दिया, तब स्वद्रव्य को देखनेवाला ज्ञान प्रगट हुआ। जो नय द्रव्य को देखता है, वह प्रगट हुआ।

जब पर्यायार्थिक चक्षु को सर्वथा बन्द करके मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु के द्वारा देखा जाता है, तब नारकपना, तिर्यंचपना, मनुष्यपना, देवपना और सिद्धपना – पर्यायस्वरूप विशषों में रहनेवाले एक जीवसामान्य को देखनेवाले और विशेषों को न देखनेवले जीवों को ''वह सब जीवद्रव्य है' – ऐसा भासित होता है।

देखो ! देखनेवाली स्वय पर्याय है, परन्तु वह पर्याय को देखना बन्द करके द्रव्य को देखनेवाले प्रगटज्ञान के द्वारा द्रव्य-सामान्य को देखती है। अहाहा ! क्या अमृत भर दिया है। अज्ञानी ऐसे ही (भाव समझे बिना) पढ जाता है और मान लेता है कि हमने स्वाध्याय किया। परन्तु भाई ! यह प्रवचन-सार अर्थात् दिव्यध्वनि का सार है, अत्यन्त गहन चीज है। एक भाई समयसार के सम्बन्ध मे कहते थे कि महाराज (श्री कानजी स्वामी) समयसार का बहुत बखान करते हैं, परन्तु मैंने तो उसे पन्द्रह दिनो मे ही पढ लिया। अरे भाई ! समयसार बहुत गहन चीज है, यह तो केवली के पेट की बात है प्रभु ! मात्र ऐसे ही पढ लेने से उसका रहस्य नही समझा जा सकता।

प्रश्न – श्रीमद् राजचन्द्र ने छह पद कहे हैं, उनमे सम्यग्दर्शन की व्याख्या की है, तो इन छह पदो को तो देखना चाहिए न ?

उत्तर – भाई ! यहाँ तो कहते है कि इन छह पदो के भेद को देखनेवाली आँख को सर्वथा बन्द कर और द्रव्य को देखने वाले प्रगट ज्ञानरूप द्रव्यार्थिकनय से देख । यह तो अमृत का घर है, यह तत्व मुश्किल से बाहर आया है, इसलिए इसे धीरज से सावधान होकर सुनना, समझना; ऐसा समय फिर कब आएगा ?

अहाहा ! कितने गम्भीर भाव भरे है। सामान्य विशेषात्मक वस्तुस्वरूप को देखने वालो की अनुक्रम से सामान्य और विशेष को जाननेवाली दो आँखे है अर्थात् देखनेवाला आत्मा अपने सामान्य और विशेष को देखता है, परन्तु पर को नही देखता । अपनी विशेष पर्याय मे पर-पदार्थ ज्ञात होते है, परन्तु वास्तव मे तो अपनी पर्याय ही ज्ञात होती है । सामान्य और विशेष को देखनेवाले दो चक्षु कहे है, परन्तु पर की बात नही की ।

वस्तुस्वरूप को देखनेवालों की अनुक्रम से सामान्य और विशेष को जाननेवाली दो चक्षु है, यहाँ 'अनुक्रम' शब्द का प्रयोग किया है । पहले सामान्य को जानना, फिर विशेष को जानना; क्योकि सामान्य का यथार्थ ज्ञान होने पर ही विशेष का यथार्थ ज्ञान होता है । यहाँ पर को जानने की बात नही की, क्योकि आत्मा पर को जानता ही नही है । वास्तव मे वह अपनी पर्याय मे पर्याय को ही जानता है । कितनी सूक्ष्म बात है ! पर को जानता है – ऐसा कहना असद्भूतव्यवहारनय है । वास्तव मे तो त्रिकाली सामान्य आत्मा का विशेष, विशेष में विशेष को ही जानता है, पर को नही । यहाँ विशेष द्वारा पहले सामान्य को और फिर विशेष को जानने के लिए कहा है; क्योकि सामान्य को जानने पर जो ज्ञान होता है, वह अपने विशेष को भी यथार्थ जानता है ।

सामान्य और विशेष को जाननेवाली दो चक्षु कही है, पर को जाननेवाली तीसरी चक्षु नही कही। अपने विशेष मे पर-पदार्थ जान लिए जाते हैं, परन्तु वास्तव मे तो अपनी पर्याय ही जानी जाती है। अहो! कितनी गम्भीर टीका है। अनुक्रम शब्द का प्रयोग किया है अर्थात् पहले सामान्य को देखना, फिर विशेष को देखना।

"उसमे पर्यायार्थिक चक्षु को सर्वथा बन्द करके··" देखो! पयार्यार्थिक चक्षु को सर्वथा बन्द करने की प्रेरणा दी है क्योकि अपनी पर्याय मे जो विशेषता ज्ञात होती है, वह अपनी पर्याय ही ज्ञात होती है, पर नही, इसलिए 'पर को जाननेवाली चक्षु बन्द करके' – ऐसा नही कहा, परन्तु अपनी पर्याय को जाननेवाली पर्यायार्थिक चक्षु सर्वथा बन्द करके – ऐसा कहा है। अहाहा! कितनी गम्भीर वस्तु है। प्रवचनसार, समयसार और नियमसार की एक-एक गाथा अति गम्भीर और अलौकिक है।

यहाँ कहते हैं कि भगवान! तू पर को जानता ही नही है। केवली भगवान लोकालोक को जानते हैं – ऐसा कहना असद्भूत व्यवहारनय है। भाई! आत्मा और पर का सम्बन्ध ही क्या है? स्व और पर के बीच अत्यन्ताभाव की अभेद्य दीवार है। स्वद्रव्य की पर्याय और परद्रव्य की पर्याय के बीच भी अत्यन्ताभाव की अभेद्य दीवार है। अपनी एकसमय की पर्याय मे पर का प्रवेश ही कहाँ है? टीका मे भी कहा है कि आत्मा अपने विशेष को जानता है। सामान्य को जानता है – पहले ऐसा कहकर फिर विशेष को जानता है – ऐसा कहा है। पर को जानता है – यह बात ही नही की।

पर्यायार्थिक चक्षु को सर्वथा बन्द करके अर्थात् अपनी पर्याय का लक्ष्य छोडकर मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा अवलोकन कर। जब पर्याय को देखनेवाली पर्यायार्थिक दृष्टि

बन्द की तो अब कुछ देखनेवाली दृष्टि रही या नही ? हाँ, द्रव्य को देखनेवाली दृष्टि रही, इसलिए कहा कि मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा देख। यह द्रव्यार्थिकनय प्रगटरूप (खुला हुआ) ज्ञान है। यद्यपि है तो वह भी पर्याय, तथापि वह पर्याय, पर्याय को न देखकर द्रव्य को देखती है। पर्याय को जाननेवाली चक्षु सर्वथा बन्द की है, परन्तु ज्ञान सर्वथा बन्द नही हुआ, वह तो उघडा हुआ है और द्रव्य को जानता है। देखो, कैसी अद्भुत बाते हैं। भाई! यह तो तीन लोक के नाथ की दिव्यवाणी है।

भगवान्! तू सामान्य-विशेषस्वरूप है। तेरे विशेष मे पर को जानना है ही नही, क्योकि उसमे अपनी पर्याय ही ज्ञात होती है। अब कहते है कि यह जो पर्याय ज्ञात होती है, उसे जाननेवाली पर्यायार्थिक चक्षु सर्वथा बन्द करने पर, देखनेवाला अन्य कोई ज्ञानचक्षु रहा कि नही ? तो कहते है कि द्रव्य को देखनेवाला ज्ञानचक्षु प्रगट उघाड़रूप है। कहा है न कि मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा देख! पर्याय को देखनेवाली आँख सर्वथा बन्द की है, परन्तु द्रव्यसामान्य को देखनेवाला ज्ञान तो खुला ही है। जब पर्याय को देखना सर्वथा बन्द किया, तभी द्रव्य को देखनेवाला ज्ञान प्रगट हो गया, क्योकि स्वय जाननहारा है। जाननेवाले की पर्याय मे अँधेरा हो जाए अर्थात् जानना ही बद हो जाए – ऐसा तो कभी हो ही नही सकता।

अहाहा! पर्याय को देखनेवाली आँख सर्वथा बन्द कर दे – ऐसा कहकर आप क्या कहना चाहते हैं ? ऐसा प्रश्न होने पर कहते है – तुझे शुद्ध त्रिकाली आत्मद्रव्य को देखना है न ? तो उसका ज्ञान पर्याय मे होता है, इसलिए कहते है कि मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा देख। तात्पर्य यह है कि पर्याय को देखनेवाले ज्ञान की पर्याय सर्वथा बन्द हो जाने पर

जो मात्र द्रव्य को जानती है – ऐसी अन्तर के ज्ञान की पर्याय प्रगट हो जाती है, उसके द्वारा द्रव्य को देख। लोगो को ऐसी बात सुनने को ही नही मिली, इसलिये वे एकान्त है – ऐसा कहते है, परन्तु बापू ! यह मिथ्या एकान्त नही सम्यक्-एकान्त है। भाई ! यह तेरे घर की बात है।

सन्त कहते है कि आत्मा को नारकपना, तिर्यञ्चपना, मनुष्यपना, देवपना और सिद्धपना – इन पाँच पर्यायस्वरूप देखनेवाली पर्याय की आँख बन्द कर दे। गजब बात है भाई ! सिद्धपर्याय को देखनेवाली आँख बन्द कर दे। स्वय को वर्तमान मे सिद्धपर्याय नही है, परन्तु श्रद्धा मे है कि मेरी सिद्धपर्याय प्रगट होगी, इसलिये कहते है कि सिद्धपर्याय को देखनेवाली आँख भी बन्द कर दे।

समयसार मे **वन्दित्तु सव्वसिद्धे** कहकर ज्ञानपर्याय मे सर्व सिद्धो की स्थापना की है और यहाँ कहते हैं कि सर्व सिद्धो को जाननेवाली जो पर्याय है, उसे देखनेवाली पर्यायार्थिक चक्षु बन्द कर दे और मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा देख। अहो ! यह तो सन्तो के हृदय की अथाह गहराई है। क्या कहे ? जितना गहनभाव ज्ञान मे भासित होता है, उतना भाषा मे नही आ सकता। यदि कोई ऐसा अभिमान करे कि हमने पढा है, हमे आता है, तो उसका गर्व उतर जाए – ऐसी बात है।

भाई ! अपनी पर्याय को देखनेवाली आँख बन्द कर दे, फिर भी देखना तो चालू रहेगा। जहाँ पर्याय को देखना सर्वथा बन्द किया, वहाँ तुरन्त ही द्रव्य को देखनेवाला ज्ञान प्रगट हुआ। यह ज्ञान अपने पुरुषार्थ से प्रगट हुआ है। जब खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा देखा जाता है, तब नारकपना, तिर्यञ्चपना, मनुष्यपना, देवपना और सिद्धपना – इन पर्यायस्वरूप विशेषो मे रहनेवाले एक जीवसामान्य को ही देखा जाता है। पर्याये

पाँच है और उन पाँचो पयार्यो मे एक जीव सामान्य रहा हुआ है। पर्याय मे दूसरी कोई चीज नही है, इसलिए देव-शास्त्र-गुरु और सिद्धो को भी निकाल दिया, मात्र सिद्धपना आदि पर्यायो मे रहने वाले जीवसामान्य की बात की।

वहाँ देखने-जाननेवाली पर्याय रही कि नही ? हाँ, रही। जीवसामान्य को देखनेवाला द्रव्यार्थिकनय तो पर्याय ही है, परन्तु वह पर्याय को नही देखता, द्रव्यसामान्य को देखता है। भाई ! ऐसा वस्तु स्वरूप कभी सुना नही, इसलिए नया लगता है, परन्तु यह तो भगवान त्रिलोकनाथ की आत्मस्पर्शी वाणी है।

प्रश्न – 'एक जीवसामान्य को देखनेवाले' – ऐसा कहा है। यह 'सामान्य' क्या है ?

उत्तर – सामान्य अर्थात् बदले बिना कायम रहनेवाला अखण्ड एकरूप त्रिकाली आत्मद्रव्य। अस्ति रूप से कायम रहने वाला, एकरूप त्रिकाली आत्मद्रव्य ही सामान्य है। भाई ! सारे दिन व्यापार-धन्धे मे फँसे रहने से तुझे यह बात सूक्ष्म लगती है; परन्तु यह बात समझने के लिए विशेष समय निकालना चाहिए, यह तो तेरे हित की बात है।

परपदार्थो को देखना तो दूर रहो, विषयो को और देव-शास्त्र-गुरु आदि को देखना तो दूर रहो, सिद्धपर्याय को देखनेवाली आँख भी बन्द करके, खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा जब देखा जाता है, तब नारकपना आदि पर्यायो मे रहने वाले एक जीवसामान्य को देखनेवाले और विशेषो को नही देखने वाले जीवो को 'वह सब जीवद्रव्य है' – ऐसा भासित होता है। अहाहा ! वह सब जीवद्रव्यहै – ऐसा भासित होता है अर्थात् पर्याय-विशेष या भेद भासित नही होते, परन्तु उन विशेषो मे रहने वाला अनन्त-अनन्त पूर्णशक्तियो का सागर, अखण्ड,

एकरूप, भगवान आत्मा भासित होता है। यह भाषा साधारण लगती है, परन्तु इसमे भरे हुए भाव बहुत गम्भीर और गहरे है। प्रवचनसार, नियमसार व समयसार की तो बात ही क्या करना ? भरतक्षेत्र मे यह बात अन्यत्र कही नही है। भाई ! जो इसप्रकार पुरुषार्थ करे, उसे वस्तु प्राप्त हुए बिना नही रहती। 'सब जीवद्रव्य है' – ऐसा भासित होता है अर्थात् ज्ञात होता है।

पर्याय को देखनेवाली दृष्टि को सर्वथा बन्द करने पर नारकपना आदि पाँचो पर्यायो मे रहनेवाला जीवसामान्य ही दिखाई देता है। पर-द्रव्य मे या उसकी पर्यायो मे तो व्यवहार से भी जीवद्रव्य नही रहता, परन्तु वह अपनी नारकादि पाँचो पर्यायो मे रहता है। ऐसे जीवसामान्य को देखनेवालो को 'वह सब जीवद्रव्य है' – ऐसा भासित होता है अर्थात् उक्त प्रकार से देखने पर जीवद्रव्य ही भासित होता है।

प्रश्न – इस निकृष्ट पचमकाल मे भी जीवद्रव्य भासित होता है क्या ?

उत्तर – प्रभु ! आत्मा को कोई काल बाधक नही होता। अरे ! जहाँ उसे पर्यायार्थिक नय भी लागू नही पडता, फिर काल की बात कहाँ रही ? यद्यपि आगे पर्यायार्थिक नय से देखने की बात करेगे, परन्तु यहाँ पहले द्रव्यार्थिक नय से देखने की बात की है।

प्रश्न – द्रव्यार्थिक नय से द्रव्य को देखने के पश्चात् ही पर्याय का सच्चा ज्ञान होता है न ?

उत्तर – पर्याय का ज्ञान कब सच्चा होगा ? यह बात यहाँ नही है। यहाँ तो पर्याय की आँख बन्द करके द्रव्य को देखने की बात है। 'जीवद्रव्य पाँचो पर्यायो मे रहनेवाला अखड एकरूप तत्त्व है'– इसप्रकार देखनेवाला ज्ञान सच्चा है। यहाँ वह

सब जीवद्रव्य है – ऐसा भासित होता है – इस बात पर वजन है। पर्यायार्थिक नय से पर्याय भासित होती है – ऐसा भी कहेगे, परन्तु ऐसा तो पर्याय का ज्ञान कराने के लिए कहेगे। यहाँ तो द्रव्यार्थिक नय से देखने की बात से प्रारम्भ किया है।

प्रभु ! तू अपनी पाँचो पर्यायो में रहता है, फिर भी पर्याय को देखनेवाली आँख बन्द करके तू जो वस्तु है, उसका खुले हुए द्रव्यार्थिक नय की चक्षु से अवलोकन कर ! तब तुझे 'वह सब जीवद्रव्य हैं'– ऐसा भासित होगा, तब ही तुझे अनन्त-अनन्त शक्तियो का अभेद एकस्वरूप पूर्ण परमात्मा ज्ञात होगा। अज्ञानी जीव ऐसी बात शान्ति से – धैर्य से पढते नही, विचारते नही और कहते है कि एकान्त है, परन्तु भाई ! तू जैसा परिणाम करेगा, उसका वैसा ही फल तो होगा। असत्य का तो असत्य परिणाम ही आएगा।

मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा पाँचो पर्यायस्वरूप विशेषों मे रहनेवाला जीवद्रव्य दिखाई देता है। देखा ! भले विशेष को देखनेवाली आँख बन्द कर दी है, परन्तु जीव विशेष-रहित नही है, वह तो विशेषो मे रहनेवाला सामान्य है। गजब बात है भाई ! जीवद्रव्य परपदार्थों मे तो नही रहता, परन्तु अपनी पाँचो पर्यायो मे रहता है। इसप्रकार सन्धि करके आचार्यदेव कहते है कि पर्यायस्वरूप विशेषो मे रहनेवाले एक जीवसामान्य को देखनेवाले तथा विशेषो को नही देखनेवाले जीवों को 'वह सब जीवद्रव्य है'– ऐसा भासित होता है।

देखनेवाली स्वय तो पर्याय है, परन्तु द्रव्य को देखती है। समयसार गाथा ३२० की जयसेनाचार्य की टीका में आता है "सकल निरावरण, अखण्ड, एक, प्रत्यक्ष प्रतिभासमय, अविनश्वर, शुद्ध-पारिणामिक, परमभावलक्षण, निज-परमात्मद्रव्य ही मैं हूँ"– ऐसा पर्याय जानती है, क्योकि जानने का कार्य द्रव्य

मे नही, पर्याय मे होता है, इसलिए पर्याय ऐसा जानती है कि मैं निज-परमात्मद्रव्य हूँ। भले ही विशेषो मे रहता हूँ, परन्तु मै यह हूँ – ऐसा पर्याय जानती है। ३२० गाथा के समान यहाँ भी यही बात कही है कि जीवसामान्य को देखनेवाले और विशेषो को नही देखनेवाले जीवो को 'वह सब जीवद्रव्य है' ऐसा भासित होता है।

पर्यायार्थिक नय तो बन्द हो गया है, अत खुली हुई द्रव्यार्थिक नयरूप ज्ञानपर्याय, पर्यायविशेषो मे रहनेवाले एक जीवसामान्य को देखती है। अहाहा ! दो-तीन पक्तियो मे कितना सार भर दिया है। अहो ! केवली भगवान के आढतिया दिगम्बर सन्तो की वाणी मे अगाध गहराई है ! भगवान का तो विरह हो गया, परन्तु यह वाणी रह गई (अर्थात् आज तक उपलब्ध है), इस वाणी ने भगवान का विरह भुला दिया है। पर्यायनय के बन्द हो जाने पर अन्दर विराजमान एकरूप तत्त्व को जाननेवाला ज्ञान खुल जाता है। जब पर्याय पर दृष्टि थी, तब द्रव्य को जाननेवाला ज्ञान अस्त था। अब पर्याय को देखना सर्वथा बन्द किया तो अन्तस्तत्त्व को देखनेवाला ज्ञान खुल गया। उस खुले हुए ज्ञान द्वारा विशेषो मे रहनेवाले जीवसामान्य को देखनवाले और विशेषो को नही देखनेवाले जीवो को 'वह सब जीवद्रव्य है'– ऐसा भासित होता है। अरे प्रभु ! यह तो भागवत् कथा है, इसकी अगाधता के सामने क्षयोपशमज्ञान का क्या अभिमान करना ? अरे ! जब सन्त इसकी व्याख्या करते होगे, तब उसका पार भी नही मिलता होगा। भाई ! भगवान ने जितना अपने ज्ञान मे देखा, उसका अनन्तवाँ भाग दिव्यध्वनि मे कहा गया और उतना भी झेला नही जा सका।

कहा है न –

मुख ओंकार धुनि सुनि, अर्थ गणधर विचारे।
रचि आगम उपदिशै, भविक जीव संशय निवारे ॥

अहाहा ! यह बात दिव्यध्वनि के अनुसार आगम में आई हुई है; और जो उसे जानता है, उसे सशय नही रहता । द्रव्य को जाननेवाले खुले हुए ज्ञान द्वारा जब विशेषो मे रहने वाले शुद्ध सामान्यजीव को जाना; तब संशय नही रहता, मिथ्यात्व का अश भी नही रहता ।

एक जीवसामान्य को देखनेवाले और विशेषों को नहीं देखने वाले जीवों को – इस वाक्यांश मे 'जीवो' कहकर बहुवचन का प्रयोग किया है 'जीव को' – ऐसा एकवचन प्रयोग नही किया अर्थात् वर्तमान पचमकाल मे पर्यायचक्षु को बन्द करके खुले हुए द्रव्यार्थिक चक्षु देखनेवाले अनेक जीव संभावित है । पचमकाल के सन्त पचमकाल के श्रोताओं से यह बात कहते है अर्थात् पंचमकाल मे भी अनेक जीव अपने शुद्ध त्रिकाली द्रव्य को देखेगे । आचार्य अपने श्रोताओ से यह नही कहते कि तुम से यह काम नही होगा;इसलिये मेरी समझ मे नही आता – यह बात छोड़ दे । प्रभु ! जहाँ पर्याय को भी देखना बन्द करना है, वहाँ 'मै यह नही जान सकता' – यह प्रश्न ही नही उठता । पर्याय को देखनेवाला ज्ञान सर्वथा बन्द करके जब द्रव्य को देखनेवाले खुले हुए ज्ञान द्वारा देखेगा,तभी तुझे सम्पूर्ण भगवान दिखेगा, अपने भगवान से तेरी भेट होगी । तेरा भगवान गुप्त नही रहेगा ।

अहाहा ! एक जीवसामान्य को देखनेवाले और विशेषो को नही देखनेवाले जीवो को – इसप्रकार बहुवचन प्रयोग करके पचमकाल के सत पचकाल के अपने श्रोताओ से कहते हैं कि भगवान् ! तू विश्वास कर ! तुझ मे अनन्त सामर्थ्य है ! तू अनंत वीर्य से भरा हुआ भगवान है ! अतीन्द्रिय सुखामृत का सागर है ! तू स्त्री, पुरुष या नपुंसक नही है, अत शरीर को मत देख ! आकृति को मत देख ! पर को मत देख ! अरे, तुझे

बाहर कहाँ देखना है ? ये सब तेरी जिस पर्याय मे ज्ञात हो रहे हैं, उस पर्याय को भी देखनेवाली अपनी पर्यायचक्षु को बन्द कर दे और खुले हुए ज्ञान द्वारा द्रव्य को देख – इससे तुझे अनत सुख का समुद्र भगवान आत्मा मिलेगा, तू निहाल हो जाएगा। अहाहा ! अद्भुत बात है।

अनेक जीवो को, द्रव्य को देखनेवाली खुली हुई आँख से 'यह सब जीवद्रव्य है' – ऐसा भासित होता है। पर्याय को देखनेवाली आँख को पूरी बन्द करके जीव द्रव्य को देखनेवाली दूसरी खुली हुई आँख से जाता है तब सब जीव द्रव्य है ऐसा भासित होता है; अतीन्द्रिय सुख का सागर, निर्मलानन्द प्रभु, आत्मा ज्ञात होता है अर्थात् आत्मद्रव्य इन्द्रियगम्य नही, विकल्पगम्य नही तथा पर्यायार्थिक नय द्वारा भी गम्य नही; मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा ज्ञात होने योग्य तत्त्व है।

पहले पर्यायदृष्टि के समय द्रव्य को देखनेवाला ज्ञान बद था। अवस्थाओ को ही देखनेवाली अपनी दृष्टि अपने स्वभाव को नही देखती थी। इसलिये कहा कि पर्याय को देखनेवाली आँख सर्वथा बन्द कर दे। पर्याये अपने-अपने क्रम मे स्वकाल मे होगी ही, परन्तु उन नारकादि पर्यायो को देखने वाली आँख सर्वथा बन्द कर दे। इसका मतलब यह नही कि देखना ही सर्वथा बन्द हो गया। पर्याय को देखना बन्द किया तो तुरन्त ही द्रव्य को देखनेवाले द्रव्यार्थिक नय का ज्ञान खुल जाता है और उसमे पूर्णानन्द का नाथ चित्चमत्कार प्रभु आत्मा ज्ञात होता है। दिगम्बर धर्म के सिवाय अन्यत्र ऐसी बात कहाँ है ? और सब जगह तो बाह्य क्रियाकाण्ड की बाते है; परन्तु भगवान् ! जिससे भव का अन्त न हो, उससे क्या लाभ ? बापू ! जिसप्रकार आत्मदृष्टि बिना ८४ लाख योनियो के अवतार मे नरकादि के जो दु ख तूने भोगे है, उनका वर्णन तू

नही सुन सकता; उसीप्रकार अपने को देखने से जो आनन्द आता है, उसकी भी बात क्या करना ? उसका वर्णन भी नही किया जा सकता।

अहाहा ! जब मात्र खुले हुए द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा देखने पर सब द्रव्य है – ऐसा भासित होता है अर्थात् त्रिकाली एकरूप द्रव्य ज्ञात होता है, तब पर्याय को जाननेवाला यथार्थ ज्ञान प्रगट होता है। ऐसा नही कहा कि पहले द्रव्यार्थिक नय को बन्द करके पर्याय को देख, परन्तु पर्यायार्थिक नय की चक्षु सर्वथा बन्द करके द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा देख – ऐसा कहा है; क्योकि द्रव्य का यथार्थ स्वरूप भासित होने पर ही पर्याय यथार्थरूप से भासित होती है।

अब कहते हैं कि **जब द्रव्यार्थिक चक्षु को सर्वथा बन्द करके मात्र खुली हुई पर्यायार्थिक चक्षु के द्वारा देखा जाता है; तब जीवद्रव्य में रहनेवाले नारकपना, तिर्यञ्चपना, मनुष्यपना, देवपना और सिद्धपना पर्यायस्वरूप अनेक विशेषो को देखनेवाले और सामान्य को न देखनेवाले जीवों को (वह जीवद्रव्य) अन्य-अन्य भासित होता है।**

देखो ! द्रव्य का ज्ञान तो हुआ है। यह सब सामान्य है, द्रव्य है, वस्तु है – ऐसा ज्ञान होने पर उस तरफ देखनाबन्द करके अर्थात् उस तरफ का लक्ष्य छोड़कर – ऐसा क्यो कहा ? क्योकि पर्याय भी अपनी है न ? पर्याय द्रव्य मे – अपने मे है, अत उसे देखने के लिए द्रव्यार्थिक नय की चक्षु बन्द करने के लिये कहते है।

बहुत सूक्ष्म बात है भाई ! केवलज्ञान को पाने की तैयारीवाले दिगम्बर सन्तो की वाणी बहुत गम्भीर है इतनी सत्य बात अन्यत्र कहाँ है ? कठिन पडे, परन्तु क्या करे ? वस्तु स्वरूप ही ऐसा है।

अहाहा! सत मुनिवर कहते हैं – द्रव्यार्थिक चक्षु को सर्वथा बन्द कर। पहले पर्यायार्थिक चक्षु को सर्वथा बन्द करके द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा द्रव्य को देखने की बात कही थी जिससे द्रव्य प्रगट भासित हुआ, और अब पर्याय का ज्ञान कराने के लिए द्रव्यार्थिक चक्षु को सर्वथा बन्द करके पर्यायार्थिक चक्षु से देखने की बात कहते है। पर्याय भी द्रव्य की है, द्रव्य मे है, जीवद्रव्य पर्याय मे रहा हुआ है, पर्याय मे वर्त्त रहा है; इसलिए यहाँ पर्याय का ज्ञान कराना है। पर को जानने की तो यहाँ बात ही नही है, क्योकि पर-द्रव्य का तो स्वद्रव्य से कोई सम्बन्ध ही नही है। अरे! जिस पर्याय मे परपदार्थ ज्ञात होते हैं, वह पर्याय भी स्वद्रव्य की है; उस पर्याय का परद्रव्य के साथ कोई सम्बन्ध नही है। वज्रवृषभनाराच सहनन के कारण भगवान को केवलज्ञान हुआ – ऐसा नही है। अरे! उन्हे चार ज्ञान और मोक्ष का मार्ग था, इसलिए केवल ज्ञान हुआ है, परमार्थ से ऐसा भी नही है।

यहाँ कहते है कि खुली हुई पर्यायार्थिक चक्षु द्वारा पर्याय को देख! यहाँ जाननेवाली पर्याय खुली हुई है। जैसे द्रव्य को देखनेवाला ज्ञान है, वैसे पर्याय को देखनेवाला ज्ञान भी है। जब द्रव्य को देखनेवाली द्रव्यार्थिक चक्षु बन्द हुई, तब पर्याय को देखनेवाली पर्यायार्थिक चक्षु खुली है। इसलिये कहा है कि द्रव्यार्थिक चक्षु को सर्वथा बन्द करके अर्थात् द्रव्य की तरफ का लक्ष्य छोडकर मात्र खुले हुए पर्यायार्थिक चक्षु द्वारा देख। नारकादि पाँचो पर्यायें जीवद्रव्य मे रही है, परपदार्थों मे नही; अत यहाँ 'जीवद्रव्य मे रहनेवाले नारकपना' – ऐसा शब्द है, अर्थात् पर्याये स्वद्रव्य मे रहनेवाली है, परद्रव्य के साथ उनका कोई सम्बन्ध नही है। देखो! ऐसा वस्तुस्वरूप है।

अपरिचित व्यक्ति या क्रियाकाण्ड केआग्रहवाले को ऐसा लगे कि यह क्या कह रहे है ?परन्तु भाई ! यह तेरे घर की बातकह रहे है। तेरा घर कैसा है ? कितना महान है ? यह कभी तूने सुना नही, जाना नही।

द्रव्यार्थिक नय के चक्षु को सर्वथा बन्द करके अर्थात् उसका ज्ञान (खुला हुआ) तो है परन्तु उस तरफ लक्ष्य नही है, उघड़ी हुई पर्याय की ओर लक्ष्य है। यहाँ उघडी हुई पर्यायार्थिक चक्षु द्वारा जीव की अवस्थाओ को देखने की बात है।

यहाँ कहते है कि "द्रव्यार्थिक चक्षु को सर्वथा बद करके मात्र खुली हुई पर्यायार्थिक चक्षु द्वारा देखा जाए तो·····" अहाहा ! इसे अपने सामान्य और विशेष को ही देखना है,बाहर कही नही देखना है। भगवान् ! तेरे द्रव्य और पर्याय सिवाय शरीर, कर्म, कषाय इत्यादि बाहर का करना (अर्थात् पर का करना) तो अशक्य है, अरे ! इन्हे देखना भी नही है। पर्यायार्थिक चक्षु से तू जो देख रहा है, वह तेरी पर्याय है।

जिसप्रकार यह बाह्य औदारिक शरीर है, उसीप्रकार परमपारिणामिक स्वभावभावरूप चैतन्यभगवान, चैतन्यशरीर अर्थात् चैतन्य विग्रहहै। शास्त्र मे 'विग्रह' शब्द आता है। विग्रह अर्थात् शरीर तीन तीन प्रकार के है – (१) जडशरीर (२) कषायशरीर और (३) चैतन्यशरीर। औदारिक, तैजस, कार्माण, आहारक और वैक्रियक आदि सब जड़शरीर है। जीव की पर्याय मे होनेवाले पुण्य-पापरूप विकारी परिणाम, नारकादि गतियो के उदयभाव आदि चैतन्य का विकृत शरीर अर्थात् कषाय-शरीर है,और शुद्ध त्रिकाली ज्ञायकभाव निजशरीर है, निजवस्तु है। शुद्ध चैतन्य शरीरी भगवान आत्मा की अपेक्षा कषाय शरीर भी पर विग्रहही है। निज चैतन्य शरीर को देखने के लिए एक बार तो पर्याय की आँख बन्द कर।

स्व को देखा है,जाना है; पर्याय मे भी स्व-सामान्य वर्त्त रहा है, अत पर्याय को देखने के लिए स्व का – द्रव्य-सामान्य का लक्ष्य छोडकर पर्याय को देखनेवाली चक्षु द्वारा देखने के लिए कहते हैं। तेरी पर्याय के अस्तित्व मे औदारिकादि शरीर का एक अश भी नही है, तेरी पर्याय के अस्तित्व मे तो चार गतियाँ तथा सिद्ध पर्याय है। 'जीवद्रव्य मे रहनेवाली' – ऐसे शब्दो का प्रयोग किया है न ? तेरी पर्याय मे नर-नारकादि पर्यायो का अस्तित्व है और उसे देखनेवाला ज्ञान प्रगट है। उन पर्यायो को देखनेवाली पर्यायार्थिक चक्षु द्वारा जान ! लोगो को तो बाहर से धर्म करना है, परन्तु भाई बाहर तेरा अस्तित्व ही नही है, फिर बाहर से धर्म कैसे होगा ? तुझे यह बात सुनने की भी फुरसत नही है तो निर्णय कहाँ से करेगा ?

नारकादि गतियाँ पर्याय मे है, अपनी त्रिकाली चीज मे नही है। दया, दान, भक्ति आदि मदकषाय के परिणाम भी अपनी पर्याय मे हैं; परन्तु अपनी त्रिकाली वस्तु मे नही है। जब निज परमात्मस्वरूप, त्रिकाली, चैतन्यमय, जीववस्तु का ज्ञान हुआ, तभी पर्याय को देखनेवाला ज्ञान भी खुल गया। वह ज्ञान शास्त्र पढने से खुला है – ऐसा नही है। जीवसामान्य – त्रिकाल, ज्ञायकमूर्ति, प्रभु आत्मा को जानने पर पर्याय को देखनेवाला ज्ञान खुल गया है। भाई ! एकभवावतारी इन्द्र भी खरगोश के समान विनम्रता से बैठकर जिनकी वाणी सुनते है – ऐसे त्रिलोकीनाथ जिनेन्द्र परमेश्वर की यह वाणी है। इसकी गम्भीरता की बात क्या करे ?

जब पर्याय को देखनेवाली आँख बन्द की, सर्वथा बन्द की; तब तो द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा देखा गया, परन्तु अब खुले हुए पर्यायार्थिक ज्ञान से जीव मे रहनेवाली पर्यायो को देख।

खुली हुई पर्यायार्थिक चक्षु द्वारा नारकादिपर्यायस्वरूप विशेषों को देखनेवाले और सामान्य को नहीं देखनेवाले (सामान्य की ओर लक्ष्य नहीं करनेवाले) जीवों को वह जीवद्रव्य अन्य-अन्य भासित होता है।

जीवद्रव्य मे वे पयाये अन्य-अन्य भासित होती है। देवपर्याय जुदी, सिद्धपर्याय जुदी – इसप्रकार अन्य-अन्य भासित होती है।

द्रव्य उन-उन विशेषों के समय उन-उन विशेषों से तन्मय होने से अनन्य है – कण्डे, घास, पत्ते और काष्ठमय अग्नि की भाँति।

उन-उन विशेषो अर्थात् नारकपना, तिर्यञ्चपना, मनुष्यपना, देवपना और सिद्धपना – इन पर्यायो मे उस-उस काल में जीवद्रव्य तन्मय है; परन्तु औदारिक शरीर, स्त्री, परिवार, मकान, पैसा आदि के साथ अशमात्र भी तन्मय नही है; क्योकि ये सब जीव से पृथक बाह्य वस्तुएँ है।

कुछ लोग कहते है कि ऐसी बाते समझने के लिए तो बाबा (साधु) बनना पडेगा। परन्तु भाई! देह और रागादि से भिन्न होने के कारण आत्मा बाबा ही है। भाई! तेरे त्रिकाली सामान्य स्वभाव मे चार गतियाँ तथा रागादि नही है; परन्तु यहाँ तो पर्याय का अस्तित्व सिद्ध करना है, क्योकि पर्याय परपदार्थों के कारण नही है। 'जीवद्रव्य मे रहनेवाली'– ऐसा कहा है, 'जीव की पर्याय मे रहनेवाली'– ऐसा नही कहा, क्योकि जीवद्रव्य उन-उन पर्यायो से तन्मय है। पर्यायदृष्टि से जीवद्रव्य स्वय पर्याय मे ही है और पर्यायार्थिक नय से देखने पर वह अन्य-अन्य भासित होता है। जीवसामान्य की दृष्टि से देखने पर, वही का वही अर्थात् अनन्य भासित होता है और पर्याय-दृष्टि से देखने पर अन्य-अन्य भासित होता है। भाई! यह

जन्म-मरण से रहित होने की बात है। जैसे – आकाश मे बिजली की चमक होने पर यदि तुझे धागे मे मोती पिरोना हो तो पिरो ले, वैसे –बिजली की चमक जैसा ही क्षणिक और दुर्लभ मनुष्य भव तथा जिनवाणी का योग पाकर आत्महित करना हो तो कर ले।

त्रिकाली सामान्य तो अनन्य (एकरूप) ही है, वह अन्यरूप भासित नही होता है; परन्तु यहाँ तो सामान्य को देखनेवाले को अपने विशेष को देखनेवाला ज्ञान खुला है – खिला है। पर्याय को देखनेवाले ज्ञान से देखने पर, विशेषों को देखने वाले और सामान्य को नही देखनेवाले जीवो को वह (जीवद्रव्य) अन्य-अन्य भासित होता है, क्योकि द्रव्य उन-उन विशेषो के काल मे उनसे तन्मय है। अहाहा! परस्वभावभाव, ज्ञायक-भावरूप द्रव्य उन-उन विशेषो के काल मे उनसे तन्मय है: परन्तु शरीर, मन, वाणी, इन्द्रियाँ, स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, बाग-बँगला आदि मे कभी तन्मय नही होता, हो भी नही सकता। फिर भी अज्ञानी जीव अनन्तकाल से इन्ही मे तन्मय होकर इन्हे अपना मान रहे है। भाई! जो चीज तेरी पर्याय मे भी नही है, तू उसे अपनी मानकर उसी की सम्हाल मे अभी भी समय गँवा रहा है। भाई! तुझे क्या करना है? कहाँ रहना है? इसका निर्णय तो कर। क्या तुझे अपने ऊपर दया नही आती? अनन्तकाल से तो चार गति मे रखड रहा है।

प्रश्न – एक ओर तो आप कहते हैं कि परमस्वभावभाव, शुद्धज्ञायकभावरूप त्रिकाली सामान्य वस्तु मे गति नही, गुणभेद भी नही है; और यहाँ कह रहे है कि द्रव्य उन-उन विशेषो के काल मे तन्मय है – इन विरुद्ध कथनो का क्या आशय है?

उत्तर – भाई! परमस्वभावभाव शुद्धज्ञायकभावरूप त्रिकाली सामान्यवस्तु की दृष्टि कराने के लिए कहते है कि उसमे गति नही है, गुणभेद भी नही है; और यहाँ उन-उन

विशेषो के काल मे द्रव्य उनमे वर्त्त रहा है, वे विशेष उस काल मे उस द्रव्य के है – यह ज्ञान कराने के लिए कहते है यहाँ कि उन-उन विशेषो के काल मे द्रव्य उनमे तन्मय है। जहाँ जो अपेक्षा हो, उसे यथार्थ समझना चाहिए।

द्रव्य उन-उन विशेषों के काल में तन्मय होने के कारण उन-उन विशेषों से अनन्य है। मनुष्यगतिरूप पर्याय मे जीवद्रव्य तन्मय है। मनुष्यगति अर्थात् मनुष्यशरीर नही, गतियोग्य जीव की अवस्थाविशेष ही मनुष्यगति है। मनुष्य के योग्य गति की योग्यता मे जीवद्रव्य तन्मय है। उन-उन विशेषो के काल मे तन्मय होने से द्रव्य उनसे अनन्य है अर्थात् जीवद्रव्य उस काल मे विशेषो से जुदा नही है।

भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव जगत के सामने भगवान की वाणी का रहस्योद्घाटन करते है, भाई! तुझमे सामान्य और विशेष दो भाग है, इसके अलावा तीसरा कुछ भी (पर-द्रव्य का अश भी) त्रिकाल और त्रिलोक मे भी तुझमे नही है। जिसकी व्यवस्था और सम्हाल में तू रुका हुआ है – ऐसे शरीर, वाणी, कुटुम्ब आदि का एक अश भी तुझ मे नही है। अहाहा! मै शरीर को सम्हाल के रखूँ, अनुकूल भोजन करूँ, ऐसी भाषा बोलूँ, परिवार को संगठित रखूँ – इसप्रकार पर-द्रव्य की व्यवस्था का तेरा अभिप्राय मिथ्या है, क्योकि यह व्यवस्था तुझसे नही होती, तू पर का कुछ कर ही नही सकता। फिर भी भगवान्! तू इसमे मूर्छित हो रहा है। तुझे क्या करना है प्रभु? क्या तुझे रखडना ही है?

प्रश्न – शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् – ऐसा कहा है न?

उत्तर – यह तो निमित्त का कथन किया है। वास्तव में तो राग से भिन्न पड़ना ही धर्म का साधन है। प्रज्ञा-ब्रह्मस्वरूप

परमात्मद्रव्य की दृष्टि और अनुभव करना ही साधन है। ज्ञानी को प्रज्ञाब्रह्मस्वरूप परमात्मद्रव्य का ज्ञान तो है, परन्तु साथ मे मनुष्यपनारूप जो गति है,उसका भी ज्ञान है। मनुष्यगति मे से देवगति मे जाएगा, (क्योकि धर्मात्मा को तो मनुष्यगति से देवगति होती है) वहाँ भी जीवद्रव्य उस देवगतिरूप विशेष मे तन्मय होगा। इसप्रकार द्रव्य विशेषो से तन्मय है, अत अनन्य है, अन्य नही है।

अहाहा! खुली हुई पर्यायार्थिक चक्षु द्वारा देखने पर जीव अन्य-अन्य भासित होता है, क्योकि उन-उन विशेषो के काल मे द्रव्य तन्मय है। एक पर्याय के समय दूसरी पर्याय नही है, नारक पर्याय के समय मनुष्य पर्याय नही है। एकसमय मे एक ही पर्याय है, इसलिए अन्य-अन्य पर्यायो की अपेक्षा जीव अन्य-अन्य भासित होता है, क्योकि वह उनमे तन्मय है।

देखो! क्षायिक सम्यग्दृष्टि श्रेणिक राजा इस समय प्रथम नरक मे है। वे वहाँ के सयोगो मे तन्मय नही है, अपितु नरकगतिरूप वर्त्तमान पर्याय मे तन्मय हैं। यह ध्यान रखना चाहिए कि उनकी उस-उस काल मे उस पर्याय से वर्त्तमान जितनी ही तन्मयता है। वे स्वय सम्यग्दृष्टि है न ? इसलिए गति को अपने स्वरूप से भिन्न जानते है, परन्तु उस दृष्टि के साथ मे पर्याय को देखनेवाला जो ज्ञान उनको है, वह जानता है कि यह नरक पर्याय मेरी है और मैं इस समय इसमे तन्मय हूँ। वे नरक से निकल कर क्षायिक सम्यक्त्व और तीन ज्ञान के साथ माता के पेट मे आनेवाले है, तीर्थङ्कर होनेवाले है। वे जानते हैं कि यह पर्याय मुझमें है और इससमय मैं उसमें तन्मय हूँ। यहाँ पर्यायार्थिक नय की बात है – यह ध्यान रखना चाहिए। द्रव्यार्थिक नय से तो द्रव्य मे गति ही कहाँ है ?

कण्डे, तृण, पत्ते और काष्ठ की अग्नि के समान, द्रव्य विशेषो से तन्मय होने के कारण उन विशेषों से अनन्य है। जैसे तृण, काष्ठ इत्यादि की अग्नि उस-उस समय तृणमय, काष्ठमय आदि होने के कारण तृण, काष्ठ आदि से अनन्य है। उसीप्रकार द्रव्य उन-उन पर्यायरूप विशेषों के समय उन-उनमय (तन्मय) होने के कारण उनसे अनन्य है, भिन्न नही है। काष्ठ की अग्नि स्वय काष्ठरूप परिणामी है न? इसलिए काष्ठमय है। इसीप्रकार जीव भी स्वय उन पर्यायोरूप – गति आदि रूप परिणमा है, इसलिए उन पर्यायों – विशेषो से अनन्य है। अहाहा! जिसने अपनी त्रिकाली वस्तु को जाना है, उसने अपनी पर्याय को भी जाना है और वह उस काल मे उस पर्याय मे स्वय तन्मय है – ऐसा जाना है। यह पर्याय कोई परद्रव्य मे उत्पन्न हुई है – ऐसा नही है।

प्रश्न – समयसार गाथा ६५-६६ मे कहा है कि जीव के चौदह भेद नामकर्म के कारण हुए है? नाम-कर्म कारण है और वे चौदह भेद उसके कारण हुए है?

उत्तर – भाई! वहाँ अखण्ड एक शुद्ध चैतन्यमय वस्तु भगवान ज्ञायक का लक्ष्य कराना है, शुद्ध निर्मलानन्दस्वरूप प्रभु आत्मा का स्वरूप बताना है, इसलिए वे चौदह भेद आत्मा में नही है – ऐसा कहा; जबकि यहाँ उसकी पर्याय के अश मे जितना नारकपना आदि है, उसका ज्ञान कराना है, इसलिए जीवद्रव्य उनमे उस समय तन्मय है – ऐसा कहा है। मनुष्यपना अर्थात यह शरीर नही, अपितु अन्दर गति की योग्यतारूप अवस्थाविशेष मे उस समय जीव तन्मय है। जिस आकार की लकडियाँ या पत्ते होते है, अग्नि उसी आकारमय हो जाती है, दाह्याकार से तन्मय हो जाती है, उससे जुदी नही रहती। उसी प्रकार आत्मा चार गति और सिद्ध अवस्था में जिस पर्याय को प्राप्त करता है, उससे उस काल मे तन्मय हो जाता है।

प्रश्न – कही ऐसा कथन क्यो आता है कि जिस प्रकार अग्नि तृणादिरूप परिणमित नही होती; उसी प्रकार आत्मा गति आदि पर्यायरूप परिणमित नही होता ?

उत्तर – भाई ! वह कथन द्रव्यदृष्टि की अपेक्षा है, परन्तु द्रव्यदृष्टिवन्त को पर्याय का ज्ञान होने के काल मे, वह पर्याय किस रूप है ? यहाँ उसका ज्ञान कराया है।

यह प्रवचनसार ज्ञानप्रधान ग्रन्थ है।

जिस प्रकार अग्नि उस-उस काल मे लकडी, कण्डे, पत्ते इत्यादि के आकाररूप पर्याय मे तन्मय है; उसीप्रकार द्रव्य उन-उन पर्यायमय अर्थात् तन्मय है; उनसे अनन्य है, भिन्न नही है। जैसे शरीर भिन्न है, कर्म भिन्न है, वैसे गतिरूप पर्याय भी जीव से भिन्न है – ऐसा नही है, बल्कि द्रव्य, पर्याय से अनन्य है अर्थात् तन्मय है। बेचारे भोले अज्ञानी जीवो ने जब ऐसा उपदेश कभी सुना भी नही, तो उन्हे विचार करने का अवसर कहाँ से मिलेगा ? उसे दिन-रात कमाई और स्त्री-पुत्रादि की सम्हाल से फुरसत मिले तब न ? परन्तु भाई ! यह सब तो पापभाव है। अरे, भगवान् ! यदि यह बात न समझी तो पाप की पोटली के भार से तू भवसमुद्र मे डूब जाएगा।

यहाँ कहते है कि जिसने एक शुद्धद्रव्य को जाना है, उसे पर्याय को देखनेवाला ज्ञान भी खुला है अर्थात् स्वरूप को जानने से उसे पर्याय को जाननेवाला ज्ञान खुला है, और वह इससे जानता है कि यह विशेष – पर्याय मुझ मे है, अन्य कोई चीज मुझमे नही तथा मैं उनमे नही। स्त्री-पुत्र, पैसा, बगला इत्यादि मेरे है – यह सब झूठी बाते है,क्योकि मैं उनमे तन्मय नही तथा वे वस्तुएँ मुझमे तन्मय नही है। ऐसी वस्तुस्थिति है, फिर भी अज्ञानी परपदार्थों को अपना मान बैठा है। तुझे कहाँ जाना है प्रभु ? क्या नरक निगोद मे जाना है ? भाई ! दुनिया को जमे

या न जमे, वस्तुस्थिति तो यही है। जिसे अपनी आत्मा के सिवाय बाहर की चमक-दमक मे जरा भी वीर्य उल्लसित हो या उसमे जरा भी 'यह ठीक है'– ऐसा लगे, वह मिथ्यादृष्टि है। उसे न तो द्रव्य का ज्ञान है, न पर्याय का, वह तो अज्ञानी है।

अपने द्रव्य और पर्याय के सिवाय परपदार्थ का चाहे जितना वैभव दिखे, उसका आत्मा के द्रव्य व गुण से तो क्या? पर्याय से भी कोई सम्बन्ध नही है। तेरी पर्याय मे जो गति हुई, सिर्फ उससे तेरा सम्बन्ध है और उस समय तू उसमे तन्मय है। ध्यान रहे मात्र उसी समय तन्मयता है, क्योकि पर्याय सदा वही की वही नही रहती। मनुष्यगति से बदलकर एकदम देव-गति हो जाएगी, देवगति से बदलकर एकदम मनुष्यगति हो जाएगी और फिर मनुष्यगति से बदलकर एकदम सिद्धदशा हो जाएगी; इसलिए वे पर्याये जुदी-जुदी होगी, फिर भी उस समय तू उनसे अनन्य है। इसप्रकार अन्य-अन्य होते हुए भी अनन्य है। यहाँ तो मनुष्यादि पाँचो पर्यायो को परस्पर अन्य-अन्य कहा, परन्तु उस समय तो उनके साथ तन्मय होने से द्रव्य अनन्य है। अहो! सन्तो ने तो अमृत की बेल बोई है। अज्ञानी यह बात समझने के लिए अभी फुरसत नही निकालता तो फिर समझने का उसे ऐसा अवसर कब मिलेगा?

अरे भाई! द्रव्य मे जिससमय, जिसक्षेत्र मे, जिसप्रकार जो होनेवाला है; उसीसमय, उसीक्षेत्र मे, उसीप्रकार, वही अवश्य होगा; उसमे फेरफार नही हो सकता। परद्रव्य की पर्याय तुझे छूती भी नही है तो फिर तुझे किसकी चिन्ता है? द्रव्य के स्वभाव को जानकर पर्यायार्थिक नय से पर्याय के अस्तित्व मे विद्यमान पाँचो गतियो मे उस-उस काल मे द्रव्य स्वय तन्मयपने है, परन्तु पर मे कभी तन्मय नही होता – ऐसा ज्ञानी जानते है। मनुष्यगति की पर्याय के समय द्रव्य उससे तन्मय है,

उस समय सिद्धगति आदि नही है और जब सिद्धपर्याय के समय द्रव्य उससे तन्मय होगा, उस समय देवादि अन्य ससार-पर्यायो से तन्मय नही होगा। इसप्रकार उन-उन विशेषो के समय उन मय होने के कारण उस-उस काल मे द्रव्य उनसे अनन्य है, जुदा नही – ऐसा ज्ञानी यथार्थ जानते हैं। पर्याय से देखने पर द्रव्य अन्य-अन्य भासित होता है, तो भी पर्याय मे तन्मय होने से द्रव्य अनन्य भी है।

यहाँ तक एक आँख बन्द करके, दूसरी खुली हुई आँख द्वारा वस्तु को देखने की बात की, अब दोनों आँखो को एक साथ खोलकर देखने की बात करते है।

अब तीसरी बात करते है –

और जब उन द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दोनो आँखों को एक ही साथ खोलकर उनके द्वारा और इनके द्वारा (द्रव्यार्थिक तथा पर्यायार्थिक चक्षुओ के द्वारा) देखा जाता है; तब नारकपना, तिर्यञ्चपना; मनुष्यपना, देवपना और सिद्धपना – इन पर्यायो मे रहनेवाला जीवसामान्य तथा जीव-सामान्य मे रहनेवाले नारकपना, तिर्यञ्चपना, मनुष्यपना, देवपना और सिद्धत्व – इन पर्यायस्वरूप विशेष; तुल्यकाल मे (एक ही साथ) दिखाई देते है।

देखो ! यहाँ प्रमाण की बात की है। तुल्यकाल अर्थात् एक ही समय मे सामान्य को जाने और विशेष को भी जाने। ध्यान रहे कि यहाँ जानने की बात है, आदर तो एक द्रव्य-सामान्य का ही है; विशेष का नही है। यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि ज्ञान,जैसे सामान्य को जानता है, वैसे विशेष को भी जानता है; मात्र जानने की अपेक्षा है। उपादेय तो एक शुद्ध आत्मद्रव्य ही है। विशेष (पर्याय) आश्रय करने योग्य नही है। यहाँ तो

प्रतिसमय द्रव्य और पर्याय का अस्तित्व किसप्रकार है – उसकी सिद्धि करते है।

जब द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक दोनों चक्षुओं को एक ही साथ खोलकर देखा जाता है तब……।

देखो, यहाँ क्षयोपशमज्ञान मे दोनो को जानने का उघाड है, इसलिए कहा है कि दोनो चक्षुओ द्वारा एक ही साथ देखने पर समान्य द्रव्य भी दिखता है और वह पर्यायो मे तन्मय है – ऐसा भी दिखता है; दोनो एक साथ दिखते है। यहाँ जानने की अपेक्षा बात है।

अहाहा ! जब दोनो चक्षुओ द्वारा देखा जाए, तब पाँचो पर्यायो मे रहनेवाला जीवसामान्य और जीवसामान्य मे रहने-वाली पाँचो पर्याये एक साथ दिखाई देती है। जीवद्रव्य एक ही साथ नारकत्वादि पाँचो पर्यायो मे रहता है – ऐसा नही है; परन्तु उस-उस समय एक-एक पर्याय मे रहता है, इसप्रकार अलग-अलग समयो मे पाँचो पर्यायो मे रहता है –ऐसा समझना चाहिए।

पहले द्रव्य को मुख्य और पर्याय को गौण करके सामान्य को देखने के लिए कहा था तथा पर्याय को देखते समय सामान्य द्रव्य को मुख्यपने देखना छोड दिया था, लेकिन अब दोनो को एकसाथ देखने के लिए यह प्रमाणज्ञान कहा है। पर को देखने की यहाँ बात ही नही की, क्योकि उसका यहाँ प्रश्न ही नही है। पर को जाननेवाली पर्याय अपनी है, पर की नही, पर के कारण भी नही। पर को जानती है, इसलिए वह पर्याय पर के कारण हुई है – ऐसा नही है। भाई ! यह तो मात्र अपने द्रव्य और पर्याय के सिवाय अनन्त परद्रव्य और उनकी पर्यायो मे गर्व (ममत्व और कर्त्तृत्व) को उठा लेने की बात है। यदि पर मे जरा भी गर्व रहा तो आत्मा की मृत्यु ही समझो।

भगवान् ! तू त्रिकाली सामान्यद्रव्य है और पाँचो पर्यायें तेरी विशेष है, उन पर्यायो के काल मे तू उनमे तन्मय है। पाँचो पर्यायो मे एक साथ नही, अपितु उस-उस गति के काल मे ही उसमे तन्मय है। इसप्रकार पर्याय-अपेक्षा अन्य-अन्य होते हुए भी द्रव्य अपेक्षा अनन्य है, परन्तु परद्रव्य के साथ कभी भी अनन्य नही है। एक गति की पर्याय के समय दूसरी गति नही होती, इसलिए द्रव्य अन्य-अन्य है; परन्तु उस पर्याय से अनन्य है। द्रव्य अन्य द्रव्यो के साथ त्रिकाल मे एकसमय भी अनन्य नही होता।

देखो ! यह पुस्तक और इसके पन्ने, सब अन्य द्रव्य की पर्यायें है, वास्तव मे इनका जानना भी कहाँ है ? क्योकि उन्हे जानने के काल मे तो तू अपनी ज्ञानपर्याय मे तन्मय है, उन पदार्थों मे नही। शास्त्रादि को जाननेवाली ज्ञानपर्याय भी कही उनमे (शास्त्रादि मे) तन्मय नही हो जाती। दूसरे समय विशेष ज्ञात हुआ तो उस काल मे भी वह ज्ञान पर के साथ तन्मय नही है। पर्यायें अन्य-अन्य है, इसलिए पर्याय की अपेक्षा द्रव्य अन्य-अन्य है, परन्तु द्रव्य की अपेक्षा अनन्य है, क्योकि पर्याय द्रव्य से कोई जुदी चीज नही है। भाई ! परद्रव्य और उसकी पर्याय तो स्वद्रव्य और अपनी पर्याय से बिलकुल भिन्न है। अहाहा ! जिस शरीर के साथ पचास-पचास या सौ-सौ वर्ष बिताए है – ऐसे शरीर के साथ भी आत्मा एकसमय के लिए भी तन्मय नही हुआ। जबकि पर्यायदृष्टि से देखने पर अपनी पर्यायें अन्य-अन्य होते हुए भी उनमे वर्त्तता होने के कारण द्रव्य उनसे अनन्य है।

अब कहते है कि एक आँख से देखना, एकदेश अवलोकन है और दोनो आँखो से देखना, सर्वावलोकन (सम्पूर्ण अवलोकन) है; इसलिए सर्वावलोकन में द्रव्य के अन्यत्व और अनन्यत्व विरोध को प्राप्त नहीं होते।

देखो ! एक चक्षु द्वारा देखने पर एकदेश – एक भाग का ज्ञान होता है और दोनो आँखो से देखने पर सम्पूर्ण ज्ञान होता है। यह बात जानने को अपेक्षा है। आदरणीय क्या है? यह बात यहाँ नही है, क्योकि आदरणीय तो क्षायिकभाव भी नही है।

प्रश्न – नियमसार, गाथा ५० मे तो क्षायिकभाव को भी परद्रव्य, परभाव और हेय कहा है, जबकि यहाँ कहते है कि द्रव्य, गति के उदयभाव मे भी तन्मय है – यह कैसी बात है?

उत्तर – भाई ! नियमसार मे वहाँ उपादेयरूप शुद्ध अन्त तत्त्व, एक, शुद्ध, ज्ञायकभाव का लक्ष्य कराने का प्रयोजन है और यहाॅ जिसे अन्त तत्त्व का भान हुआ है, उसके द्रव्य-पर्याय का प्रतिसमय अस्तित्व कैसा है – यह बताने का प्रयोजन है। यहाँ ज्ञानप्रधान शैली है। बापू ! इस ग्रन्थ की एक-एक गाथा खूब गभीरता से भरी हुई हैं। कोई ऊपर-ऊपर से पढ ले तो वह इसका मर्म कैसे समझेगा?

अब कहते है कि **सर्व-अवलोकन में द्रव्य के अन्यत्व और अनन्यत्व विरोध को प्राप्त नहीं होते।**

द्रव्य का अन्यत्व अर्थात् भिन्न-भिन्न पर्यायपना और अनन्यत्व अर्थात् वर्त्तमान अपेक्षा पर्याय से द्रव्य की अभिन्नता; इन दोनो मे कोई विरोध नही आता। जो गतिरूप पर्याय है, वह अपने-अपने समय मे एक-एक है; इसलिए अन्य-अन्य है। ससार की चार गतियो के काल मे सिद्धत्व नही है तथा सिद्धत्व के काल मे ससार की चार गतियाँ नही है – इस अपेक्षा से द्रव्य को अन्यत्व है और आत्मा उनमे उस-उस समय तन्मय है, इसलिए अनन्यत्व भी है। इसप्रकार सर्व-अवलोकन मे द्रव्य के अन्यत्व और अनन्यत्व मे विरोध नही आता।

सारे दिन स्त्री-पुत्र की सम्हाल मे लगे रहनेवाले जगत को, ऐसी सूक्ष्म बात कैसे समझ मे आ सकती है। अरे रे! जिसे तत्त्व सुनने की भी फुसरत नही है,वह कहाँ जाएगा ? बहुत से जीवो को धर्म तो दूर, पुण्य का भी ठिकाना नही है– ऐसे जीव तो मरकर तिर्यञ्च गति मे जाएँगे। यहाँ तो जीव को पर के सम्बन्ध से सर्वथा भिन्न बताया है, फिर भी यह पर की व्यवस्था मे अटक रहा है। भगवान्! स्त्री, पुत्र, मकान, गहने, कपडे, शरीर, इज्जत – ये सब अपने-अपने मे है, इनसे तेरा कोई सम्बन्ध नही है, फिर भी प्रभु! तू इनमे रुक गया है, तूने अपने को नही देखा, अपने द्रव्य-पर्याय का स्वरूप नही जाना। यहाँ तो तेरे द्रव्य-पर्याय का ही स्वरूप बताया गया है।

भावार्थ पर प्रवचन

प्रत्येक द्रव्य सामान्य-विशेषात्मक है, इसलिए प्रत्येक द्रव्य वैसा का वैसा भी रहता है और बदलता भी है।

प्रत्येक द्रव्य सामान्य-विशेषात्मक है, अर्थात् द्रव्य मे जो विशेषपना भासित होता है, वह उसका स्वरूप है। विशेष कोई परद्रव्य के कारण होता है – ऐसा नही है। प्रत्येक द्रव्य सामान्य-विशेष स्वरूप है। सामान्य तो ध्रुव है और विशेष मे परिवर्तन होता है। विशेष मे जो परिवर्तन होता है, उसमे पर की अपेक्षा नही है, क्योकि परिवर्तन होना पर्याय का स्वभाव है, इसलिए स्वद्रव्य की पर्याय मे किसी अन्य द्रव्य की अपेक्षा है ही नही। सम्पूर्ण विश्व मे अनन्त-अनन्त द्रव्य सामान्य-विशेषपने विराज रहे है, इसलिए उन्हे अपने विशेष के लिए किसी अन्य की अपेक्षा नही है। उनकी अवस्थाओ को किसी काल या किसी क्षेत्र मे पर की अपेक्षा नही है। प्रत्येक द्रव्य की अवस्था अपने काल मे स्वतन्त्र हो – ऐसा ही उसका सामान्य-विशेष स्वरूप है।

प्रत्येक द्रव्य सामान्यपने—ध्रुवपने रहता है, उसमे बदलाव नही है, अर्थात् वैसा का वैसा ही रहता है तथा विशेषपने बदलता भी है। अहाहा ! पलटना तो उसकी पर्याय का स्वभाव ही है, इसलिए पर्याय किसी अन्य के कारण पलटती है – ऐसा तीनकाल मे भी नही है। जीव या पुद्गल किसी भी द्रव्य का नरक-निगोद या स्कन्धरूप किसी भी पर्यायरूप होना, उसका स्वभाव है, इसलिए यदि वह विशेष किसी पर के कारण उत्पन्न होता हुआ लगे तो वह दृष्टि विपरीत है। यह बात अज्ञानी के गले उतरना मुश्किल है, परन्तु क्या करे ? वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। ये शब्द तो सादे हैं, परन्तु भाव बहुत गम्भीर है।

अहाहा ! वस्तु का अस्तित्व अनन्त परपदार्थों से भिन्न है। आकाश के एक प्रदेश मे रहते हुए भी छहो द्रव्य भिन्न-भिन्न है। जीव असख्यात प्रदेशी है, इसलिए एक जीव आकाश के एक प्रदेश मे नही रह सकता, असख्यात प्रदेशो मे रहता है। फिर भी यहाँ ऐसा कहते है कि जीव अपने असख्यात प्रदेशो मे रहता है, उसे आकाश के प्रदेशो की अपेक्षा नही है। वास्तव मे तो जीव के प्रदेश आकाश के प्रदेशो को छूते भी नही है।

प्रश्न – आकाश न हो तो सभी द्रव्य कहाँ रहेगे ? छहो द्रव्य आकाश मे रहते है – ऐसा कथन तो आता है न ?

उत्तर – भाई ! यह तो निमित्त की कथनी है। ऐसा कथन भी तो आता है कि यदि आकाश परद्रव्यो का आधार हो तो आकाश का आधार कौन है ? तथा प्रत्येक द्रव्य के परिणमन मे काल का निमित्त है ? भाई ! जब निमित्त की सिद्धि करना हो तब ऐसा कहा जाता है कि आकाश न हो तो सभी द्रव्य कहाँ रहेगे ? परन्तु इससे ऐसा नही समझना चाहिए कि कोई भी द्रव्य किसी अन्य द्रव्य की पर्याय मे कोई भी परिवर्तन कर सकता है, क्योकि ऐसा वस्तु-स्वरूप ही नही है।

चौदह ब्रह्माड मे अनन्त द्रव्य है। प्रत्येक द्रव्य अपने से ही सामान्य-विशेषपने रहता है। अक्रिय, ध्रुवरूप, सामान्य को तो पर की अपेक्षा नही है, परन्तु जिसमे अनेक भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ होती है – ऐसे विशेष को भी पर की अपेक्षा नही है। विशेष भी द्रव्य का सहजस्वरूप ही है। जो पलटना होता है, वह उसका स्वयं का स्वभाव ही है। विशेषपना पर के कारण हो – ऐसा वस्तुस्वरूप ही नही है। आत्मा को अपने सामान्य और विशेष के लिए किसी भी परद्रव्य की – यहाँ तक कि तीर्थङ्कर की भी अपेक्षा नही है।

प्रश्न – शास्त्र मे तो आता है कि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति सद्गुरु के चरण-कमलो के प्रसाद से होती है ?

उत्तर – हाँ, ऐसी भाषा तो बहुत आती है, परन्तु यह कथन तो सम्यग्दर्शन के काल मे कैसा निमित्त होता है – यह बताने के लिए किया जाता है। आत्मा ध्रुव सामान्यरूप है और सम्यग्दर्शन उसका विशेष है, पर्याय है। वह विशेष आत्मा का ही स्वरूप है, इसलिए वह किसी पर की अपेक्षा नही हुआ है। गुरु के प्रसाद से या दर्शनमोह के अभाव से सम्यग्दर्शन पर्याय हुई हो – ऐसा नही है। यदि ऐसा हो तो वहाँ द्रव्य के विशेष की – पर्याय की अपनी स्वय की सामर्थ्य का अभाव होगा।

तत्त्वार्थसूत्र मे आता है – 'तद्भाव परिणाम' अर्थात् परिणाम द्रव्य का स्वभाव है, इसलिए सम्यग्दृष्टि जीव अपने सामान्य और विशेष के अतिरिक्त परपदार्थों से अत्यन्त उदास है। किसी परपदार्थ की अपेक्षा मुझ मे कुछ फेर पड जाएगा या मेरे कारण पर मे कुछ फेर पड जाएगा – ऐसी दृष्टि (मान्यता) सम्यग्दृष्टि की नही है। भाई ! बात तो थोडी है, परन्तु उसकी गम्भीरता अपार है।

अब कहते है कि **द्रव्य का स्वरूप ही ऐसा उभयात्मक होने से द्रव्य के अनन्यत्व और अन्यत्व में विरोध नही है ।**

द्रव्य सामान्य-विशेषस्वरूप ही है, इसलिए 'कोई पर्याय पहले नही थी और अब हुई है' – इस अपेक्षा अन्य-अन्य है, परन्तु उस-उस पर्याय मे द्रव्य तन्मय है, इसलिए अनन्य है । इसप्रकार अन्यपना भी कहा जाता है और अनन्यपना भी कहा जाता है, दोनों में कई विरोध नही है । मनुष्यगति के समय सिद्धगति आदि नही है और सिद्धपद के समय मनुष्यगति आदि नही है, इसलिए द्रव्य अन्य-अन्य कहा जाता है और उस-उस काल मे द्रव्य उस-उस पर्याय मे तन्मय है, इसलिए अनन्य भी कहा जाता है । इसप्रकार द्रव्य के अनन्यपने और अन्यपने में कोई विरोध नही है ।

अब उदाहरण देते हैं कि **जैसे मारीचि और भगवान महावीर का जीवसामान्य की अपेक्षा से अनन्यत्व और जीव के विशेषों की अपेक्षा से अन्यत्व होने में किसी प्रकार का विरोध नहीं है ।**

अहाहा ! कहाँ मारीचि की पर्याय और कहाँ भगवान महावीर की पर्याय । पर्यायों की अपेक्षा देखने पर उनमे अन्य-पना भासित होता है, फिर भी उन अवस्थाओ मे जीव तो वही का वही है, इसलिए द्रव्य की अपेक्षा – जीवसामान्य की अपेक्षा अनन्यपना भासित होता है । इसप्रकार अन्यपना और अनन्य-पना वस्तुस्वरूप मे ही है, उनमे कोई विरोध नही तथा पर की अपेक्षा भी नही है ।

द्रव्यार्थिकनयरूपी एक चक्षु से देखने पर द्रव्यसामान्य ज्ञात होता है, इसलिए द्रव्य अनन्य अर्थात् वही का वही भासित होता है ।

देखो ! पर्याय को देखनेवाली आँख बन्द करके द्रव्य को देखनेवाली आँख खोले तो एक द्रव्यसामान्य ही ज्ञात होता है, इसलिए द्रव्य अनन्य अर्थात् वही का वही का वही भासित होता है।

और पर्यायार्थिकनयरूपी दूसरी चक्षु से देखने परद्रव्य के पर्यायरूप विशेष ज्ञात होते हैं, इसलिए द्रव्य अन्य-अन्य भासित होता है।

पर्यायो मे तो बहुत अन्तर दिखाई देता है। कहाँ मारीचि की मिथ्यादर्शनरूप अवस्था और कहाँ भगवान महावीर की तीर्थङ्कर केवलीरूप अवस्था ? पूर्व-पश्चिम का अन्तर है। कहाँ निगोद मे अक्षर के अनन्तवे भागरूप ज्ञानपर्याय और कहाँ वहाँ से निकलकर मनुष्य होकर आठ वर्ष मे ही प्राप्त होनेवाली केवलज्ञान पर्याय ? उन पर्यायो मे जीवसामान्य तो वही है (एक ही है), परन्तु विशेष की अपेक्षा से अन्यपना भासित होता है, अन्तर भासित होता है।

निगोद मे अक्षर के अनन्तवे भाग ज्ञान का उघाड है। वहाँ भी शुभभाव होता है, इसलिए कोई जीव वहाँ से निकल कर मनुष्य भी होता है। इस मनुष्य पर्याय मे आठ वर्ष की उम्र मे भी पूर्ण सामर्थ्य से भरे हुए भगवान आत्मा की दृष्टि करके, उसमे ही ठहरकर यह जीव केवलज्ञान प्राप्त कर लेता है। देखो, कहाँ निगोद मे अक्षर के अनन्तवे भागरूप ज्ञान और कहाँ मनुष्यपने मे केवलज्ञान – एकदम इतना अन्तर ! वीतराग का मार्ग अचिन्त्य और अलौकिक है, परन्तु लोगो ने दया, दान, प्रतिक्रमण, सामायिक, उपवास आदि क्रियाकाण्ड मे धर्म मान लिया है। बाह्यव्रत मे सवर और तप-उपवास मे निर्जरा मान ली है। अरे रे, प्रभु ! तूने क्या मान रखा है ? भगवान के द्वारा कहे हुए अलौकिक द्रव्य और पर्याय – दोनो

की तुझे खबर नही है। यहाँ कहते है कि भले पर्याय में अन्तर मालूम पड़ता है, इसलिए अन्यपना भासित हो; परन्तु उन पर्यायो मे द्रव्य तो वही का वही है, इसलिए द्रव्य की अपेक्षा तो अनन्यपना है।

कोई अरबपति यहाँ गादी पर बैठा हो, पच्चीस-पचास नौकर हो, सब लोग सलाम करते हो, परन्तु आयु पूरी हो जाए तो मर कर नरक जाए। देखो ! यहाँ पर्याय अपेक्षा अन्यपना है। क्षण मे दूसरी पर्याय और क्षण में दूसरी पर्याय – इसप्रकार भिन्न-भिन्न पर्यायें है। है, परन्तु वे पर्यायें आत्मा से भिन्न है – ऐसा नही है। आत्मा से तो वे अनन्य ही है, क्योकि उनमे आत्मा ही वर्त्तता है। पर्याय से देखो तो द्रव्य अन्य-अन्य भासित होता है, परन्तु द्रव्य से देखने पर तो वह अनन्य है, क्योंकि पर्याय, द्रव्य से भिन्न नही है तथा द्रव्य, पर्याय से भिन्न नही है।

अब कहते है कि **दोनों नयरूपी दोनों चक्षुओं से देखने पर द्रव्यसामान्य और द्रव्य के विशेष दोनों ज्ञात होते हैं; इसलिए द्रव्य अनन्य तथा अन्य-अन्य दोनों भासित होता है**

वस्तु स्वय त्रिकाल ध्रुवरूप भी है और वर्त्तमानपर्यायरूप भी है – इसकार दोनो भासित होते हैं। द्रव्य-पर्याय का ऐसा स्वरूप समझने की फुरसत न निकाले तो मनुष्यपना व्यर्थ चला जाएगा, क्योंकि मनुष्यत्व का जितना काल निश्चित है, उतना ही है। यदि द्रव्य की सामान्य-विशेष शक्तियो का ज्ञान नही किया, और पर के कारण मुझमें कुछ फेरफार होता है तथा मेरे कारण पर मे कुछ फेरफार होता है – ऐसा मानकर प्रवर्त्तन किया तो प्रभु ! तेरा परिभ्रमण नही मिटेगा, विपरीत दृष्टि के कारण तेरा भव-भ्रमण का चक्र नही मिटेगा; इसलिए द्रव्य-पर्याय का यथार्थ निर्णय करके द्रव्यसामान्य का आश्रय ले और उसमे लीनता कर, तो तुझे सिद्धपर्यायरूप विशेष प्रगट होगा।

सयमसारकलश २७१ : बालबोधिनी टीका

(पाण्डे राजमलजी कृत)

(शालिनी)

योऽयं भावो ज्ञानमात्रोऽहमस्मि
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानमात्रः स नैव ।
ज्ञेयो ज्ञेयज्ञानकल्लोलवल्गन्
ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्र ॥२७१॥

श्लोकार्थ – जो यह मैं ज्ञानमात्र भाव हूँ, वह ज्ञेयो का ज्ञानमात्र ही नही जानना चाहिए, परन्तु ज्ञेयो के आकार से होने वाले ज्ञान की कल्लोलो के रूप मे परिणमित होता हुआ वह ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातामय वस्तु मात्र जानना चाहिए। (अर्थात् स्वय ही ज्ञान, स्वय ही ज्ञेय, स्वय ही ज्ञाता – इसप्रकार ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातारूप) तीनो भाव युक्त वस्तुमात्र जानना चाहिए।[1]

खण्डान्वय सहित अर्थ – भावार्थ इसप्रकार है कि ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध के ऊपर बहुत भ्रान्ति चलती है सो कोई ऐसा समझेगा कि जीव वस्तु ज्ञायक, पुद्गल से लेकर भिन्न रूप छह द्रव्य ज्ञेय है। सो ऐसा तो नही है। जैसा इस समय कहते हैं उस प्रकार है – "अह अय य ज्ञानमात्र भाव अस्मि" [अहं] मैं [अयं यः] जो कोई [ज्ञानमात्रःभाव अस्मि] चेतना सर्वस्व ऐसा वस्तुस्वरूप हूँ "सः ज्ञेय न एव" वह मैं ज्ञेयरूप हूँ, परन्तु ऐसा ज्ञेयरूप नही हूँ – "ज्ञेय ज्ञानमात्र" [ज्ञेयः] अपने जीव से भिन्न छह द्रव्यो के समूह का [ज्ञानमात्रः] जानपना मात्र। भावार्थ इसप्रकार है कि मैं ज्ञायक समस्त छह द्रव्य मेरे ज्ञेय ऐसा तो नही है। तो कैसा है? ऐसा है – "ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्र ज्ञेय" [ज्ञान] जानपनारूप शक्ति [ज्ञेय] जानने योग्य शक्ति [ज्ञातृ] अनेक शक्ति विराजमान वस्तुमात्र, ऐसे तीन भेद

---

१ समयसार, प्रकाशक–पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा उद्धृत।

[**मद्वस्तुमात्रः**] मेरा स्वरूपमात्र है [**ज्ञेय**] ऐसा ज्ञेयरूप हूँ। भावार्थ इसप्रकार है कि मै अपने स्वरूप को वेद्य-वेदकरूप से जानता हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञान, यत मै आप द्वारा जानने योग्य हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञेय,यत ऐसी दो शक्तियो से लेकर अनन्त शक्तिरूप हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञाता। ऐसा नामभेद है, वस्तुभेद नही है। कैसा हूँ ? "ज्ञानज्ञेयकल्लोलवल्गन्" [**ज्ञान**] जीव ज्ञायक है [**ज्ञेय**] जीव ज्ञेयरूप है ऐसा जो [**कल्लोल**] वचनभेद उससे [**वल्गन्**] भेद को प्राप्त होता हूँ। भावार्थ इस प्रकार है कि वचन का भेद है, वस्तु का भेद नही है ।।२७१।।

सरलार्थ – ज्ञेय-ज्ञायक सबध के बारे मे बहुत भ्रातियाँ रहती है। कोई ऐसा मानते है कि जीव वस्तु ज्ञायक है तथा पुद्गल आदि छह द्रव्य ज्ञेय है – परन्तु ऐसा नही है। मै चेतना-स्वरूप वस्तु स्वयं ज्ञेयरूप हूँ, परन्तु मै अपने से भिन्न छह द्रव्यो को जाननेवाला मात्र हूं, अर्थात् मै ज्ञायक हूँ और अन्य समस्त द्रव्य मेरे ज्ञेय है – मै ऐसा ज्ञेयरूप नही हूँ (मेरी ज्ञान पर्याय ही मुझ मे ज्ञेय रूप है) मै जानने की शक्तिरूप हूँ इसलिये स्वय ज्ञान हूँ। जानने योग्य शक्तिरूप हूँ इसलिये ज्ञेय हूँ, तथा अन्य अनन्त शक्तियाँ मुझ मे विद्यमान है इसलिए ज्ञाता हूँ। इसप्रकार ये तीनो भेद मेरे स्वरूप मात्र ही हैं। मै अपने स्वरूप को वेद्य-वेदक रूप से जानता हूँ इसलिए मेरा नाम ज्ञान है तथा मै स्वयं अपने द्वारा जानने योग्य हूँ इसलिए मेरा नाम ज्ञेय है और क्योकि मै इन दोनो शक्तियो के साथ-साथ अनन्त शक्तियों रूप हूँ इसलिए मेरा नाम ज्ञाता है। इसप्रकार मुझ में नामभेद है परन्तु वस्तुभेद नही है। मै ज्ञान और ज्ञेय के वचनभेद से भेद-रूप होता हूँ, परन्तु यह भेद वस्तु का स्वरूप नही है।[1]

---

१ खण्डन्वय सहित अर्थ के आधार पर यह सरलार्थ दिया जा रहा है ।

कलश टीका पर प्रवचन

"भावार्थ इसप्रकार है कि" – देखा ? कलश का अर्थ करने से पहले अर्थात् उसमे क्या कहना है, यह स्पष्ट करने से पहले ही भावार्थ लिया है। देखो, ऐसा प्रारम्भ किया है कि –

"ज्ञेय-ज्ञायक सबध के ऊपर बहुत भ्राति चलती है।" भाई ! परज्ञेय तो व्यवहार से ज्ञेय है, वास्तव मे निश्चय से तो अपनी ज्ञान की दशा मे जो छह द्रव्यो का ज्ञान होता है वही अपना ज्ञेय है, वही अपना ज्ञान है और स्वय आत्मा ही ज्ञाता है।

यह तो पहले कहा है कि द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव (चारो ही) वह का वही है। अर्थात् सब एक ही है। द्रव्य भी वही है, क्षेत्र भी वही है, काल भा वही है और भाव भी वही है, परन्तु द्रव्य भिन्न है, क्षेत्र भिन्न है, काल भिन्न है और भाव भिन्न है – ऐसा नही है।

अहाहा ! अनन्त गुणो का वास्तु (निवास स्थान) जो वस्तु अर्थात् द्रव्य है वह द्रव्य ही असख्य प्रदेशी क्षेत्र है, वही त्रिकाल (काल) है और वही भाव है। जैसे – कैरी (कच्चे आम) मे स्पर्श-रस-गध-वर्ण कैरी से भिन्न नही हैं, परन्तु स्पर्श कहो तो भी वही है, रस कहो तो भी वही है, गध कहो तो भी वही है और वर्ण कहो तो भी वही है। वैसे ही अनत गुणो के पिण्डस्वरूप शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा का जो द्रव्य है, वही असख्यप्रदेशी क्षेत्र है। और जो असख्यप्रदेशी क्षेत्र है, वही द्रव्य है। तथा जो असख्य प्रदेशी क्षेत्र है वही त्रिकाल (काल) है और जो त्रिकाल है वही भाव है। इसप्रकार द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव इन चारो का भेद निकालकर निश्चय से सब अभेद है – ऐसा वस्तु का वास्तविक स्वरूप कहा है। यह बात बहुत सूक्ष्म है, पर सत्य तो सूक्ष्म ही होता है न ?

अहाहा ! दृष्टि का विषय तो द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की एकतारूप चित्स्वभाव है, उसमे चार भेद नही है। जो द्रव्य है वही परम-पारिणामिक भाव है। जो क्षेत्र है वही परम-पारिणामिकभाव है, त्रिकाल वस्तु भी परम-पारिणामिक भाव है और जो अनतस्वभावभाव है वह भी परम-पारिणामिक भाव है, इसलिए वे चारो ही एक ही चीज हैं, वे शुद्ध चित्स्वरूप से भिन्न-भिन्न चीज नही है। ऐसी अभेद एक शुद्ध चैतन्यमात्र वस्तु ही सम्यग्दर्शन का विषय है। बाह्य निमित्त तो सम्यग्दर्शन का विषय नही, व्यवहार का राग भी उसका विषय नही और अपने समय मे प्रगट हुई निर्मल निर्विकारी पर्याय भी सम्यग्दर्शन का विषय नही है। अहो ! सम्यग्दर्शन और इसका विषय ऐसी परम अद्भुत अलौकिक वस्तु है।

यहाँ कहते है – परद्रव्य ज्ञेय और भगवान आत्मा ज्ञायक – ऐसा ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध मानना भ्राति है, अर्थात् वास्तव मे ऐसा ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध नही है। वास्तव में तो ज्ञान अर्थात् जानपनेरूप शक्ति, ज्ञेय अर्थात् जो जानने मे आता है वह, और ज्ञाता अर्थात् अनन्त गुणो के पिण्डरूप वस्तु, ये सब सब एक वस्तु है।

"ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध के ऊपर बहुत भ्रान्ति चलती है, इसलिये कोई ऐसा समझेगा कि जीव वस्तु ज्ञायक, पुद्गल से लेकर भिन्नरूप छह द्रव्य ज्ञेय हैं। तो ऐसा तो नहीं है।"

देखो, यहाँ छह द्रव्य कहे उसमें अनन्त केवली भगवन्त आ गए, अनन्त सिद्ध भगवान आ गए, पचपरमेष्ठी आ गए और निगोद के अनन्त जीवो सहित सर्व ससारी जीव आ गए। आत्मा ज्ञायक है तथा अरहतादि पचपरमेष्ठी और अन्य जीव इसके ज्ञेय हैं – ऐसा नही है। गजब बात है भाई ! ये तो ज्ञेय-ज्ञायक का व्यवहार सम्बन्ध छुडाकर भेदज्ञान कराने की बात है। समझ मे आया ?

जाननस्वभावी भगवान आत्मा ज्ञायक है और अनत केवली, सिद्ध और ससारी जीव इसके ज्ञेय है – ऐसा नही है। तथा जीव-वस्तु ज्ञायक है और एक परमाणु से लेकर अचेतन महास्कध पर्यन्त सभी स्कन्ध और कर्म आदि इसके ज्ञेय है – ऐसा भी नही है। जैनतत्त्व बहुत सूक्ष्म है भाई! धर्मात्मा को व्यवहार रत्नत्रय का राग होता है परन्तु आत्मा ज्ञायक है और व्यवहार रत्नत्रय का राग इसका ज्ञेय है – ऐसा नही है। समयसार की बारहवी गाथा मे कहा है कि व्यवहार (राग) जाना हुआ प्रयोजनवान है, पर वहाँ इसे 'जाना हुआ' कहा, यह भी व्यवहार है, क्योकि वास्तव मे तो ज्ञान, पर्याय को जानता है और पर्याय ही अपना ज्ञेय है। राग को ज्ञेय कहना तो व्यवहार है।

देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, नवतत्त्व की भेदवाली श्रद्धा का राग और पचमहाव्रत के आचरण का राग, जो कि छह द्रव्यो मे आ जाता है, वह अपना स्वभाव तो नही, पर वास्तव मे अपना ज्ञेय भी नही है, वह पर वस्तु है। यह शरीर और उसके रोग, वार्धक्य आदि जो अनेक अवस्थाये होती है तथा स्त्री-कुटुम्ब-परिवार, देव-शास्त्र-गुरु, धन-सम्पत्ति इत्यादि परद्रव्य भगवान ज्ञायक मे तो नही, परन्तु ये परद्रव्य ज्ञेय है, प्रमेय है और भगवान आत्मा ज्ञाता है, प्रमाता है – ऐसा भी नही है। भाई! यह तो (उपयोग को) सब तरफ से सकोच करने की बात है। यह कठिन काम है भाई! क्योकि अनन्तकाल से यह काम किया नही, परन्तु इसके बिना भव का अत नही आयेगा।

अहाहा! जीववस्तु ज्ञायक है और पुद्गल आदि छह द्रव्य इसके ज्ञेय है – ऐसा वस्तुस्वरूप नही, क्योकि छह द्रव्य जिस ज्ञान मे प्रतिभासित होते है वह ज्ञान पर्याय उन-उन ज्ञेयो के कारण नही हुई है, परन्तु वह स्व-पर को प्रकाशती हुई स्वय

अपने सामर्थ्य से प्रगट हुई है। इसलिये अपनी ज्ञान की पर्याय ही अपना ज्ञय है।

अब कहते है – "जैसे अब कहा जाता है वैसा है – "अहम् अय यः ज्ञानमात्रः भाव अस्मि" मै जो कोई चेतना सर्वस्व ऐसा वस्तुस्वरूप हूँ "सः ज्ञेयः" वह मै ज्ञेय रूप हूँ।"

अहाहा ! देखा क्या कहा ? मैं जानने-देखनेरूप चेतना जिसका सर्वस्व है, ऐसा वस्तुस्वरूप हूँ और मै स्वय ज्ञेयरूप हूँ परतु मुझे छह द्रव्यो का ज्ञेयपना है अर्थात् छह द्रव्य मेरे ज्ञेय है – ऐसा नही है अपितु मेरी ज्ञान पर्याय ही मुझमे ज्ञय रूप है। अहा ! इन अन्तिम कलशो मे बहुत सूक्ष्म गम्भीर बाते की है। यहाँ कहा जा रहा है कि केवली भगवान लोकालोक को जानते है – ऐसा नही है।

प्रश्न – क्या भगवान लोकालोक को नही जानते ? आत्मा ज्ञायक है तो छह द्रव्य इसके ज्ञेय है या नही ? छह द्रव्य केवलज्ञान के ज्ञेय है या नही ? निश्चय से नही, परन्तु व्यवहार से तो हैं।

उत्तर – अरे भाई ! "व्यवहार से है" इसका अर्थ क्या ? यही कि – ऐसा नही है। अपने मे – अपनी ज्ञान पर्याय मे लोकालोक का ज्ञान अपने कारण से होता है, वह ज्ञान-पर्याय अपना ज्ञेय है, परन्तु लोकालोक ज्ञेय नही है। बहुत सूक्ष्म बात है। यह तो धैर्यवालो का काम है बापू ! यह कहो जल्दबाजी से प्राप्त होनेवाली वस्तु नही है।

"सः ज्ञेयः न एव" मै जो कोई चेतनासर्वस्व – ऐसा वस्तुस्वरूप हूँ, वह मै ज्ञेयरूप हूँ, परन्तु ऐसा ज्ञेयरूप नही; कैसा ज्ञेयरूप नही ?"ज्ञेय ज्ञानमात्र "अपने जीव से भिन्न छह द्रव्यों के समूह के जानपनेमात्र। भावार्थ इसप्रकार है कि – मै ज्ञायक और समस्त छह द्रव्य मेरे ज्ञेय – ऐसा तो नहीं है।

देखो, यह क्या कहा ? कि मैं चैतन्यमात्र भगवान ज्ञायक से भिन्न छह द्रव्यो के जानपनेमात्र नही हूँ, मै तो अपनी ज्ञान की पर्याय को ज्ञेय बनाकर जाननेवाला हूँ। व्यवहार-दया, दान, व्रत आदि का राग ज्ञेय और आत्मा ज्ञायक – जब ऐसा भी नही है तो व्यवहार करते-करते निश्चय होता है – ये बात कहाँ रही प्रभु !

प्रश्न – परन्तु आपने ऐसा अर्थ कैसे निकाला ?

उत्तर – बापू ! तू धधे मे जमा-नामे का हिसाब कैसे निकालता है ? तुझे इसकी रुचि है न ? अर्थात् वहाँ फटाक-फटाक कह देता है कि इसके पास इतना और उसके पास इतना बाकी है। इसमे होशियार हो गया है। दूसरे गाँव मे उधारी वसूल करने जाये और पचास हजार या लाख रुपया ले आये तो हर्ष करता है और मानता है कि मै इतना पैसा ले आया। परन्तु बापू ! ये पैसा तेरा कहाँ है ? और क्या तू इसे ला सकता है ? लाना तो दूर रहा, पैसा आना मेरा ज्ञेय है और मै ज्ञायक हूँ – ऐसा भी नही है। अहाहा ! जाननेवाली पर्याय मेरी है इसलिये मै ही ज्ञेय हूँ, मै ही ज्ञान हूँ और मै ही ज्ञायक हूं, ज्ञायक ऐसे मुझ मे पर का ज्ञेयपना है ही नही।

तत्त्वदृष्टि बहुत सूक्ष्म है भाई ! अरे ! अनतकाल से इसने पर का – निमित्त का, राग का और पर्याय का अभ्यास किया है, इन्हे अपना ज्ञेय माना है, परन्तु मै ज्ञान-ज्ञाता-ज्ञेय सभी एक हूँ – ऐसा अन्तर्मुख होकर अभेद का अभ्यास नही किया। परन्तु बापू ! जन्म-मरण रहित होने वाली चीज तो अन्त पुरुषार्थ से ही प्राप्त होती है।

यह शास्त्र ज्ञेय है और मै उसे जाननेवाला ज्ञायक हूँ ऐसा वस्तुस्वरूप नही है क्योकि मेरी ज्ञान-पर्याय मे जैसा शास्त्र है वैसा ही ज्ञात हुआ है, तो भी वह ज्ञान, ज्ञेय के – शास्त्र के

कारण नही हुआ परन्तु मेरी ज्ञान की पर्याय स्वय स्वत. निज सामर्थ्य से ही उसरूप – जाननेरूप परिणमित हुई है। उसे पर से – शास्त्र से क्या सबध है ? उसे पर के साथ तो ज्ञेय-ज्ञायक सबध भी नही। (तो फिर शास्त्र से ज्ञान हुआ यह बात तो कही दूर ही रही)

प्रश्न – परन्तु पर-द्रव्य के साथ आत्मा का ज्ञेय-ज्ञायक सबध है – ऐसा कहा गया है न ?

उत्तर – यह सम्बन्ध तो व्यवहार से कहा है। निश्चय से तो छहो द्रव्यो का ज्ञान मेरी पर्याय मे मेरे से हुआ है, छह द्रव्यो की मौजूदगी के कारण से मेरा ज्ञान नही हुआ है, पर मेरी पर्याय की ताकत से यह ज्ञान हुआ है। भाई ! ये तो भगवान की वाणी मे से निकला हुआ अमृत है। अहो ! दिगम्बर सन्तो ने जगत के समक्ष ऐसी सूक्ष्म बात कहकर परमामृत पिलाया है। ऐसी बात अन्यत्र कही नही है।

अहा ! छह द्रव्यो का जो ज्ञान हुआ है, वह ज्ञान मेरा ज्ञेय है, छह द्रव्य मेरे ज्ञेय नही। छह द्रव्यो के जानने मात्र रूप मे नही।

प्रश्न – ज्ञान की पर्याय तो पर ज्ञेय के कारण हुई है; अर्थात् ज्ञेय है इसलिए ज्ञान हुआ है न ?

समाधान – ऐसा नही है, यह ज्ञान तो अपनी पर्याय की सामर्थ्य से ही हुआ है और इसलिए अपनी पर्याय ही अपना ज्ञेय है। बारहवी गाथा मे व्यवहार जाना हुआ प्रयोजयवान कहा है, पर इसका अर्थ ऐसा है कि उस-उस प्रकार की ज्ञान की पर्याय स्वय अपने से होती है। व्यवहार का जो राग है, उस जैसा ही उसका ज्ञान अपनी पर्याय मे अपने से ही उत्पन्न होता है। ज्ञान का ऐसा ही कोई स्व-पर प्रकाशक स्वभाव है, इसे किसी पर-पदार्थ की अपेक्षा नही है। इसलिए अपनी पर्याय

ही अपना ज्ञेय है, परन्तु व्यवहार का राग ज्ञेय नही है। यह तो धैर्यवान पुरुष का काम है बापू! भगवान की वाणी को समझने के लिए भी धीरज चाहिए। जल्दबाजी से कही आम नही पकते।

अपनी पर्याय मे छह द्रव्य जानने मे तो आते है, परन्तु वे छह द्रव्य हैं, इसलिए ज्ञान हुआ है – ऐसा नही है। अपने ज्ञान की पर्याय ही स्वत ऐसी प्रगट हुई है और वह पर्याय ही अपना ज्ञेय है। देखो कलश मे है कि "अपने जीव से भिन्न छह द्रव्यो के समूह का जाननेमात्र" मै नही। अर्थात् मेरी पर्याय का जाननेमात्र ही मै हूँ, क्योकि सर्वस्व मेरे मे ही है।

इसके भावार्थ मे कहा है – "**भावार्थ इसप्रकार है कि मै ज्ञायक और समस्त छह द्रव्य मेरे ज्ञेय – ऐसा तो नहीं।**" अहाहा! भगवान पचपरमेष्ठी मेरे तो नही पर मेरे ज्ञेय भी नही, क्योकि यहाँ (अपनी पर्याय मे) पचपरमेष्ठी सबधी जो ज्ञान हुआ है वह उनसे नही हुआ, परन्तु पर्याय की तत्कालीन योग्यता से – सामर्थ्य से हुआ है। इसलिये अपनी पर्याय ही अपना वास्तविक ज्ञेय है। इसप्रकार बाहर मे से दृष्टि अन्दर सकुचित कर ली है। फिर अपने मे से ज्ञेय-ज्ञान-ज्ञाता के तीन भेद भी निकाल देगे। यहाँ तो पहले पर-पदार्थ ज्ञेय है और मैं ज्ञायक हूँ – ऐसी भ्रान्ति दूर की है। फिर ज्ञाता ही ज्ञाता है, है, ज्ञाता ही ज्ञान है और ज्ञाता ही ज्ञेय है – ऐसा कहेगे। अहो! सन्तो ने मारग एकदम खोल दिया है। वाह सन्तो वाह!

मै ज्ञायक हूँ और समस्त छह द्रव्य मेरे ज्ञेय है – ऐसा नही है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल और परमाणु से लेकर महास्कन्ध, तथा कर्म आदि मेरे ज्ञेय है और मैं ज्ञायक हूँ – ऐसा नही है। अहा! कर्म मेरे है, मुझमे हैं ऐसा तो नही, परन्तु कर्म मेरा ज्ञेय है और मै ज्ञायक हूँ ऐसा भी

नही है। अज्ञानी पुकार करते है कि कर्म से ऐसा होता है और कर्म से वैसा होता है, पर अरे ! सुन तो नाथ ! कर्म तो तुझे छूता भी नही है। वास्तव मे तेरे ज्ञान की सामर्थ्य ही ऐसी है कि उसमें पर की अपेक्षा ही नही है।

"छह द्रव्य मेरे ज्ञेय – ऐसा तो नहीं, तो कैसा है ? ऐसा है – "ज्ञानज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्रः ज्ञेयः" ज्ञान अर्थात् जानन-पने शक्ति, ज्ञेय अर्थात् जानने-योग्य शक्ति, ज्ञाता अर्थात् अनेक शक्तिरूप विराजमान वस्तुमात्र – ऐसे तीन भेद मेरा स्वरूप मात्र हैं ऐसा ज्ञेयरूप हूँ।"

क्या कहते है ? कि जानपने की शक्तिरूप मै, जानने-योग्य शक्तिरूप भी मै और अनन्त शक्तिरूप वस्तु अर्थात् ज्ञाता भी मै हूँ। अहाहा ! अनतगुणनिधान प्रभु आत्मा में एक जान-पनेरूप शक्ति है, और एक ज्ञेयशक्ति – प्रमेयशक्ति भी है, इसके द्रव्य-गुण-पर्याय मे ज्ञान के समान ज्ञेयशक्ति का – प्रमेयशक्ति का व्यापकपना है। इसलिये जो प्रमेय – ज्ञेय पर्याय है वह भी मै, ज्ञान भी मै और अनन्त शक्ति का धाम ज्ञाता भी मै हूँ।

अहो ! बहुत सरस बात है भाई ! तुझे पर के सामने कही देखना ही नही है। भगवान सर्वज्ञदेव के सामने भी तुझे नही देखना, क्योंकि समवशरण में विराजमान भगवान सर्वज्ञदेव तेरे ज्ञेय है और तू ज्ञायक है – ऐसा नही है। भगवान सम्बन्धी या उनकी वाणी सम्बन्धी तुझे जो ज्ञान पर्याय में हुआ है, उस ज्ञेय को ही (ज्ञानदशा को) तू जानता है। इसलिए ज्ञेय भी तू स्वय, ज्ञान भी तू स्वय और अनन्त गुणधाम ज्ञाता भी तू स्वय ही है। अरे ! तू बाहर में भटक रहा है, तुझे कहाँ जाना है प्रभु ? आता है न –

"भटके द्वार-द्वार लोकन के, कूकर आश धरी।"

दश बजे भोजन का समय हो, दाल-भात-शाक की गध आती है, तब वहाँ कुत्ता आकर खडा रहता है, अभी कुछ मिलेगा ऐसी आशा धरकर बिचारा घर-घर भटकता है। इसप्रकार मेरी ज्ञान की पर्याय किसी पर मे से – निमित्त मे से आएगी ऐसा अभिप्राय करके यह अज्ञानी पामर बनकर जहाँ-तहाँ भटकता है। पर भाई पर-पदार्थ मे से तेरा ज्ञान आए, यह बात तो दूर रहो, पर-पदार्थ तेरा ज्ञेय बने – ऐसा भी नही है, क्योकि ज्ञेय-ज्ञान और ज्ञाता तू ही है। इसलिए पर की आश छोड दे। आनन्दघनजी ने कहा है –

"आशा औरन की क्या कीजै, ज्ञान-सुधा-रस पीजै।"

अहा! परकी आशा छोडकर, पर का लक्ष्य छोडकर अन्तर के लक्ष्य से ज्ञानरूपी सुधारस पी न प्रभु!

अज्ञानी कहता है – मेरा गुरु है, मेरा भगवान है, मेरा मन्दिर है, परन्तु भाई! ये तो सब प्रत्यक्ष भिन्न वस्तुएँ तेरी कहाँ से हो? ये सब तेरे हैं, तेरा भला करनेवाले है, ये बात तो दूर रहो,ये तेरे ज्ञेय हो इनसे तेरा ऐसा भी सम्बन्ध नही है, क्योकि ज्ञेय भी तू स्वय है,ज्ञान भी तू स्वय है और ज्ञाता भी स्वय ही है। कहते है – ज्ञेय भी मै, ज्ञान भी मै और ज्ञाता भी मै – ऐसी चेतना सर्वस्व वस्तु मै हूँ। यह मारग बहुत सूक्ष्म और गम्भीर है भाई! यह समझ मे नही आता, इसलिए लोग क्रियाकाण्ड मे फँस जाते है, परन्तु ये सब मिथ्याभाव है। भाई! इससे मिथ्यात्व ही पुष्ट होगा धर्म नही। अरे! लोग कुगुरुओ के द्वारा लुट रहे है।

अरे भाई! तू अपने हित के लिए सत्य का निर्णय कर। जहाँ प्ररूपणा ही बिलकुल विपरीत हो वहाँ मिथ्यात्व है – ऐसी खबर पड़ ही जाती है। दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के

परिणाम परज्ञेयरूप से तेरे ज्ञान में ज्ञात होते हैं, कोई उसे धर्म का कारण माने-मनावे,इससे धर्म होगा ऐसी प्ररूपणा करे – यह सब स्थूल मिथ्यात्व है। यह तुझे कठिन लगेगा, पर कहा था न कि व्यवहार का निषेध करते है वह तेरा निषेध करने के लिये नही करते, क्योंकि तू ऐसा (व्यवहाररूप) है ही नही, तो फिर तेरा निषेध कहाँ हुआ प्रभु ? तू ज्ञेय-ज्ञान-ज्ञातास्वरूप आत्मा है न भगवान ! तो इसमें तेरा अनादर कहाँ आया ? उल्टा इसमें तो तेरा स्व का आदर आया है।

अहा ! अपनी पर्याय में जो व्यवहार का (शुभभाव का) ज्ञान है, वह ज्ञेय है और आत्मा ज्ञान है – ऐसा भी जहाँ नहीं है, वहाँ व्यवहार से लाभ होता है – यह बात कहाँ रही ? भगवान ! तू स्वरूप से ऐसा है ही नही। राग होवे यह अलग बात है, पर इससे तुझे लाभ होगा – ऐसा वस्तुस्वरूप ही नही है।

छहो द्रव्य अनादि से हैं, प्रत्येक द्रव्य सत्‌रूप है, असत्‌रूप नही।'ब्रह्म सत्यं,जगत् मिथ्या' – ऐसा नहीं है। अपनी शुद्ध एक ज्ञायकवस्तु की अपेक्षा से तो छहो द्रव्य अनादि से सत्–विद्यमान हैं। एक-एक द्रव्य अनन्त गुणों से भरा हुआ स्वय सिद्ध सत् है। परन्तु यह मेरा ज्ञेय है, यह बात कहना मुझे खटकती है, क्योंकि वह मेरा वास्तविक ज्ञेय नही है। जहाँ ऐसा है, वहाँ यह पदार्थ मेरा है और मुझे हितकारी है, यह बात कहाँ रही ? भाई ! ये मेरे हित की बात है। किसी से पूछना नही पडेगा, अपने को समझ मे आ जाए – ऐसी बात है।

यहाँ कहते हैं – एक जानपनेरूप शक्ति, दूसरी जानने योग्य शक्ति और तीसरी अनेक शक्ति से विराजमान वस्तु – ऐसे तीन भेद मेरा स्वरूप मात्र है। मतलब कि ये तीनों स्वरूप मै ही हूँ, ज्ञेय भी मै, ज्ञान भी मै और ज्ञाता भी मै हूँ। ये तीनो

स्वरूप मैं ही हूँ। पर-ज्ञेय मैं हूँ – ऐसा नही है। देव-गुरु-शास्त्र और देव-गुरु-शास्त्र के प्रति श्रद्धा-विनय-भक्ति का जो विकल्प उठता है, वह मैं हूँ – ऐसा नही है, क्योंकि ये सब पर-ज्ञेय है। प्रभु! अपनी अन्तर की चीज तो देख! क्या चीज है!! वीतराग-वीतराग-वीतराग"। तू मात्र वीतरागविज्ञान स्वरूप है।

प्रश्न – परन्तु देव-गुरु-शास्त्र तो शरणदाता कहे हैं?

उत्तर – हाँ कहे हैं, व्यवहार से कहे है, पर निश्चय से ये सर्व बाह्य निमित्त तेरे ज्ञेय भी नही है। अहा! अनन्त तीर्थङ्कर, अनन्त केवली, अनन्त सिद्ध अनन्त आचार्य-उपाध्याय-साधु तुझे लाभदायक है – ऐसा भी नही है। धवल मे पाठ आता है न –

णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती अरिहंताणं,
णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती सिद्धाणं,
णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती आइरियाणं,
णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती उवज्झायाणं,
णमो लोए सव्व त्रिकालवर्ती साहूणं।

अहा! पहले जो हो गए और भविष्य मे जो होगे, वे अरिहतादि भी अभी वन्दन मे आ गए। यद्यपि व्यक्तिगतरूप से नही आए, पर समूह मे सब आ गए। यहाँ कहते है कि त्रिकालवर्ती पचपरमेष्ठी ज्ञेय हैं और तू ज्ञायक है – ऐसा नही है। तो कैसा है? कि तत्सम्बन्धी तुझे जो ज्ञान हुआ है, वह ज्ञानपर्याय ही तुझे ज्ञेय हुई है, प्रमेय नामक गुण तेरे मे है, इसलिए तेरा ज्ञान उसे प्रमाण करके उस प्रमेय को (तेरी ज्ञान पर्याय को) जानता है। परन्तु पर-द्रव्यरूप प्रमेय को तू जानता है – यह बात सत्यार्थ नही है।

अरे! इसे यह समझने की फुरसत कहाँ है? एक तो धन्धे के कारण फुरसत नही मिलती और बाकी का समय

पचेन्द्रियो के भोगों मे चला जाता है। कदाचित् फुरसत मिलती है तो क्रियाकाण्ड मे अटक जाता है। अरे! पर से अपनी मानप्रतिष्ठा बढे इसकी दरकार मे इसके लिए सम्पूर्ण वस्तु गायब हो गई है। पर भाई! तुझे यह अवसर मिला है, यदि फुरसत निकालकर यह बात न समझा तो तू कौवे-कुत्ते आदि के भव मे तिर्यञ्च योनि मे कही खो जाएगा।

अहाहा! ज्ञेय-ज्ञान-ज्ञाता ऐसे तीन भेद मेरा स्वरूप मात्र है। अर्थात् तीनों रूप एक ही वस्तु मै हूँ। पर-ज्ञेय के साथ तेरा कुछ सम्बन्ध नही है। भाई! तुझे ऐसा निर्णय करना पड़ेगा। यह आखिरी कलश है न! इसलिए यहाँ एकदम अभेद की बात कही है। भाई! यह तो सम्पूर्ण शास्त्र का सार अर्थात् निचोड़ है।

भाई! ये जो अनन्त ज्ञेय है, उन्हे जानने की शक्ति तेरी है या ज्ञेय की है? जानने की शक्ति तेरी है, तोइस मे पर-ज्ञेय कहाँ आया? अपनी ज्ञान की शक्ति मे पर-ज्ञेय का ज्ञान अपने ही कारण से अपना ज्ञेय होकर आया है। अहा! अपना ज्ञान ही अपना ज्ञेय होकर अपने को जानता है तथा अनन्त शक्ति का पिण्ड-ज्ञाता भी वह स्वयं ही है। इसप्रकार तीनों मिलकर वस्तु तो एक ही है। देखो, भाषा ऐसी ली है न कि "ज्ञान-ज्ञेयज्ञातृमद्वस्तुमात्र." अर्थात् तीन भेदस्वरूप वस्तुमात्र मै हूँ, उसमे ही मेरा सर्वस्व है। ऐसा वस्तुस्वरूप है और यह भगवान की वाणी मे आया है।

यहाँ का विरोध करने के लिए कितने ही पण्डित कहते हैं कि जो एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य का कर्त्ता न माने वह दिगम्बर जैन नही है। पर भगवान! इसमे तो तेरा स्वयं का ही विरोध होता है। भाई! तुझे खबर नही, पर इसमें तेरा बडा नुकशान है। ऐसे (तत्त्वविरोध के) परिणाम का फल

बहुत बुरा है भाई ! तूने अनन्तकाल से जो घोर दुःख सहे वह ऐसे ही परिणाम का फल है। तू दुःखी हो रहा है, क्या यह अच्छा है ? इसलिए तत्त्वदृष्टि कर।

अज्ञानी कहते हैं कि जो परद्रव्य का कर्त्ता न माने, वह दिगम्बर जैन नही। जबकि यहाँ दिगम्बर आचार्य कहते है कि जो अपने को परका जाननेवाला भी माने वह दिगम्बर जैन नही। बहुत फेर है भाई ! परन्तु मार्ग तो ऐसा है प्रभु ! तू स्वभाव से ही भगवान स्वरूप है, तेरी शक्ति मे अन्य की जरूरत नही, परन्तु तुझे स्वयं को जानने मे तेरी शक्ति की जरूरत है और वह तो तुझमे है ही, अब इसमे विषय और कषाय का रस कहाँ रहा ? विषय-कषाय का भाव तो पर-ज्ञेय है, तुझे इससे कुछ सम्बन्ध नही। वह तेरे मे तो नही, तेरा ज्ञेय भी नही।

यहाँ कहते है कि मै "ऐसा ज्ञेयस्वरूप हूँ" कैसा ज्ञेय-स्वरूप हूँ कि ज्ञानशक्तिरूप भी मै हूँ, ज्ञेय शक्तिरूप भी मै हूं और अनन्त गुणो की ज्ञाताशक्तिरूप भी मैं हूँ – ऐसा मै ज्ञेयरूप हूँ, परन्तु परज्ञेयरूप मै नही हूँ। अहो ! गजब बात है ! केवली परमात्मा और उनके आढतिया दिगम्बर सन्तो के सिवा ऐसी बात कौन करे ? जगत को ठीक पडे या न पडे, वस्तुस्थिति तो यही है।

देखो, राजमलजी इसके भावार्थ मे क्या कहते है ? **"भावार्थ इसप्रकार है कि--मै अपने स्वरूप को वेद्य-वेदकरूप से जानता हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञान, यतः मै आप द्वारा जानने योग्य हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञेय, यतः ऐसी दो शक्तियों से लेकर अनन्त शक्तिरूप हूं, इसलिए मेरा नाम ज्ञाता। ऐसा नाम भेद है, वस्तु भेद नहीं है।"**

क्या कहा ? वेद्य अर्थात् जाननेलायक और वेदक अर्थात् जाननेवाला मै ही हूँ, इसलिए मेरा नाम ज्ञान है। अहाहा !

स्वज्ञेय को मैं जानता हूँ, इसलिए मैं ज्ञान हूँ। तथा मैं
स्वय के द्वारा ही जानने योग्य हूँ, इसलिए मैं ज्ञेय हूँ
ऐसी बात है भाई ! शास्त्र मे तो मेरा ज्ञान नही है,
शास्त्र मेरा ज्ञेय है, ऐसा भी नहीं है।

प्रश्न – तो शास्त्र बाचना चाहिए या नही ?

उत्तर – स्व के लक्ष्य से शास्त्र बांचना, शास्त्र अ
करना – यह बात आती है, परन्तु उस समय जो ज्ञान
वह शास्त्र का ज्ञान है – ऐसा नहीं है। ज्ञान तो ज्ञान का
शास्त्र का नही, और ज्ञेय भी ज्ञान स्वय ही है। ऐसी
बात है।

प्रश्न – पहले ज्ञान की पर्याय में ऐसा ज्ञान नही
परन्तु अब ऐसी वाणी सुनने पर यह ज्ञान हुआ न ?

उत्तर – न, ऐसा नही है। वह ज्ञान की पर्याय ही ते
ज्ञेय है, और उसमे से ही तेरा ज्ञान आया है, परन्तु पर-ज्ञेय
से – वाणी मे से ज्ञान नही आया। यह बात सूक्ष्म है,
जन्म-मरण के अन्त का मार्ग तो यही है प्रभु ! तुझे
सामने देखना है। यह देव मेरा, गुरु मेरा और शास्त्र मेरा
ऐसा तो वस्तुस्वरूप मे नही है, पर ये मेरे ज्ञेय है – ऐसा
वस्तु स्वरूप मे नही है। किसी को यह बात समझना
लगे, इसलिए वह, यह तो निश्चय है, निश्चय है – ऐसे
करके उड़ा दे, परन्तु भाई ! निश्चय अर्थात् सत्य, परम
समझ मे आया ?

मैं अपने द्वारा ज्ञात होने योग्य हूँ, परन्तु परके द्व
जानने योग्य नही हूँ। मेरा द्रव्य-गुण-पर्याय मेरे द्वारा ज
लायक है, इसलिए मै ही मेरा ज्ञेय हूँ, पर-पदार्थ मेरा ज्ञेय
है। ज्ञान भी मैं, ज्ञेय भी मै और ज्ञाता भी मै ही हूँ।
परमार्थ सत्य है भाई ! कहा न कि "नाम भेद है, वस्तु

नही।" अपना ज्ञेय कोई जुदी चीज है, ज्ञान जुदी चीज है और ज्ञाता जुदी चीज है – ऐसा नही है, परन्तु जो ज्ञेय है, वही ज्ञान है, और वही ज्ञाता है। तीनो ही वस्तुपने एक ही है। यह तो भाई! वस्तु की स्वतन्त्रता की परिपूर्णता की पराकाष्ठा है।

देखो, कोई किसी की निन्दा करे तो वह नाराज होता है, और प्रशसा करे तो राजी होता है, परन्तु निन्दा तो शब्द-रूप जड का परिणाम है और प्रशसा भी जड शब्द की पर्याय है। भाई! ये निन्दा-प्रशसा तो तेरी चीज नही है। जब ऐसा वस्तुस्वरूप है, तो फिर यह मेरा निंदक है, और यह मेरा प्रशसक है – यह बात कहाँ रही? यह मेरी निन्दा करता है और यह प्रशसा करता है, वास्तव मे ऐसा है ही नही।

अब कहते है – "**कैसा हूं ज्ञानज्ञेयकल्लोलवल्गन" -- जीव ज्ञायक है, जीव ज्ञेयरूप है, ऐसा जो वचन भेद उससे भेद को प्राप्त होता हूं। भावार्थ इसप्रकार है कि -- वचन का भेद है, वस्तु का भेद नहीं।'**

देखो, क्या कहा? स्वय ज्ञेय, स्वय ज्ञान और ज्ञाता – ऐसे तीन भेद वचनभेद से है, परवस्तु तो स्वय जैसी है वैसी है, अर्थात् ज्ञेय भी मै, ज्ञान भी मै और ज्ञाता भी मै, ऐसे तीनो मिलकर एक ही वस्तु मै हूँ, परन्तु वस्तु नही। अहा! स्ववस्तु मे परवस्तु तो नही, स्ववस्तु में तीन भेद भी नही है। ऐसा मार्ग, इसने अनन्तकाल मे सुना भी नही है।

अहो! समयसार मे आई हुई, यह बात लोकोत्तर – अलौकिक है। देखो, यहाँ तीन बाते है –

१ परद्रव्य मेरा है और मै पर का हूँ – ऐसा तो नही है।

२. परद्रव्य मेरे ज्ञेय है और मै ज्ञायक हूँ – ऐसे भी नही है ।

३. मुझमे ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञाता – ऐसे वस्तुभेद भी नही है ।

मै ज्ञेय हूँ, मै ज्ञान हूँ – यदि ऐसा जो भेद उपजे तो राग – विकल्प उत्पन्न होता है, परन्तु वस्तु और वस्तु की दृष्टि मे ऐसा भेद नही है, सब अभेद एक है ।

अहाहा ! पर-पदार्थ मेरे ज्ञेय है और मै ज्ञायक हूँ, ये तो वस्तु मे है ही नही, परन्तु वास्तव में जो तीन भेद हैं, वे भी नामभेद है । दृष्टि के विषम मे ये तीन भेद है ही नही । जैसी यह वस्तुस्थिति है, वैसी अज्ञानी के ख्याल मे नही आती, इसलिए उसकी धारणा से शास्त्र में अलग बात आती है, तो उसमे उसे विरोध भासित होता है । किसी को इससे विरोध हो तो हो, परन्तु यह तेरा ही विरोध है, दूसरे का विरोध दूसरा कौन करे ? दूसरी चीज मे तेरा विरोध कहाँ जाता है कि त दूसरे का विरोध करे ?

यहाँ कहते है – जीव ही ज्ञेयरूप है, जीव ही ज्ञायक है और जीव ही ज्ञाता है, ऐसे वचनभेद से भेद को पाता हूँ, अर्थात् ये तो कल्लोल अर्थात् वचन का भेद है, परन्तु वस्तु मे भेद नही है । मै ही ज्ञेय, मै ही ज्ञान और मै ही ज्ञाता – ऐसे वचनभेद से कथनमात्र भेद है, वस्तु तो अभेद ही है । इसप्रकार इस कलश मे ज्ञान-ज्ञाता-ज्ञेय का अभेद स्वरूप बताया है ।

ज्ञान और ज्ञेय का स्वरूप

(समयसारकलश २७१ से सम्बन्धित छन्द)

(सवैया इकतीसा)

कोऊ ग्यानवान कहै ग्यान तौ हमारौ रूप,
ज्ञेय षट दर्व सो हमारौ रूप नाहीं है।
एक नै प्रवांन ऐसै दूजी अब कहूं जैसै,
सरस्वती अक्खर अरथ एक ठाहीं है।।
तैसै ग्याता मेरी नाम ग्यान चेतना विराम,
ज्ञेयरूप सकति अनन्त मुझ पाँही है।
आ कारन वचनके भेद भेद कहै कोऊ,
ग्याता ग्यान ज्ञेयकौ विलास सत्ता मांही है।।४५।।

अर्थ – कोई ज्ञानी कहता है कि ज्ञान मेरा रूप है और ज्ञेय षट् द्रव्य मेरा स्वरूप नही है। इसपर श्री गुरु सम्बोधन करते है कि एक नय अर्थात् व्यवहार नय से तुम्हारा कहना सत्य है, और दूसरा निश्चयनय मे कहता हूँ वह इस प्रकार है कि जैसे विद्या अक्षर और अर्थ एक ही स्थानपर है, भिन्न नही है। उसी प्रकार ज्ञाता आत्मा का नाम है, और ज्ञान[1] चेतना का प्रकार है तथा वह ज्ञान ज्ञेयरूप परिणमन करता है सो ज्ञेयरूप परिणमन करने की अनन्त शक्ति आत्मा मे ही है, इसलिये वचन के भेद से भले ही भेद कहो, परन्तु निश्चय से ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय का विलास एक आत्मसत्ता मे ही है।।४५।।

---

१. चेतना दो प्रकार की है–ज्ञानचेतना और दर्शनचेतना।

(चौपाई)

स्वपर प्रकासक सकति हमारी ।
तातै वचन भेद भ्रम मारी ।।
ज्ञेय दशा दुविधा परगासी ।
निजरूपा पररूपा भासी ।।४६ ।

अर्थ – आत्मा की ज्ञानशक्ति अपना स्वरूप जानती है और अपने सिवाय अन्य पदार्थों को भी जानती है, इससे ज्ञान और ज्ञेय का वचन-भेद मूर्खों को बडा भ्रम उत्पन्न करता है । ज्ञेय अवस्था दो प्रकार की है – एक तो स्वज्ञेय और दूसरी परज्ञेय ।।४६।।

(दोहा)

निजरूपा आतम सकति, पररूपा पर वस्त ।
जिन लखि लीनौ पेंच यह, तिन लखि लियौ समस्त ।।४७।।

अर्थ – स्वज्ञेय आत्मा है और परज्ञेय आत्मा के सिवाय जगत् के सब पदार्थ है, जिसने यह स्वज्ञेय और परज्ञेय की उलभन समभ ली है – उसने सब कुछ ही जान लिया समभो ।।४७।।

– पण्डित बनारसीदास
नाटक समयसार, साध्य-साधक द्वार